सृजन - शाश्वत लीला

प.पू.श्रीमाताजी निर्मला देवी

सृजन
शाश्वत लीला

परम पूज्य माताजी श्रीनिर्मला देवी

भाषान्तरण

ओ.पी.चांदना

प्राक्कथन

प्राय: हमें आश्चर्य होता है कि किस प्रकार आदिशक्ति ने संसार का सृजन किया, किस प्रकार इसकी योजना बनाई और किस प्रकार इसकी व्यवस्था की!

अपने प्रेम की अबाध शक्ति के वेग के कारण वे विवश थीं। प्रेम की सरिता उनके हृदय से फूट पड़ी और पूरे सृजन के कार्य की योजना तथा व्यवस्था का कार्य शुरु हो गया। उन्होंने पृथ्वी तथा इसके निवास स्थान का सृजन करने से बहुत पूर्व ही अपने पुत्र श्री गणेश की छवि में मानव का सृजन करने का विचार बना लिया था। अपने अवतरण से पूर्व ही उन्होंने सहजयोग की धारणा भी बना ली थी। ''जन्म से ही मैं इसके विषय में जानती थी। अपने विषय में भी मैं जानती थी....।''

वर्ष १९७० में, सहजयोग के आरम्भ से पूर्व ही अपनी डायरी में उन्होंने अपनी दिव्य योजना के विषय में लिख दिया था। इसी डायरी के अमूल्य पृष्ठों को ही पुस्तक रूप में संकलित किया गया है। इस पुस्तक को उन्होंने **'सृजन-शाश्वत लीला' (क्रिएशन-द इटर्नल प्ले)** शीर्षक प्रदान किया। ''नि:सन्देह इसके विषय में मैंने सब कुछ लिखा है और पुस्तक के विमोचन के बाद आप जान पाएंगे..... कि जीवन्त प्रक्रिया का आरम्भ किस प्रकार होता है। मैं अधिकतर कार्य कर चुकी हूँ, परन्तु कुछ चक्रों के विषय में लिखना अभी शेष है।'' (श्रीआदिशक्ति पूजा, २१ जून १९९८)

सम्भवत: इससे पूर्व वे यह रहस्योद्घाटन नहीं करना चाहती थीं कि कहीं उनके कार्य (सहजयोग) में बाधा न पड़े। बुद्धिवादियों की जिज्ञासा, आत्मजिज्ञासा पर ग्रहण लगा सकती थी।

सत्यसाधक बच्चों को गले लगाने पर उन्होंने अपनी सारी शक्ति झोंक दी परन्तु बच्चों की संवेदना इतनी दुर्बल हो चुकी थी कि उनके प्रेम को महसूस

करने की सामर्थ्य भी उनमें न थी। साधकों की स्वतन्त्रता के सम्मान का ध्यान रखते हुए उन्होंने किसी को भी सहजयोग अपनाने के लिए विवश नहीं किया। परन्तु किसी को त्यागा भी नहीं। सभी जिज्ञासुओं को अपने पावन हृदय में धारण करके उनका पोषण किया। अकेले ही उन्होंने सहजयोगियों के भविष्य का बोझ सम्भाला। ऐसा कर पाना केवल आदिशक्ति के लिए ही सम्भव था। एकमेव आदिशक्ति ही मानव की सभी कोणिकताओं, उसके सभी पक्षों, विशिष्ट धारणाओं तथा अहंवाद को अपने अंक में भर सकती थीं। उन्होंने मानव के केवल शारीरिक, मानसिक तथा भावनात्मक पहलुओं को ही नहीं देखा, मानव के पूरे अस्तित्व पर ध्यान दिया। इस प्रकार उन्हें महसूस हुआ कि मानव की करुणा ही उसकी संवेदना को शक्ति प्रदान कर सकती है।

अतः करुणा प्रदान करने के लिए सम्वेदनशील सहजयोगियों को कलियुग के कुरुक्षेत्र में उतरना पड़ा। उन्होंने जब लोगों को पूर्णतः डूबते और नष्ट होते हुए देखा तो उनके उद्धार के लिए उनमें करुणा जाग उठी। श्रीमाताजी विकास की इसी अवस्था की ही तो प्रतीक्षा कर रही थीं। अचेतन (अनकॉन्शस) चेतन मस्तिष्क में प्रवेश कर गया और आदिशक्ति की सृष्टि को अर्थ प्रदान किया। उनके द्वारा बनाए गए यन्त्रों (आत्मसाक्षात्कारियों) से गतिशील ऊर्जा (चैतन्य) बह निकली और उनकी सृष्टि को अलंकृत किया।

उनकी इस पुस्तक में लिखा हर शब्द, हमारे हृदय में संजो कर रखे जाने योग्य, विवेक का मोती है। लौकिक संसार में इस अमूल्य मोती को सम्भालने की योग्यता नहीं है। ईर्ष्यालु बुद्धिवाद और इसकी निष्फल धारणाओं तथा विश्लेषणों से इसकी रक्षा की जानी आवश्यक है। यह रहस्योद्‌घाटन है, अतः वाद-विवाद का विषय न होकर यह ध्यान-धारणा (गहन चिन्तन) का विषय है। इस पुस्तक का हर शब्द बीज मन्त्र है। श्रीमाताजी को हृदय में स्थापित कर के जब हम ध्यान (चिन्तन) करेंगे तो इस बीज का पोषण होगा, यह अंकुरित होगा और उनके संदेश का रहस्योद्‌घाटन करेगा-यह उनका वचन है।

अनुक्रमणिका

1.	**सृजन-शाश्वत लीला**	**9**
	सृजन की प्रथम अवस्था	10
	सर्वोच्च अस्तित्व - पुरुष	11
	सृजन की दूसरी अवस्था	15
	सृजन की तीसरी अवस्था	16
	प्रणव नाद	20
	परमेश्वर रूप में सर्वशक्तिमान परमात्मा के तीन पक्ष	23
	सदाशिव	23
	हिरण्यगर्भ (प्रजापति)	25
	विराट	26
	आदिशक्ति की शक्ति	28
	आदिशक्ति की अन्य शक्तियाँ	29
	महाकाली (शिवानी) शक्ति	31
	महासरस्वती (हिरण्यगर्भिणी) शक्ति	31
	महालक्ष्मी शक्ति	32
	परमेश्वरी (ईश्वरी) शक्ति	32
	प्रणव शक्ति	33
	सृजन की चार अवस्थायें	34
	तीन गुणों का सृजन	36
	विराट का सृजन	38
	ऊर्ध्वस्थ शक्ति (आदि कुण्डलिनी)	40
	श्रीगणेश का सृजन	41
	सर्वेश्वर वाद	44

2.	**परमात्मा के राजदूत - परमेश्वरी अवतरण**	**48**
	विष्णु अवतरण	49
3.	**विकास (प्रक्रिया)**	**67**
	पदार्थ का सृजन	67
	मनुष्य - भौतिक जीव	73
4.	**मानव की खोज**	**76**
5.	**अवचेतन तथा सामूहिक अवचेतन**	**88**
	दुष्ट मानव	91
	सामान्य मानव	91
	उच्च मानव	92
	अवतरण	92
6.	**तन्त्रवाद**	**122**
	तन्त्रवाद का आरम्भ	137
7.	**हठयोग और राजयोग**	**154**
	हठयोग	155
	राजयोग	157
8.	**सहजयोग**	**160**
9.	**मानव में कुण्डलिनी का सृजन**	**170**
	मानव भ्रूण में कुण्डलिनी का प्रवेश	172
	स्वायत्तशासी नाड़ी प्रणाली	182
	अहम् और प्रति अहम् का विकास	184
	अतिचेतन गतिविधि	187

10.	**धर्म का मध्यमार्ग**	**190**
	देवी-देवताओं के धर्म और उनके चक्र	193
11.	**चक्र और केन्द्र**	200
12.	**मूलाधार चक्र**	**207**
	अवतरण	208
	आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति	208
	सामान्य मानव	209
	विभ्रान्त (भ्रमित) साधक	209
	मूलाधार चक्र की कार्यशैली	213
	पहली पंखुड़ी	213
	दूसरी पंखुड़ी	214
	तीसरी पंखुड़ी	214
	चौथी पंखुड़ी	215
	मूलाधार चक्र के कार्य	226
	स्वस्तिक और क्रूस	263
13.	**स्वाधिष्ठान चक्र**	**266**
14.	**आदिशक्ति की शक्ति और तीन गुण**	**274**
	भौतिक शक्ति	274
	महासरस्वती शक्ति	275
	जीवन (अस्तित्व) शक्ति	283
	महाकाली शक्ति	284
	धर्मशक्ति	287
	महालक्ष्मी शक्ति	288

तत्वों का सृजन 289
पृथ्वी (धरा) तत्व 290
जल तत्व 291
प्रकाश/अग्नि तत्व 293
वायु तत्व 296
अंतरिक्ष/आकाश तत्व 297

'सृजन' विषय पर श्रीमाताजी द्वारा दिया गया प्रवचन.... 300

श्रीमाताजी द्वारा बनाई गई अतिरिक्त आकृतियाँ 324
आकृति १६ से १९ 325-328

अध्याय 1

सृजन - शाश्वत लीला

सृजन परमात्मा (सम्पूर्ण, परब्रह्म) की शाश्वत लीला है। परब्रह्म की दो दिव्य अवस्थाएं हैं :- जागृत अवस्था तथा निद्रा की अवस्था। परब्रह्म जब जागृत अवस्था में होते हैं तो सृजन लीला में उनकी अभिव्यक्ति घटित होती है, जब वे सुप्त अवस्था में होते हैं, तो उनकी सारी गतिविधियाँ शून्य अवस्था में विलय हो जाती हैं और सृजन कार्य रुक जाता है। यह स्थिर अवस्था है, पूर्ण परिवर्तन की अवस्था। इस अवस्था में पूरा सृजन - पदार्थ और अपदार्थ (मूर्त व अमूर्त) सभी कुछ परब्रह्म की ऊर्जा में विलय हो जाता है। यह जीवन अस्तित्व की एक अवस्था है, परन्तु यह उस पदार्थ जैसी है जिसमें स्वयं को प्रतिबिम्बित करने के लिए प्रकाश विद्यमान नहीं है। परब्रह्म जब अपने आनंद, अपने मनोरंजन के लिए सृजन का अद्वितीय नाटक बंद कर देते हैं, तो सभी मानवीय, अमानवीय, अतिमानवीय और निष्ठुर तत्व उनमें लीन हो जाते हैं। इस प्रकार परब्रह्म की अमूर्त अवस्था से सृष्टि रूप में उनकी पूर्ण अभिव्यक्ति का चक्र चलता रहता है।

सृजन का आरम्भ कब हुआ इस विषय में युगों से विवाद चला आ रहा है। इस समस्या का समाधान केवल तभी हो सकता है, जब व्यक्ति यह समझ ले कि शाश्वतता ही परब्रह्म का स्वभाव है। व्यक्ति जब जागृत अवस्था में होता है, तो वह गतिशील होता है। उसके व्यक्तित्व और प्रतिभा की अभिव्यक्ति उसके कार्यों में होती है, परन्तु निद्रा-अवस्था में वह पूर्णतः निष्क्रिय होता है और उसके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति उसके अस्तित्व में ही लुप्त हो जाती है।

सृजन प्रक्रिया की तुलना बीज के अंकुरित होकर वृक्ष बनने और पूर्ण परिपक्वता प्राप्त करके पुनः बीज बन जाने से की जा सकती है। अपना कार्य

आरम्भ करने से पूर्व परब्रह्म आदिबीज (ब्रह्मबीज) रूप में विद्यमान होते हैं। सृष्टि का सृजन इस बीज की अभिव्यक्ति है, जो उस परिशुद्ध स्फ़ाटक (Crystal) की तरह है जिसके सभी पहलू सम्पूर्ण हैं।

सृजन की प्रथम अवस्था

ब्रह्म बीज (आदिबीज) दो भागों में बंट जाता है: पहला बीज और दूसरा उसकी अंकुरण शक्ति। सृजन लीला में बीज (ब्रह्मबीज) दर्शक है तथा उसकी अंकुरण शक्ति भव्य दृश्य का सृजन करती है। किसी स्फ़ाटक (Crystal) को यदि हम उसके केन्द्रक (Nucleus) और पहलुओं (Facets) में विभाजित कर दें तो यही धारणा बन जाएगी। परन्तु, दुर्भाग्यवश, भौतिक

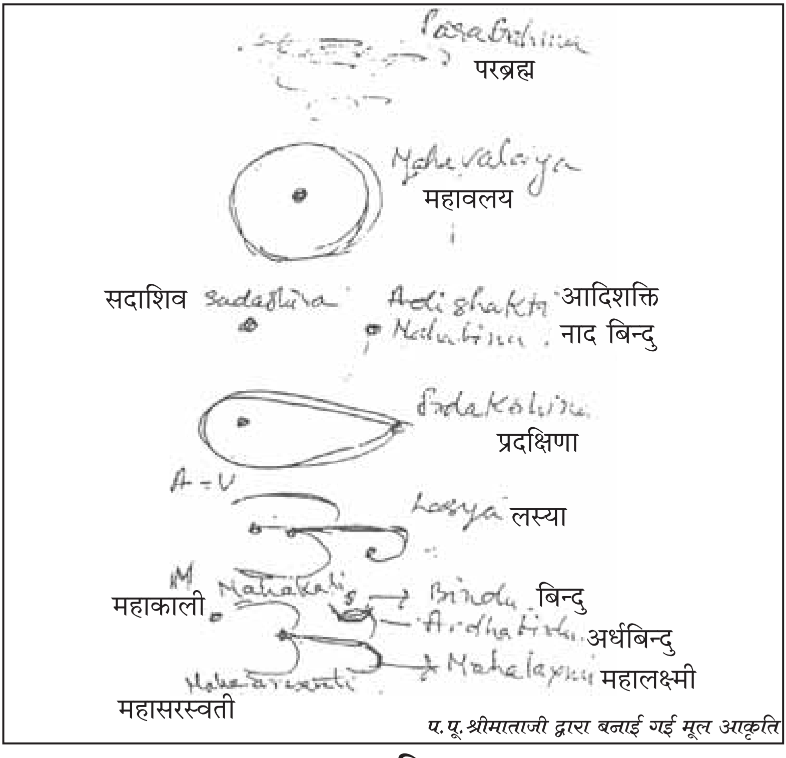

प.पू. श्रीमाताजी द्वारा बनाई गई मूल आकृति

आकृति १

विश्व में ऐसा नहीं किया जा सकता। इस प्रकार परमेश्वर तथा उसकी शक्ति (महाशक्ति) - दो व्यक्तित्वों की रचना होती है। ये परम पुरुष (Supreme Being) और सृजन की मातृशक्ति (प्रकृति या आदिशक्ति) के रूप में विद्यमान रहते हैं। वे हमारे दिव्य माता-पिता-आदिपिता (Primordial Father) एवं आदि माँ (Primordial Mother) हैं। ब्रह्म बीज के रूप में परब्रह्म लाखों वर्षों (कल्पों) तक सुप्त अवस्था में बने रहते हैं। परब्रह्म के आदिनिद्रा से जागृत होने के बाद ही आदिपिता और आदि माँ (पुरुष एवं प्रकृति) एक दूसरे से अलग होते हैं। आकृति १ में 'S' आदिबीज का प्रतीक है।

परब्रह्म के जागृत होने पर उनकी शक्ति गतिशील हो उठती है और ब्रह्मबीज में दिव्य प्रेम की लहर जागृत करती है। गतिशीलता की यह धड़कन आदि ब्रह्मनाद (Primordial Vibrating Sound) की उत्पत्ति करती है। यह इस प्रकार है मानों दिव्य ऊर्जा में विलय हो कर स्फ़ाटक केंद्रक के चहुँ ओर वृत्ताकार लहरियाँ प्रवाहित कर रहा हो। यह लहरियाँ केंद्रक के चहुँ ओर जमा होकर आदि वलय (Primordial Circle) का सृजन करती हैं। अत: आदि ब्रह्मशक्ति ब्रह्मबीज से रिसकर सृजित वृत्त में चली जाती है। इस प्रकार प्रथम अवस्था में अंकुरित होने वाला बीज दो भागों में विभाजित हो जाता है :

प्रथम केंद्रक (Nucleus), सर्वशक्तिशाली और सर्वव्यापक्त (पुरुष) दर्शक या साक्षी के रूप में विद्यमान रहता है और दूसरा भाग आदिवलय के रूप में परमात्मा की शक्ति (महाशक्ति) का प्रतिनिधित्व करते हुए भव्य दृश्य के रूप में अभिव्यक्त होता है।

सर्वोच्च अस्तित्व - पुरुष

आकृति १ में दर्शाया गया मध्य बिंदु या केंद्रक सर्वशक्तिमान परमात्मा को पुरुष रूप में दर्शाता है। मनुष्य इसे परमेश्वर, अल्लाह, जिहोवा (Jehovah), या साक्षी (दर्शक) के रूप में जानते हैं। महाशक्ति द्वारा सृजित लीला का आनन्द उठाने के लिए सर्वशक्तिमान परमात्मा अपनी शक्ति

(प्रकृति) से बिल्कुल अलग हो जाते हैं।

वे इस लीला के पोषक हैं, क्योंकि वे ही एक मात्र दर्शक हैं। वास्तव में पूरे दृश्य का सृजन उन्हीं की अभिव्यक्ति के लिए और उन्हें प्रसन्न करने के लिए ही किया गया है। ये उन्हीं के मनोरंजन के लिए है, अत: ज्योंही उन्हें इस लीला का आनन्द आना बंद हो जाता है तो वे इस खेल को रोक देते हैं। उनमें अपने प्रक्षेपण (स्वसृजित लीला) को समाप्त करने की शक्ति है। यद्यपि उनकी भूमिका मात्र एक साक्षी की है, परन्तु परम पिता परमेश्वर सारी शक्ति एवं ओजस्विता (तेज) का स्रोत हैं। स्वसृजित सारे जीव-जंतुओं के लिए वे अत्यन्त सुखमय सुरक्षा का सृजन करते हैं। सभी कुछ उन्हीं के कारण बना है और वे ही अस्तित्व मात्र हैं। लीला के पोषक (धारक) होने के कारण वे स्वयं पोषण (धर्म) बन जाते हैं। पूर्ण चेतना के प्रकाश और सभी पदार्थों के निर्णायकतत्व भी वे ही हैं, उनके विवेक को चुनौती नहीं दी जा सकती। वे ही विवेक के स्रोत हैं और मानव उन्हीं की दिव्य चेतना की अभिव्यक्ति मात्र है। धर्म-विवेक उन्हीं से प्रवाहित होता है। अपने व्यक्तित्व से प्रवाहित होने वाली हितैषिता की वर्षा पूरे ब्रह्माण्ड पर कर के वे पूरी सृष्टि को आनन्दमय बना देते हैं। वे ही हर चीज़ के सृष्टा हैं, हर चीज़ का सृजन उन्हीं के लिए और उनके आनन्द के लिए किया गया है। वे सम्पूर्ण भोक्ता है,महान से महानतम हैं, गरिमा की पराकाष्ठा हैं। सर्वशक्तिमान और सर्वव्याप्त होने के कारण वे ही हर चीज़ का गौरव हैं और अपनी सर्वव्यापी शक्ति के कारण वे परिमित में अपरिमित हैं और असीम में सीमित। सूक्ष्म में वे सूक्ष्मतम हैं, मानव रूप में वे कभी अवतरित नहीं होते। केवल उनकी शक्ति मानव रूप में जन्म लेती हैं। आदिशक्ति या उनके बच्चों के अवतरणों के माध्यम से उनकी अभिव्यक्ति होती है। आदिशक्ति के बच्चों के पुरुष अवतरण उन्हें (सदाशिव) प्रतिबिम्बित करते हैं। सर्वोपरि, वे उनकी अभिव्यक्ति के मूलस्रोत बने रहते हैं।

स्वसृजित अपनी शक्ति के माध्यम से वे स्वयं को प्रतिबिम्बित करते हैं।

सृष्टि मात्र एक प्रतिबिम्बक या दर्पण की तरह है। मानव का सृजन उन्होंने श्रेष्ठतम प्रतिबिम्बक के रूप में किया है। पहले उन्होंने मानव का सृजन किया और फिर अपनी शक्ति, प्रकृति, के माध्यम से अत्यन्त करुणा एवं प्रेमपूर्वक उसको विकसित किया।

भिन्न प्रतिबिम्बकों का उपयोग कर के किस प्रकार उन्होंने सृष्टि का विकास किया, यह बात इस उपमा के माध्यम से भलिभाँति समझी जा सकती है : परमात्मा, (निष्क्रिय प्रकाश के धारक) अंधेरे कमरे में अंधेरे में बैठे रहते हैं। इन परिस्थितियों में वे स्वयं को प्रतिबिम्बित नहीं कर पाते। अतः वे ज्योति जला देते हैं। ये प्रकाश उनकी अपनी शक्ति है-प्रकृति-जो उनसे अलग है। परन्तु प्रतिबिम्बकों या दर्पणों के अभाव में अब भी प्रकाश प्रतिबिम्बित नहीं हो सकता। अतः यह शक्ति शीशे की खिड़कियों की तरह दर्पणों का सृजन करती हैं और इन्हें एक के बाद एक उनके (परमात्मा) समक्ष स्थापित करती है और इस प्रकार दर्पणों और परमात्मा के बीच की दूरी को तब तक घटाती चली जाती है जब तक दर्पणों से निकलने वाले प्रतिबिम्ब परमात्मा के आकार के अनुरूप नहीं हो जाते। परमात्मा मूल तत्व है (Object) और मानव प्रतिबिम्बक।

परमात्मा को यदि इस दृश्य या लीला का आनन्द नहीं आता, या इस नाटक का जारी रहना उन्हें स्वीकार नहीं होता तो किसी भी समय वे अपने प्रकाश को बंद कर देते हैं और इस प्रकार, अचानक, पूरी सृजन लीला का अंत कर देते हैं। ऐसा जब होता है, तो एक बार पुनः वे अंधेरे में डूब जाते हैं और पूरी सृष्टि समाप्त हो जाती है। परन्तु वास्तव में वे तब भी परब्रह्म रूप में विद्यमान होते हैं - सर्वोच्च निराकार शक्ति के रूप में। अतः ये बात समझ ली जानी चाहिए कि क्यों कुछ प्राचीन दार्शनिकों ने यह कहा कि सृष्टि की उत्पत्ति शून्य से हुई है, क्योंकि सृष्टि (दृश्य) के मुकाबले परब्रह्म को वस्तुतः अस्तित्वहीन माना जा सकता है।

निरभ्र आकाश में यदि आप सूर्य की किरणों को देखें तो ये विकीर्णित हो जाती हैं और अदृश्य किरणों की उपस्थिती को देख पाना असम्भव है। अचानक यदि कोई जैट यान आपके दृष्टिक्षेत्र से गुजरे तो जैट के पीछे से निकलती हुई धुएं की रेखा से प्रतिबिम्बित होती प्रकाश किरणों को आप देख सकते हैं। इससे प्रकट होता है, कि सूर्य की किरणों के अस्तित्व को केवल तभी देखा जा सकता है जब उन्हें प्रतिबिम्बित करने के लिए आकाश में धुएं की रेखा हो। इसी प्रकार स्वयं को प्रकट या प्रतिबिम्बित करने के लिए परमात्मा भी सृष्टि का उपयोग करते हैं। सृष्टि के बिना-जो उनका 'प्रतिबिम्ब' है-परमात्मा का न तो कोई अर्थ रह जाता है और न व्यक्तित्व। परमेश्वरी शक्ति द्वारा बनाया गया मानव-मस्तिष्क ही एकमात्र ऐसा यन्त्र है, जो परमात्मा को प्रतिबिम्बित कर सकता है। मानव के सृजन के माध्यम से परमात्मा का अस्तित्व प्रतिबिम्बित होता है और मानवीय-चेतना के माध्यम से इसकी अभिव्यक्ति होती है, तथा इस प्रकार परमात्मा को अपनी अस्तित्व-चेतना होती है।

यह न भूलें कि सृजन की अभिव्यक्ति परमात्मा नहीं करते, उनकी शक्ति (आदिशक्ति) करती हैं। परमात्मा की शक्ति के रूप में वे (आदिशक्ति) सर्वव्याप्त अस्तित्व, सर्वसृजनशक्ति और सर्वशक्तिशाली पोषक (धारक) के रूप में उनकी अभिव्यक्ति करती हैं तथा मानव का अपने स्वामी सर्वशक्तिमान परमात्मा से परिचय करवाना भी उन्हीं की जिम्मेदारी है। परमात्मा पूर्ण हैं और जीवन के मूलस्रोत। शब्द और उपमाएं उनका वर्णन करने में अक्षम हैं। पूर्ण की तुलना अपूर्ण से नहीं की जा सकती। पुष्प, डाली, या छाल का वर्णन करके वृक्ष की भव्यता का पर्याप्त वर्णन नहीं किया जा सकता। अभिव्यक्ति का वर्णन कर के उसके स्रोत के बारे में पूरी तरह से नहीं बताया जा सकता। सीमित मानव अभिव्यक्ति परमात्मा के केवल किसी अंश या उनके किसी पक्ष विशेष का वर्णन मात्र ही कर सकती हैं।

सृजन की दूसरी अवस्था

दूसरी अवस्था में अपनी सारी शक्तियों को बिंदु में केन्द्रित करते हुए सृजन आदिवलय (आदिवृत्त) की अवस्था से आदिबिंदु (Primordial Point) की अवस्था की ओर बढ़ता है (आकृति १)। इस अवस्था में आदिपरमेश्वरीशक्ति अपने अहंकार का रूप धारण करती हैं। इस अहंकार को चित्र में दूसरे बिंदु के रूप में दर्शाया गया है। अब परमेश्वरी शक्ति दूसरा वलय (वृत्त) बनाती हैं। यह वलय आदिशालिनी की परमेश्वरी शक्ति का प्रतीक है। 'आदिवलय' आदिवृत्त का प्रतीक है। 'आदिबिंदु' और 'बिंदु' आदिशक्ति का प्रतीक हैं। 'वलय' आदिशक्ति की परमेश्वरी शक्ति 'आदिवलय' का प्रतीक है, जिसका प्रतिनिधित्व महाशक्ति करती हैं। यही महाशक्ति अब टूट कर बिंदु और वलय का रूप धारण करती हैं।

इस प्रकार परमपिता (श्रीसदाशिव) और परमेश्वरी माँ (श्रीआदिशक्ति) का परमेश्वरी जोड़ा अवतरित होता है। वे उनकी पत्नी हैं, प्रेमिका हैं, सखी हैं तथा प्रेम की दिव्यशक्ति हैं। उनकी अपनी शक्ति के प्रभामंडल (वलय) के अन्दर स्थित बिंदु के रूप में उन्हें दर्शाया जाता है। परमेश्वरी जोड़ा (सदाशिव और आदिशक्ति) पूर्ण सामंजस्यपूर्वक रहते हैं। अपनी शक्ति (आदिशक्ति) के स्वामी के रूप में, उनसे एकरूप श्री सदाशिव को उनके प्रति किया गया ज़रासा अपमान भी सह्य नहीं है। अपनी प्रेमिका-पत्नी से उनकी एकरूपता सम्पूर्ण है तथा पूर्ण पारस्परिक प्रेम से बंधी हुई है। सूक्ष्म सूझबूझ के साथ वे पूर्णतः एकरूप होकर रहते हैं। एक दूसरे के लिए उनके प्रेम का स्तर समान रूप से संतुलित तथा पूर्णतः समन्वित होता है। प्रेम किसी एक दिशा में प्रवाहित नहीं होता, प्रेम का प्रवाह निरंतर है, वैसे ही जैसे बिजली के सक्रिय (पॉजिटिव) और निष्क्रिय (नेगॅटिव) तारों के बीच सम्बन्ध जोड़ने पर बिजली की ऊर्जा का निरंतर प्रवाह होता है।

दर्शक के रूप में या सम्भाव्य ऊर्जा के रूप में अपने अधिकार का

उपयोग करते हुए परम पिता उन्हें (आदिशक्ति) सृजन की अपनी लीला का खेल खेलने के लिए प्रेरित करते हैं। वे (आदिशक्ति) परिवर्तक हैं या गतिज ऊर्जा (Kinetic Energy) हैं। महान से महानतम और दयालु से दयालुतम होने के बावजूद भी परम पिता परमात्मा ईर्ष्यालु हैं। आदिशक्ति के महिला या पुरुष बच्चों (अवतारों) के माध्यम से आदिशक्ति के सृजन कार्य में बाधा उत्पन्न करने वाले तथा उनके कार्य को बिगाड़ने वाले और आसुरी शक्तियों की अभिव्यक्ति करने वाले अधम मनुष्यों, आसुरी शक्तियों तथा राक्षसों को वे नष्ट कर देते हैं। सृजन में आसुरी शक्तियों की उत्पत्ति पर आगे चर्चा की जाएगी। अपनी शक्ति (श्रीआदिशक्ति) के साथ उनका सम्पूर्ण तालमेल है। अपनी प्रिय पत्नी के खेल को बिगाड़ने वाले या उसका उल्लंघन करने वाले मनुष्यों पर उनके क्रोध का कहर बरसता है, बिल्कुल वैसे ही जैसे माँ की अवज्ञा करने वाले बच्चों को कोई भी विवेकशील पिता सज़ा देता है। उनका क्रोध हिंसा की उस सीमा तक जा सकता है, जहाँ भगवान शिव के तांडव नृत्य से वे पूरी सृष्टि को नष्ट कर दें।

सृजन की तीसरी अवस्था

परम पिता का पूरा प्रभुत्व (अधिकार शक्ति) अब परमेश्वरी माँ में आ जाता है और वे अपने स्वामी के प्रति पूर्ण सम्मान की अभिव्यक्ति करती हैं। बिंदु रूप में सृजन की तीसरी अवस्था में वे (श्रीआदिशक्ति) केन्द्रक के चहुँ ओर अंडाकार मार्ग पर पिंड-प्रदक्षिणा करती हैं। उनकी यह पिंड-प्रदक्षिणा पिता के प्रति माँ के पूर्ण सम्मान को दर्शाती है और इसके द्वारा वे अपने पूर्ण व्यक्तित्व के प्रेममय समर्पण की अभिव्यक्ति करती हैं। उनकी ये क्रिया माँ के अपने स्वामी परमेश्वर को सुशोभित करने के लिए माला बनने जैसी है। दोनों परमेश्वरी शक्तियों का पारस्परिक सम्बन्ध इस प्रकार है, जैसे परम पिता (श्री सदाशिव) ने अपनी सारी शक्तियाँ अपनी प्रिय पत्नी को प्रदान कर दी हों और बदले में वे अपने स्वामी के प्रति पूर्ण समर्पण की अभिव्यक्ति कर रही हों!

एक दूसरे के प्रति उनका पारस्परिक सम्मान परमेश्वरी आनन्द का स्रोत है, दीर्घवृत्त (प्रदक्षिणा) के माध्यम से जिसकी अभिव्यक्ति होती है। ये दीर्घवृत्त (Ellipse) श्रीआदिशक्ति के परमेश्वरी प्रेम की शक्ति की अभिव्यक्ति करता है तथा सृजित सृष्टि के प्रति माँ के प्रेम का भी प्रतीक है। रोचक बात तो यह है कि दीपक की लौ, मानव-आभा (परिमल) तथा अण्डे का आकार भी दीर्घवृत्त की तरह वलयाकार (Elliptical) है।

सृष्टि की अण्डाकार आकृति 'पिंड' कहलाती है। किसी सामान्य अण्डे में दो घटक होते हैं: 'पीला भाग' (ज़र्दी) जो केंद्रक (न्युक्लिअस) है, और सफ़ेद भाग जो ऊर्जा है। आदि-जीव-द्रव्य (Proto Plasm) अण्डे के छिलके के लिए चहुँ ओर कैल्शियम (चूना) प्रदान करता है। बिल्कुल इसी प्रकार श्री आदिशक्ति अण्डाकार (दीर्घवृत्त) के रूप में सृष्टि के लिए (आवरण) कवच की रचना करती हैं।

आदि माँ का अण्डाकार आड़ोलन (प्रदक्षिणा) आदिशक्तियों का प्रथम आड़ोलन है और यह आदिशक्ति का प्रतीक भी है। आदि माँ के प्रेम की जीवन्त शक्ति की प्रथम अभिव्यक्ति होने के कारण अण्डाकार आदि-आड़ोलन 'आदिगति' के नाम से भी जाना जाता है। इस प्रकार सृजित हर चीज़ मूलत: एक अण्डाकार मार्ग पर ही चलती है। कई बार ये दीर्घवृत्त भिन्न आकार धारण कर लेता है। इसकी चर्चा हम बाद में करेंगे। एक बिंदु से चल कर दूसरे बिंदु के चहुँ ओर घूम कर वापिस उसी स्थान पर आने के लिए कम से कम दूरी तय करने के लिए मार्ग का अण्डाकार होना आवश्यक है। हमारे अस्तित्व में निराकार (अमूर्त) रूप से अभिव्यक्ति होने के लिए भी परमेश्वरी शक्ति इसी प्रकार घूमती हैं। किसी से जब हम प्रेम करते हैं, तो प्रेम की लहरियाँ उस व्यक्ति के चहुँ ओर घूम कर अण्डाकार वृत्त के रूप में हमारे पास लौट आती हैं और इस प्रकार प्रेम का आनन्द हम तक लौटा लाती हैं। जब हम किसी से घृणा करते हैं तब भी घृणा की लहरियाँ उस व्यक्ति के चहुँ ओर

घूम कर घृणा की पीड़ा के रूप में हमारे पास लौट आती हैं।

आकृति १ में, जैसे हम देख सकते हैं, आदि दीर्घवृत्त (आदिपिंड) की अवस्था अण्डाकार वृत्त से घिरे एक केंद्रक की है। जीव-विज्ञान में दीर्घवृत्त (Zygote) वह अवस्था है जहाँ नर शुक्राणु मादा अण्डाणु को उपजाऊ बनाने के लिए उसमें प्रवेश करता है। उर्वर अण्डाणु अब जीव धारण करने के योग्य बन जाता है। हमारे परम पिता और परमेश्वरी माँ के नर और मादा सामंजस्य (मिलन) से इस आदि दीर्घवृत्त (आदिपिंड) की रचना होती है और यह उपजाऊ अवस्था (लिंग) सृजन के सजीव आदि कोषाणु की प्रतीक है। इस उपमा से हम हिंदुओं की शिवलिंग की पूजा के महत्व को समझ सकते हैं। यह हमारे आदि-माता-पिता का प्रतीक है।

यह आदिलिंग-आदि दीर्घवृत्त के अन्दर स्थित शुक्राणु-आदि पिता श्री सदाशिव का प्रतीक है और इस बिन्दु के चहुँ ओर (दीर्घवृत्त) अण्डाणु श्री आदिशक्ति का प्रतीक है। आदिपिंड किसी सामान्य अण्डे की तरह है जिसमें द्रव्यमान का बराबर विभाजन नहीं होता - पीला भाग (पिता) अधिक वज़नी होता है और इसका आकार सफ़ेद भाग (माँ) से भिन्न होता है। आदिगति (आदि आड़ोलन) के कारण उर्वरक अवस्था एक निश्चित सीमा का सुस्पष्ट घुमाव (दीर्घवृत्त) प्राप्त कर लेती है।

ये प्रश्न भी पूछा जा सकता है कि इस सारी प्रक्रिया के घटित होने के लिए मिलन कब हुआ? यह अत्यन्त पावन विषय है और जिस प्रकार बच्चों को माता-पिता के पारस्परिक मिलन की चर्चा नहीं करनी चाहिए वैसे ही आत्माओं (आत्मसाक्षात्कारी) को भी परमेश्वरी जोड़े द्वारा सृष्टि के गर्भधारण का अनुमान लगाने से बचना चाहिए। यह रहस्य उद्घाटन योग्य नहीं है तथा परमेश्वरी माता-पिता के पावन सम्मान को बनाए रखने के लिए इसे पावन रहस्य ही बने रहना चाहिए। बच्चों को चाहिए कि कभी भी माता-पिता की गोपनीयता भंग न करें! पावनता तत्व (लज्जाशीलता) आनन्द

अमृत का सृजन करती है तथा आदि माता-पिता की पावन प्रेम-क्रिया को चमत्कारिक सौन्दर्य प्रदान करती है, बिल्कुल वैसे ही जैसे पति-पत्नी सम्बन्धों का कोमल मिठास, किसी अन्य के साथ इसकी चर्चा न किए जाने से अद्वितीय बन जाता है। पति-पत्नी का एक दूसरे के प्रति अन्तरजात गहन लगाव स्वत: ही उनके यौनसुख की अभिव्यक्ति पर पर्दा डाले रखता है।

खुली और निर्लज्ज अभिव्यक्ति सहन नहीं की जाती। समय के साथ-साथ मानव ने यह विवेक प्राप्त करके इसका आनन्द उठाया है, परन्तु पशु इस स्तर तक नहीं पहुँच पाये। मानव, पशुओं से कहीं उच्च है। विकास प्रक्रिया में पशुओं की चेतना अभी तक परिष्कृत नहीं हो पाई है।

कुछ लोगों ने जानबूझ कर नासमझ लोगों को पावनता के गहन महत्व के विषय में भटका कर अपराध किया है। एक दूसरे के प्रति समर्पित आदर्श पति-पत्नी हमेशा पूर्ण रोमांच का आनन्द उठाते हैं। रोमियो और जूलियट जैसे सम्पूर्ण रोमांच के विषय में जब हम पढ़ते हैं तो अपना चित्त उनके प्रेम के यौनपक्ष पर नहीं डालते, क्योंकि इस प्रकार उनके सम्बन्धों की रहस्यमय पावनता का सौन्दर्य नष्ट होता है। व्यक्ति ज्यों-ज्यों अपने धर्म से गिरता चला जाता है, वैसे वैसे वह रोमांच का आनन्द उठाने की मानवीय सम्वेदना भी खो देता है। पशु चेतना अपना लेने पर मानव स्वभाव में निहित श्रेष्ठता एवं सौन्दर्य ऐसे व्यक्ति के लिए पराया हो जाता है।

वलयाकार अवस्था के बाद श्री आदिशक्ति आदि-बिंदु रूप में निष्क्रिय और प्रेम मुद्रा में स्थापित श्री सदाशिव की ओर बढ़ती हैं। वे सृजन नहीं करना चाहतीं और अपने स्वामी परमेश्वर से प्रार्थना करती हैं कि उन्हें अपने अन्दर विलय प्रदान करें। परन्तु सदाशिव आदिशक्ति को प्रेमपूर्वक अपने से दूर धकेलते हैं और इस प्रकार उन्हें सुझाव देते हैं कि उनकी इच्छा है कि आदिशक्ति अपनी प्रथम आन्तरिक रेखीय (Linear) गति (लस्या) का सृजन करें। उनके धकेलने से आदिपिंड का आरम्भ होता है। (जैसे आकृति १ में

दर्शाया गया है) और उनकी इस प्रेमपूर्वक धकेलने की क्रिया के कारण वे स्वयं को आदिपिंड से बाहर धकेल लेते हैं। वे आदिशक्ति को इस प्रकार धकेलते हैं कि आदि विलम्ब (जरा सा रुकने) के बाद वलय (दीर्घवृत्त) टूट जाता है। इस प्रकार अन्ततः ॐ की पूरी आकृति की रचना हुई।

आदि माँ और आदि पिता (श्रीआदिशक्ति और श्रीसदाशिव) में परस्पर प्रेम की वे अत्यन्त मधुरतम भावनायें हैं, जिन्हें मनुष्य पूर्ण या आदर्श प्रेम का नाम देते हैं। वे सर्वोच्च पति-पत्नी के प्रतीक हैं। वे मानव प्रेम के स्रोत हैं क्योंकि सर्वशक्तिमान परमात्मा ही प्रेम के सर्वोच्च स्रोत हैं। वे महामानव हैं। अन्य सभी मानवीय सम्बन्ध जैसे पिता, माँ, बहन और भाई आदि सम्बन्ध भी उन्हीं के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं। लस्य की पूरी कथा का मंचन एक अत्यन्त सुन्दर काव्यमय नाटक के माध्यम से प्रेम अभिव्यक्ति के रूप में किया जा सकता है।

परम पिता प्रेमपूर्वक श्रीआदिशक्ति को अपनी ओर खींचते हैं, उन्हें प्रेरित करते हैं और प्रोत्साहनमय शक्तिप्रदायक प्रेरणा उन्हें प्रदान करते हैं। यह प्रेरणा श्रीआदिशक्ति को आत्मअभिव्यक्ति के लिए उत्साहित करती है। उनका अहंकार उनके संकोच तथा निष्क्रिय प्रेम-मुद्रा (लस्य) को समाप्त करता है, और वे अपना गौरवशाली व्यक्तित्व धारण करती हैं। इस प्रकार बहकावे में आकर श्रीआदिशक्ति अपने स्वामी एवं प्रियतम से अलग होकर अकेले सृजन करने के लिए तैयार हो जाती हैं।

प्रणव नाद

प्रणव का स्वर 'अनाहत' कहलाता है। सेए (Hatched) हुए अण्डे के टूटने की तरह से आदिअण्ड के टूटने पर स्वर की उत्पत्ति होती है। केंद्रक जब दीर्घवृत्त (वलय) से प्रस्थान करता है तब यह नाद सुनाई देता है :-

✻ आदिशक्ति के प्रथम रेखीय आड़ोलन (गति) से प्रथम आदि नाद -

'आ' (AA) की आवाज निकलती है।

✻ श्री सदाशिव के धकेलने से दूसरे आदिनाद - 'ऊ' (OO) की आवाज उत्पन्न होती है।

✻ तीसरा स्वर - 'म' - विलम्ब की अवस्था से उत्पन्न होता है और आदिपिंड (Primordial Zygote) की यह आवाज आदि पिंड के श्वास लेने और छोड़ने के बाद उत्पन्न होती है।

अत: प्रणव आदिशक्ति की सर्वव्यापी परमेश्वरी शक्ति है और अनाहत इस शक्ति द्वारा बिना किसी आघात के उत्पन्न हुई आवाज है। 'अनाहत' का वर्णन यदि 'प्रणव के स्वरघोष' के रूप में करें तो इसे बेहतर समझा जा सकता है।

ये तीनों आदि अक्षर 'आ', 'ऊ', और 'म' आदि माँ की तीन शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं :

✻ 'आ' महाकाली की जीवन एवं विनाश शक्ति का प्रतीक है।

✻ 'ऊ' महासरस्वती की सृजनात्मक शक्ति का प्रतीक है।

✻ 'म' महालक्ष्मी की पोषण या विकास शक्ति का प्रतीक है।

ये तीनों आदि अक्षर, बाद में 'ईं', 'ह्रीं' 'क्लीं' बीजमन्त्रों की रचना करते हैं। मिल कर ये बीजमन्त्र देवनागरी लिपि संस्कृत के स्वर उत्पन्न करने वाले (ध्वन्यात्मक) शब्दों की उत्पत्ति करते हैं। इनके विषय में चक्रों से सम्बन्धित अध्याय में विस्तारपूर्वक चर्चा की जाएगी।

आदि-अण्ड को सेने से बहुत पहले, आदिपिण्ड भ्रूणीय अवस्था में पहुँच जाता है। यह श्वास लेने लगता है और मध्य बिंदु के चहुँ ओर घूमने वाले पूरे अण्डाणु को 'आदि-अनाहत' स्वर से गुंजरित कर देता है। आदिशक्ति का श्वास प्रणव या परमेश्वरी शक्ति है, इसी के नाद को 'अनाहत' कहते हैं। अनाहत स्वर बिना किसी चोट (आघात) के उत्पन्न होता है और इसे हृदय की धड़कन के रूप में सुना जाता है। यह स्वर सात घटक

स्वरों (सात स्वरों या 'नादब्रह्म') का सम्मिश्रण है। इन स्वरों को यदि एक साथ सुना जाए तो सुन्दर शब्द 'ॐ' की रचना होती है। नादब्रह्म का यदि सन्धिविच्छेद किया जाए तो इसके घटकों से 'आ' 'ऊ' और 'म' जैसी आवाजें निकलती हैं।

इन्हें **'ॐ'** के आकार में लिखा जाता है। बाद में यह स्वर कुण्डलिनी मार्ग पर बने भिन्न सूक्ष्म चक्रों को पार करता हुआ ऊपर की ओर बढ़ता है और शब्द का रूप धारण करता है।

आदि-पिण्ड भी मानव पिण्ड (भ्रूण) की तरह से बढ़ता है। जिस प्रकार 'आदिपिण्ड' 'आदिपुरुष' रूप में विकसित होता है, वैसे ही मानव भ्रूण भी विकसित हो कर पूर्ण मानव बन जाता है। अतः यह कहना पूर्णतः सत्य होगा कि परमात्मा ने मानव की रचना अपनी छवि में की। आदि-पिण्ड विकास प्रक्रिया के माध्यम से अपनी पूर्ण परिपक्वता की अवस्था में तब तक विकसित होता है जब तक यह 'महा आदिपुरुष'-'विराट' की पूर्ण अवस्था प्राप्त नहीं कर लेता।

अपनी सुझबूझ (ज्ञान) के क्षेत्र के अनुसार अपनी अभिव्यक्ति करते हुए महाआदिपुरुष तीन पक्ष धारण करता है। वैसे ही जैसे मनुष्य की सूझबूझ के तीन क्षेत्र हो सकते हैं - घर पर, दफ़्तर में तथा समाज में, पुत्र, पति और पिता के रूप में - यद्यपि हमेशा वह एक ही व्यक्ति होता है। परमात्मा के साथ भी ऐसा ही है, उनकी अपनी शक्ति (आदिशक्ति) द्वारा सृजित क्षेत्र ही उनकी लीला का क्षेत्र है।

सर्वशक्तिमान परमात्मा 'परमेश्वर' कहलाते हैं और सर्वशक्तिमान परमात्मा की शक्ति 'परमेश्वरी' हैं। उनका (परमेश्वरी) निवास आदिपुरुष (विराट) के शिखर (तालु) पर है। परमात्मा मूलस्रोत हैं और उनके तीनों पक्ष उन्हीं से विकीर्णित होते हैं। वे 'जीवन वृक्ष' की जड़ की तरह से हैं और उनके तीनों पक्ष उस वृक्ष की तीन डालियों के समान हैं। वे सर्वसाक्षी आदिपुरुष हैं

और महाआदिपुरुष के हृदय में वे ईश्वर रूप में प्रतिबिम्बित हैं (आत्मा में परमात्मा)। उनकी शक्ति 'ईश्वरी' कहलाती हैं। सर्वसाक्षी परमात्मा की ये निर्लिप्त शक्ति हैं। ये सभी सजीव और निर्जीव तत्वों में विद्यमान हैं। मानव में ये उसके हृदय में आत्मा रूप में प्रतिबिम्बित हैं।

जैसे पहले दर्शाया गया है, सृजन आरम्भ करने से पूर्व आदिशक्ति तीन अमूर्त (निराकार) रूप धारण करती हैं। महासृजन या उत्पत्ति अवस्था के आरम्भ में ये तीन रूप विद्यमान होते हैं : 'वलय' 'बिन्दु' और 'अर्धबिन्दु'।

परमेश्वर रूप में सर्वशक्तिमान परमात्मा के तीन पक्ष

आदिशक्ति महाआदिपुरुष में सर्वशक्तिमान परमात्मा के तीन पक्षों की अभिव्यक्ति करती हैं। ये हैं 'सदाशिव' (ईश्वर), 'हिरण्यगर्भ' (प्रजापति), और 'विराट'।

सदाशिव

परमात्मा का कभी परिवर्तित न होने वाला स्वरूप सदाशिव कहलाता है और उनकी शक्ति महाकाली रूप में अवतरित होती हैं। महाकाली शक्ति के माध्यम से परमात्मा की शक्ति उनकी सृष्टि सृजन की इच्छा की अभिव्यक्ति करती हैं। महाकाली शक्ति अस्त्वि (जीवन) के लिए ज़िम्मेदार हैं। विकास प्रक्रिया में बाधा डालने वाले दानवों और राक्षसों को वे नष्ट कर देती हैं। परमात्मा के अस्तित्व को यद्यपि ईश्वर रूप-विराट-के हृदय में महसूस किया जा सकता है, उनके जीवित रहने की इच्छा की अभिव्यक्ति सदाशिव के माध्यम से होती है। इस प्रकार सदाशिव जीवन के देवता (जीवन-देव) कहलाते हैं। क्योंकि अस्तित्व का विलोम शब्द विनाश है, अत: उनका एक अन्य नाम प्रलयंकर (महाकाल) भी है।

मानव शरीर में भगवान शिव मनुष्य के हृदय के बाईं ओर अपनी शक्ति पार्वती या शिवानी के साथ निवास करते हैं। वे सभी मृत तथा मानव

मस्तिष्क को बन्धनग्रस्त करने वाले तत्वों को एकत्र करते हैं। जैसे किसी चलते हुए कारखाने में ज्वलन क्रिया से धुआँ उत्पन्न होता है, जीवन्त प्रक्रिया में विराट की गतिविधि भी आदि-सामूहिक-अवचेतन मन (महामनस) का सृजन करती है। विराट की जीवन्त गतिविधि से उत्पन्न होने वाला धुआँ इस आदि अवचेतन-मस्तिष्क (महामनस) में एकत्र हो जाता है। यह 'आदि-प्रति-अहंकार' के नाम से जाना जाता है। श्री सदाशिव इस आदि-प्रति-अहंकार में मृत आत्माओं से परिपूर्ण बहुत से संस्तरों वाले क्षेत्र की रचना करते हैं। अधमतम स्तर के क्षेत्र में शैतानी और अत्यधिक क्रूर आत्माओं को स्थान दिया जाता है। बहुत बार वे जीवित मनुष्यों के चेतन-मस्तिष्क में प्रवेश कर जाती हैं। इस आदि-अवचेतन-मस्तिष्क (महामनस) के आक्रमण तथा इन देहविहीन क्रूर आत्माओं की अभिव्यक्ति से मनुष्यों की रक्षा करने का कार्य श्रीसदाशिव का है। मनुष्य के अन्दर जिस वाहिका पर यह (महामनस) कार्यरत है वह 'ईड़ा नाड़ी' (मनस) कहलाती है। यह नाड़ी वर्तमान अनुभवों को भूतकालिक अनुभवों में परिवर्तित कर के इन्हें व्यक्तिगत-अवचेतन-मस्तिष्क में एकत्र कर देती है। मनुष्य के अन्दर इस की स्थूल अभिव्यक्ति 'बायें अनुकम्पी-नाड़ी-तन्त्र' के रूप में होती है।

श्री शिव जीवन (अस्तित्व) का प्रतिनिधित्व करते हैं और उनकी शक्ति जड़ पदार्थों में विद्युत-चुम्बकीय लहरियों के रूप में तथा जीवधारियों में प्राण (जीवन) के रूप में अभिव्यक्त होती है। ये दोनों शक्तियाँ मूल प्रणव या परमेश्वरी शक्ति के दो स्वरूप हैं। जैसे बाँसुरी में प्रवाहित की जाने वाली एक फूंक संगीत के सात भिन्न स्वर उत्पन्न करती है वैसे ही प्रणव भी एक समग्र शक्ति है। बिल्कुल इसी प्रकार से, विद्युत चुम्बकीय लहरियाँ और प्राण, मूलप्रणव से उत्पन्न हुए दो घटक हैं, एक ही बाँसुरी से निकाले गये दो भिन्न स्वर हैं।

परमेश्वर को यदि कभी अपनी लीला का आनन्द आना बन्द हो जाए तो वे महाआदि-पुरुष (Primordial Being) के हृदय से निकल जाते हैं और

सृजन लीला का अंत हो जाता है। विराट के हृदय से आत्मा रूप में स्थापित अपने प्रतिबिम्ब को वहाँ से हटाकर वे ऐसा करते हैं। हृदय बन्द हो जाने पर मानव शरीर की सभी गतिविधियों के रुक जाने से हम इसकी तुलना कर सकते हैं। परिणामस्वरूप व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है।

श्रीसदाशिव पक्ष सर्वशक्तिमान परमात्मा के तमोगुण (इच्छा वृत्ति) को दर्शाता है, क्योंकि उन्हें जीवन की इच्छा थी और अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति उन्होंने अस्तित्व धारण कर के की। उनकी इच्छा शक्ति की अभिव्यक्ति 'महाकाली' रूप में होती है। ये शक्ति आदिपुरुष के हृदय की बाईं ओर के माध्यम से कार्य करती है। ये सृष्टि के भावनात्मक पक्ष को बनाए रखती है। तमोगुण (इच्छावृत्ति) आदि पुरुष के हृदय को घेरे रखता है और उन पर कार्य करता है, परन्तु हृदय में निवास करने वाले ईश्वर (आत्मा), सृजन लीला के भावनात्मक पक्ष से बंधे हुए नहीं हैं। सृजन का भावनात्मक पक्ष इच्छा की अभिव्यक्ति करता है परन्तु यह भावना मात्र है, सृजन नहीं है। वास्तविक सृजन तो परमात्मा के सृजनात्मक पक्ष-महासरस्वति शक्ति- के माध्यम से होता है। मानव में हृदय की धड़कन उसी अस्तित्व शक्ति की अभिव्यक्ति है। इसे भावनात्मक पक्ष का नियंत्रण करने वाले जीवन (प्राण) के रूप में महसूस किया जाता है। हृदय में निवास करने वाले ईश्वर किसी भी प्रकार से जीवनशक्ति से सम्बन्धित, प्रभावित या आकर्षित नहीं है। वे पूर्णतः निर्लिप्त हैं और श्रीसदाशिव के लीला सामप्त करते ही वे परमेश्वर में विलीन हो जाते हैं।

हिरण्यगर्भ (प्रजापति)

हिरण्यगर्भ सर्वशक्तिमान परमात्मा का सृजनात्मक पक्ष है। ये आदिपुरुष के उदर (वॉइड) में गतिशील है। आदिपुरुष का उदर भवसागर (भ्रमसागर) भी कहलाता है। (भवसागर के सृजन का वर्णन अन्यत्र किया गया है) हिरण्यगर्भ की शक्ति महासरस्वती के रूप में अवतरित होती हैं और पूरी

भौतिक सृष्टि उनकी शक्ति तथा गतिविधि के परिणामस्वरूप हैं : उन्होंने (महासरस्वती) ही सारी आकाशगंगाओं, सितारों और हमारे सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी समेत सारे ग्रहों का सृजन किया है। वे आदिपुरुष की विचार शक्ति का कार्य भी करती हैं तथा ये प्रक्रिया 'आदि-अहंकार' की उत्पत्ति करती है। ये शक्ति 'आदि-पिंगला नाड़ी' वाहिका पर कार्यरत है तथा यह 'आदि-पूर्व-चेतन मस्तिष्क' (आदि चित्) की अभिव्यक्ति करती है। यह डाकिए की तरह से कार्य करती है, जो सर्वशक्तिमान परमात्मा की बुद्धि को संदेश पहुँचाता है। पृथ्वी पर मानव के भौतिक शरीरों की सृष्टि करने वाले पंच-आदितत्वों का आदिपुरुष में सृजन इसी शक्ति के माध्यम से होता है।

हिरण्यगर्भ आदिपुरुष के रजोगुण (सृजनात्मक वृत्ति) का प्रतिनिधित्व करते हैं। मानव में इस शक्ति की अभिव्यक्ति मनुष्य की सृजनात्मक शक्ति से होती है। सूक्ष्मरूप से यह रीढ़ की हड्डी में स्थित पिंगला नाड़ी वाहिका पर कार्यरत है और इसकी स्थूल अभिव्यक्ति 'दायें अनुकम्पी-नाड़ी-तन्त्र' के रूप में होती है। यह मानव अहम् का सृजन करती है जिसके माध्यम से मनुष्य अपने भविष्य के विषय में सोचता है। मनुष्य की सारी योजनायें व विचार इसी शक्ति के परिणाम स्वरूप घटित होते हैं। मानव में सर्वशक्तिमान परमात्मा के हिरण्यगर्भ पक्ष की अभिव्यक्ति सृष्टा श्रीब्रह्मदेव के माध्यम से होती है। विकास प्रक्रिया में यद्यपि ब्रह्मदेव की कोई भूमिका नहीं है, परन्तु विकास के लिए आवश्यक भौतिक शरीर तथा सोचने के लिए अहंकार श्रीब्रह्मदेव ही प्रदान करते हैं।

विराट

आदिपुरुष के शरीर के रूप में परिपक्व होने पर 'आदि पिंड' (युग्मज) 'विराट' कहलाता है। ऐसा तब होता है जब उनका शरीर (मानव शरीर की तरह) अपने सभी पक्षों तथा तत्वों की पूरी अभिव्यक्ति करता है। ये तत्व जीवधारियों, मनुष्यों, देवी-देवताओं की तथा 'आदि-कुण्डलिनी की

भौतिक अभिव्यक्ति हैं।

परमात्मा के विराट पक्ष की शक्ति विराटांगना कहलाती हैं। आदि-पुरुष के आदि-मस्तिष्क (आदि सहस्रार) और आदिहृदय (आदि अनाहत) के माध्यम से इसकी अभिव्यक्ति होती है। महालक्ष्मी रूप में अवतरित होकर विराटांगना आदि सुषुम्ना नाड़ी के मध्य मार्ग पर कार्य करती हैं।

श्रीविष्णु का सृजन विराट के नाभिचक्र (आदि-नाभि-चक्र) पर होता है। नाभि भवसागर से घिरी हुई है। भिन्न समयों पर इसी स्थान (नाभि चक्र) पर अवतरित होकर मध्यमार्ग पर चलते हुए वे विकास प्रक्रिया का कार्य करते हैं। आदि पुरुष (विराट) भगवान विष्णु मनुष्य रूप में अवतरित होते हैं।

रीढ़ में सूक्ष्म मध्य वाहिका, सुषुम्ना नाड़ी के माध्यम से इस शक्ति की अभिव्यक्ति होती है और स्थूल रूप में परा-अनुकम्पी- नाड़ी तन्त्र पर।

श्रीविष्णु की वाहिका उत्क्रान्ति पथ है तथा विराट के विष्णु रूप में निम्नलिखित दस अवतरण मानव के विकास में सहायक हुए हैं।

i. मछली .... मत्स्य अवतार
ii. कछुआ .... कूर्म अवतार
iii. जंगली सूअर .... वराह अवतार
iv. नर-सिंह .... नरसिंह अवतार
v. बौना पुरुष .... वामन अवतार
vi. उग्र पुरुष .... परशुराम अवतार
vii. जनहितैषी राजा .... राम अवतार
viii. साक्षी-लीलाघर .... विराट कृष्णावतार
ix. विराटपुत्र ईसामसीह .... बुद्ध (महाविष्णु) अवतार
x. श्वेत अश्वारूढ़ .... कल्कि अवतार (सर्व-सामूहिक अस्तित्व)

आदिशक्ति की शक्ति

परमात्मा के तीन पक्षों की अभिव्यक्ति उनकी शक्ति, अदिशक्ति द्वारा होती है। वे तीन शक्तियों-महाकाली, महासरस्वती और महालक्ष्मी के रूप में अवतरित होती हैं और त्रिगुणात्मिका रूप से इन्हें बहुगुणित करती हैं। परन्तु ईसाई परम्परा में आदि माँ (आदिशक्ति) को अवतार लेने की शक्ति भी प्रदान की गई है : वे स्वयं मानव रूप धारण कर सकती हैं। विकास प्रक्रिया का मार्गदर्शन करने के लिए या तो वे स्वयं अवतार धारण करती हैं या पुरुष और महिला अवतरणों का सृजन करके उनके माध्यम से कार्य करती हैं।

परमात्मा की तुलना यदि हम किसी भौतिक जीव से और उनकी शक्ति आदिशक्ति की तुलना उस प्रकाश से करें जिसका अस्तित्व सम्बन्धित अनुपात में होता है तो परमात्मा के सृजन कार्य बंद करते ही वे (आदिशक्ति) उनमें विलीन हो जाती हैं। सृजन किसी दर्पण या प्रतिबिम्बक के समान है। परमात्मा यदि प्रकाश बन्द कर दें तो प्रतिबिम्ब का कोई अस्तित्व ही नहीं रह जाता। ऐसी स्थिति में आदिशक्ति की परमात्मा से सम्पर्क बनाए रखने की या उनका मनोरंजन करने की शक्ति भी समाप्त हो जाती है।

आदि पुरुष के शरीर में विकसित हो कर आदिशक्ति शरीर धारण करती हैं, जब कि सर्वशक्तिमान परमात्मा, परमेश्वर रूप में आदि पुरुष के सिर के तालू पर निवास करते हैं। ईश्वर रूप में विराट के हृदय (आदिअनाहत) में प्रतिबिम्बित होकर साक्षी रूप से वे अपने शरीर क्षेत्र को देखते हैं। आदिपुरुष का लंगरघाट (moorings) परमेश्वर के सर्व समग्र रूप में है। अत: विराट जब पृथ्वी पर श्रीविष्णु रूप में अवतरित होते हैं तो उनका अवतरण परम पुरुष के प्रक्षेपण (प्रकटन) के रूप में होता है। इसी प्रकार से ब्रह्मदेव (प्रजापति) और सदाशिव (शिव) के लंगरघाट (moorings) भी परमेश्वर में ही होते हैं।

सर्वशक्तिमान परमात्मा पूर्ण सौन्दर्य, पूर्णज्ञान (सत्य) और पूर्ण प्रेम की मूर्ति हैं। अपने क्षेत्र के वे ज्ञाता (क्षेत्रज्ञ) हैं और उनके क्षेत्र का विकास उनकी

शक्ति, आदिशक्ति के माध्यम से होता है। उनके तीन पक्ष आदिशक्ति की शक्तियों में प्रतिबिम्बित होते हैं। उनका व्यक्तित्व न बढ़ता है न घटता है, न विस्तृत होता है न संकुचित। उनकी दृष्टि बढ़ते या घटते हुए क्षेत्र को देखती है। आदिशक्ति रूप में उनकी शक्ति न बढ़ती है न घटती है, परन्तु वे उपलब्ध स्थान के अनुरूप विस्तृत होती हैं।

आदिशक्ति की अन्य शक्तियाँ

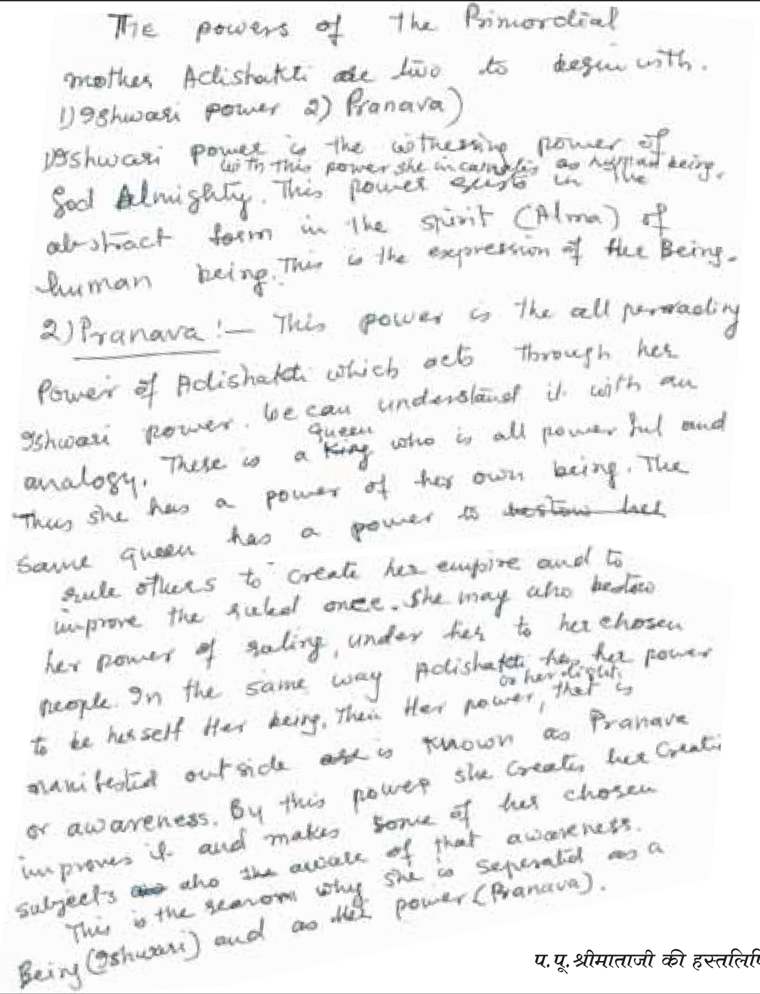

The powers of the Primordial
mother Adishakti are two to begin with.
1) Ishwari power 2) Pranava)
1) Ishwari power is the witnessing power of
with this power she incarnates as human being.
God Almighty. This power exists in the
abstract form in the spirit (Atma) of
human being. This is the expression of Her Being.
2) Pranava :— This power is the all pervading
Power of Adishakti which acts through her
Ishwari power. We can understand it with an
analogy. There is a Queen who is all powerful and
Thus she has a power of her own being. The
same queen has a power to ~~bestow her~~
rule others to create her empire and to
improve the ruled ones. She may also bestow
her power of ruling, under her to her chosen
people. In the same way Adishakti has her power
to be herself Her being. Then Her power, or her light, that is
manifested outside ~~and~~ is known as Pranava
or awareness. By this power she creates her creation
improves it and makes some of her chosen
subjects ~~as~~ also aware of that awareness.
This is the reason why she is seperated as a
Being (Ishwari) and as Her power (Pranava).

प.पू.श्रीमाताजी की हस्तलिपि

सर्वप्रथम आदिशक्ति की दो शक्तियाँ हैं : परमेश्वरी शक्ति तथा प्रणव शक्ति।

परमेश्वर के साथ निराकार रूप में रहने वाली परमेश्वरी शक्ति सर्वशक्तिमान परमात्मा की साक्षीत्व शक्ति है। यह उनकी (आदिशक्ति) अस्तित्व शक्ति है और इसी के द्वारा वे मानव रूप में अवतरित होती हैं। इस शक्ति को उनकी 'आत्मधारण शक्ति' (कार्यान्वयन) या आत्मसाक्षात्कार शक्ति का नाम दिया जाता सकता है।

प्रणव शक्ति आदिशक्ति की 'सर्वव्यापी शक्ति' या 'प्रकाश शक्ति' है, जो उनकी परमेश्वरी शक्ति के माध्यम से प्रसारित होती है। इसे एक उदाहरण के माध्यम से बेहतर समझा जा सकता है। किसी सर्वशक्तिमान सम्राज्ञी के पास अपने अस्तित्व की शक्ति है। उसमें दूसरों पर शासन करने की शक्ति है, अपने लिए साम्राज्य खड़ा करने की शक्ति है तथा उनके द्वारा अपनी प्रजा के जीवन को बेहतर बनाने की शक्ति है। वे अपनी पसंद के कुछ व्यक्तियों को शासन करने की शक्ति भी प्रदान कर सकती हैं। इसी प्रकार आदिशक्ति के पास भी अपने अस्तित्व की शक्ति है, स्वयंशक्ति सम्पन्न बने रहने की शक्ति, या अपने प्रकाश की शक्ति का प्रक्षेपण या इसकी अभिव्यक्ति बाह्य सृष्टि में करने की शक्ति है जो संसार में प्रणव या चेतना के नाम से जानी जाती है। इस शक्ति द्वारा वे अपने सृजन को आकार देती हैं और इसमें सुधार भी करती हैं। वे मनुष्यों का सृजन करती है जो उनकी कृपा से आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करते हैं। इस प्रकार वे अपनी प्रजा के कुछ चुने हुए लोगों को अपनी चेतना या प्रकाश प्रदान करती हैं।

प्रणव जब सुप्त अवस्था में होता है तो यह कुण्डलिनी के नाम से जाना जाता है, परन्तु आत्मा (ईश्वरी) से मिलन के बाद यह ज्योतिर्मय हो उठता है। प्रणव आदिशक्ति के पूर्ण नियंत्रण में कार्य करता है। आदिशक्ति में तीन गुण हैं जो इसे तीन स्वरूपों में परिवर्तित करते हैं। उनकी शक्तियाँ इस प्रकार है :

महाकाली (शिवानी) शक्ति

महाकाली (शिवानी) शक्ति के रूप में अपनी प्रथम शक्ति द्वारा वे (आदिशक्ति) पदार्थों तथा जीवन्त शरीरों के कण-कण में विद्युत चुम्बकीय लहरियों के रूप में विद्यमान रहती हैं। ये शक्ति प्रणव का एक स्वरूप है, आदिशक्ति की एकमात्र और समग्रता प्रदायक शक्ति। भौतिक पदार्थों में ये शक्ति हर अणु के केन्द्रक में विद्यमान होती है और विद्युत चुम्बकीय शक्तियों का सृजन करने वाली चैतन्य लहरियाँ प्रसारित करती है। पौधों जैसे तुच्छ जीवन्त स्वरूपों में यह जीवनशक्ति (Life Force) के रूप में विद्यमान होती है तथा विकसित पशुओं और मनुष्यों में उनके हृदय की धड़कन के रूप में इसकी अभिव्यक्ति होती है। सभी सृजित पदार्थों के कण-कण में यह शक्ति दीपक की बाती की तरह से जलती है। ऐसा आदिशक्ति की इच्छावृत्ति (तमोगुण) के परिणाम स्वरूप है। महाकाली अस्तित्व (जीवन) की शक्ति की प्रतिनिधि हैं। अस्तित्व को नकारना क्योंकि मृत्यु है अत: वे विनाश की भी अभिव्यक्ति करती हैं। वे विराट की बाईं आदिवाहिका पर कार्य करती हैं, ये वाहिका 'आदि ईड़ानाड़ी' कहलाती है। इस नाड़ी में वे सृष्टि के सभी मरे हुए तत्वों को एकत्र करती हैं।

महासरस्वती (हिरण्यगर्भिणी) शक्ति

अपनी दूसरी सृजनात्मक भौतिक शक्ति, महासरस्वती (हिरण्यगर्भिणी) द्वारा आदिशक्ति प्रणव को भौतिक शक्ति में परिवर्तित करती हैं और इस प्रकार उन कारणात्मक सार तत्वों (Casual Essences) का सृजन करती हैं, जिनसे अन्तत: 'पंचआदितत्वों' का सृजन होता है। ये 'पंचआदितत्व' आकाशगंगाओं, सौर प्रणाली और सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी समेत अन्य ग्रहों के सृजन हेतु पदार्थ-पुंज बनाने के लिए उपयोग होते हैं। आदिपुरुष के उदर में विद्यमान ये शक्ति 'आदि स्वाधिष्ठान चक्र' के माध्यम से कार्य करती है। ये शक्ति आदिशक्ति की सृजनात्मक एवं कार्यान्वयन वृत्ति (रजोगुण) के

फलस्वरूप है।

महालक्ष्मी शक्ति

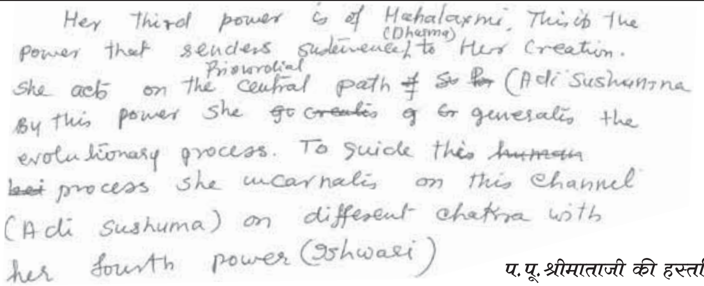
Her third power is of Mahalaxmi (Dharma). This is the power that renders sustenance to Her Creation. She acts on the Primordial central path of (Adi Sushumna. By this power she ~~go creates~~ generates the evolutionary process. To guide this ~~human~~ process she incarnates on this Channel (Adi sushuma) on different chakra with her fourth power (Ishwari)

प.पू.श्रीमाताजी की हस्तलिपि

उनकी तीसरी शक्ति 'महालक्ष्मी' हैं और यही उनकी सृष्टि को पोषण प्रदान करती हैं। ये 'आदिमध्य वाहिका' - 'आदिसुषुम्ना नाड़ी' - पर कार्य करती हैं। इस शक्ति द्वारा वे (आदिशक्ति) विकास प्रक्रिया की उत्पत्ति करती हैं और सृष्टि के भिन्न स्वरूपों को भिन्न चरित्र (स्वभाव) प्रदान करने के लिए यह शक्ति पोषण विधियों (धर्मों) में परिवर्तन करती हैं। इस प्रक्रिया में मार्गदर्शन करने के लिए, ये अपनी चौथी शक्ति, परमेश्वरी, के साथ इस वाहिका पर स्थित भिन्न चक्रों पर अवतरित होती है।

परमेश्वरी (ईश्वरी) शक्ति

आदिशक्ति जब मानव रूप में अवतरित होती हैं तो उनकी परमेश्वरी शक्ति 'ईश्वरी' के रूप में प्रतिबिम्बित होती हैं। जब वे अकेली अवतार लेती हैं तो यह 'जगदम्बा' (जगतजननी) या आदिशक्ति (सृष्टि का सृजन करने वाली) स्वरूप होता है। सर्वशक्तिमान परमात्मा के तीनों पक्ष जब मानव रूप में अवतरित होते हैं तो वे भी शक्तिरूप में अवतार धारण करती हैं। पिता की भूमिका के बिना वे इस पृथ्वी पर अपने पुत्र का सृजन करती हैं, देवता पुत्र (श्रीगणेश) का सृजन करती हैं जिन्होंने बाद में ईसामसीह (जीज़स क्राइस्ट) बन कर मानव जन्म लिया। ऐसी सभी स्थितियों में वे सुप्त (अव्यक्त) माँ के रूप में कार्य करती हैं।

प्रणव शक्ति

आदिशक्ति की पाँचवी शक्ति प्रणव (पूर्ण चेतना) है, जो उनकी ईश्वरी शक्ति की 'आभा' या उनका 'प्रेम-श्वास' है। प्रणव परमात्मा के प्रेम की शक्ति है। यह 'सर्वव्यापी', 'सर्वसमग्र' - 'सर्वज्ञाता' और 'सर्वसंयोजक' शक्ति है जिसकी अनुभूति आत्मसाक्षात्कार के बाद चैतन्य लहरियों या आदिशक्ति की शीतल वायु (The Cool Breeze of the Holy Ghost) के रूप में होती है। मानव हृदय में यह आत्मा की शक्ति है। यह सभी मनुष्यों और सभी सजीव और निर्जीव तत्वों और पदार्थों में विद्यमान है। परन्तु आभा में यदि प्रकाश का अभाव है तो यह जागृत अवस्था में नहीं है। मनुष्य के अपने सत्य स्वरूप को धारण करने पर जब विकास प्रक्रिया अपने शिखर पर पहुँचती है तो सहजयोग के माध्यम से कुण्डलिनी जागृति (अवशिष्ट शक्ति) द्वारा ये तीनों शक्तियाँ समग्र हो जाती हैं और तीन मानवीय शक्तियों तथा आत्मा में योग घटित होता है। इस घटना के साथ-साथ नव आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति (साधक) से चैतन्य प्रवाहित होने लगता है। जब आदिशक्ति अवतरण लेती हैं तो उनके शरीर से चैतन्य लहरियाँ वेगपूर्वक बह निकलती हैं और आत्मसाक्षात्कारी मनुष्य के शरीर के माध्यम से ये चैतन्य प्रतिबिम्बित होता है। आत्मसाक्षात्कार के माध्यम से साधक अपनी परमेश्वरी माँ के शरीर के अंग-प्रत्यंग बन जाते हैं और उनके दिव्य अस्तित्व के विस्तार के रूप में कार्य करते हुए वे भी उनके प्रेम की दिव्यशक्ति (चैतन्य) प्रवाहित करते हैं।

ये तीनों शक्तियाँ जब समग्र होती हैं तो आत्मा के ज्योतिर्मय होने के कारण प्रणव का सृजन करती हैं। घर में उपयोग होने वाले गैस के बर्नर का उदाहरण इस घटना की स्पष्ट व्याख्या करने के लिए पर्याप्त होगा। बर्नर के अन्दर डाली गई बत्ती की लौ निरन्तर जलती है। इसकी तुलना ईश्वरी शक्ति से की जा सकती है। प्रणव की सुप्त शक्ति की रचना करने के लिए तीनों

शक्तियों के समग्र होने की तुलना गैस की शक्ति से की जा सकती है। अदृश्य गैस (प्रणव) को जब जलती हुई लौ (ईश्वरी शक्ति) से जोड़ा जाता है तो प्रज्ज्वलन के कारण प्रकाश आश्चर्यजनक रूप से बढ़ जाता है। यह उदाहरण 'ईश्वरी शक्ति' की 'प्रज्ज्वलन शक्ति' और 'गैस' की 'समग्र सुप्त प्रणव' (कुण्डलिनी शक्ति) के रूप में व्याख्या करने में सहायक हो सकता है। प्रज्ज्वलित होने पर निकलने वाला प्रकाश चेतना है या ज्योतिर्मय प्रणव।

सृजन की चार अवस्थायें

सृजन कार्य अस्तित्व की चार अवस्थाओं के माध्यम से हुआ। इन भिन्न अवस्थाओं में आदिशक्ति जिस भी रूप में अवतरित होती हैं, वो सभी रूप आदि माँ के एकमेव अद्वितीय व्यक्तित्व से निकलते हैं।

उत्पत्ति अवस्था (Genesis) -

ॐ (प्रणव) के स्वतन्त्र होने और कुण्डलिनी के सृजन से पूर्व अमूर्त (निराकार) अवस्था होती है। उत्पत्ति अवस्था में सर्वशक्तिमान परमात्मा और आदिशक्ति 'परमेश्वर' और 'परमेश्वरी' के रूप में विद्यमान होते हैं।

वैकुण्ठ अवस्था -

यह विराट के शरीर के रूप में और आदिपुरुष की रीढ़ तथा मस्तिष्क में विद्यमान देवी-देवताओं सहित आदिपिण्ड के पूर्ण परिपक्वता प्राप्त करने के बाद की अवस्था है। वैकुण्ठ अवस्था में सर्वशक्तिमान परमात्मा और आदिशक्ति तीन रूप धारण करते हैं।

- सदाशिव और महाकाली
- विराट और विराटांगना (महालक्ष्मी)
- हिरण्यगर्भ (प्रजापति) और महासरस्वती

क्षीरसागर अवस्था -

अपने सभी पक्षों (तत्वों) समेत आदिपुरुष जब पूर्ण परिपक्वता प्राप्त

करते हैं तब यह अवस्था आती है। क्षीरसागर नामक तीसरी अवस्था में सर्वशक्तिमान परमात्मा और आदिशक्ति वैकुण्ठ में अपने पक्षों के अनुरूप निम्मलिखित रूप धारण करते हैं :

* सदाशिव (शिवरूप)
* महाकाली (काली रूप)
* विराट (विष्णु रूप)
* विराटांगना (लक्ष्मी रूप)
* हिरण्यगर्भ (ब्रह्मदेव रूप)
* महासरस्वती (सरस्वती रूप)

संसार (भवसागर) अवस्था -

मानव द्वारा आधुनिक काल तक पृथ्वी पर सृजित किया गया संसार सृजन की चौथी अवस्था है। आदिशक्ति ने भवसागर अवस्था के चारों युगों में जन्म लिया : सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापर युग और कलियुग।

सत्य युग

सत्य युग में आदिशक्ति ने विष्णु की शक्ति लक्ष्मी के रूप में अवतार धारण किया। ये महालक्ष्मी का मानव संसार युग रूप है। महाकाली के मानव संसार युग रूप में भी वे केवल दुर्गा, जगतजननी रूप में एकहज़ार बार अवतरित हुईं, जिनमें से एक सौ आठ उनके मुख्य अवतरण थे। दुर्गा (काली), लक्ष्मी और सरस्वती के अवतरण परमेश्वरी (अलौकिक) अवतरण हैं, परन्तु स्वभाव तथा रूप से वे पूर्णत: मानवीय हैं।

त्रेतायुग

श्रीराम के युग, त्रेता युग में आदिशक्ति अपने तीन पक्षों की अभिव्यक्ति करते हुए तीन भिन्न रूपों में अवतरित हुईं :

१) सीता (महालक्ष्मी) राजा जनक की पुत्री जानकी के रूप में।

महालक्ष्मी का यह प्रथम मानव (लौकिक) अवतरण था।

२) सति अनसूया (महासरस्वती) महान ऋषि अत्रि की पत्नी के रूप में।

३) मन्दोदरी (महाकाली) राक्षस रावण की पत्नी के रूप में।

द्वापर युग

द्वापर युग में भगवान कृष्ण के समय, अपने तीन पक्षों की अभिव्यक्ति करने के लिए आदिशक्ति भिन्न तीन मानव रूपों में अवतरित हुईं :

१) राधा (महालक्ष्मी) श्रीकृष्ण के प्रथम एवं शाश्वत प्रेम के रूप में।

२) रुक्मिणी (महासरस्वती) कृष्ण की रानी के रूप में।

३) विष्णुमाया (महाकाली) श्रीकृष्ण की बहन के रूप में। वो बहुत थोड़े समय जीवित रहीं। बाद में उन्होंने पाण्डव पत्नी द्रौपदी के रूप में जन्म लिया।

कलि युग

कलियुग अंतिम निर्णय का समय है। इस समय व्यक्ति को बहुत सावधान रहना आवश्यक है क्योंकि आपका आकलन होने वाला है कि आपने 'सत्य' को अपनाया या नहीं। अब भी यदि आप असत्य के साथ हैं तो आपका आकलन होगा। आपको स्वयं अपना आकलन करना होगा, किसी और को आपका आकलन करने की आवश्यकता नहीं है। (L.A.2000)

तीन गुणों का सृजन

देवनागरी लिपि में पावन शब्द ॐ साढ़ेतीन वलयों (लपेटों) में लिखा जाता है। जैसा आकृति १ में स्पष्ट दिखाया गया है, ये तीनों वलय अण्डाकार वृत्त में बनाए गये हैं।

पहली अण्डाकार गतिविधी 'आ' के द्वारा आदिशक्ति सृजन की इच्छा करती हैं, दूसरे आड़ोलन 'ऊ' के द्वारा वे सृजन के लिए तैयार होती हैं और तीसरी गतिविधि 'म' द्वारा वे अपने सृजित शिशु के प्रति अपने प्रेम की अभिव्यक्ति करती हैं। इस प्रकार तीनों गुण-तमोगुण (इच्छा), रजोगुण

(क्रिया) और सतोगुण (रहस्य उद्‌घाटक) का सृजन होता है। पंखे की तरह ये अण्डाकार आड़ोलन घूमते हैं और तीन सौ साठ अंश तक झुकते हुए भिन्न ऊँचाई की तरंगे (Wave Length) उत्पन्न करते हैं जिनसे जीवन को विविधता प्राप्त होती है। इस प्रकार, अन्ततः, भिन्न स्वभाव के लोगों का सृजन होता है। ये तीनों गुण सर्वशक्तिमान परमात्मा की तीन शक्तियों की अभिव्यक्ति हैं और ये महाकाली, महासरस्वती और महालक्ष्मी के रूप में प्रकट होते हैं। यद्यपि ये संख्या में तीन है, परन्तु ये तीनों शक्तियाँ आदिशक्ति रूप में पूर्णतः समग्र और संयोजित होती हैं।

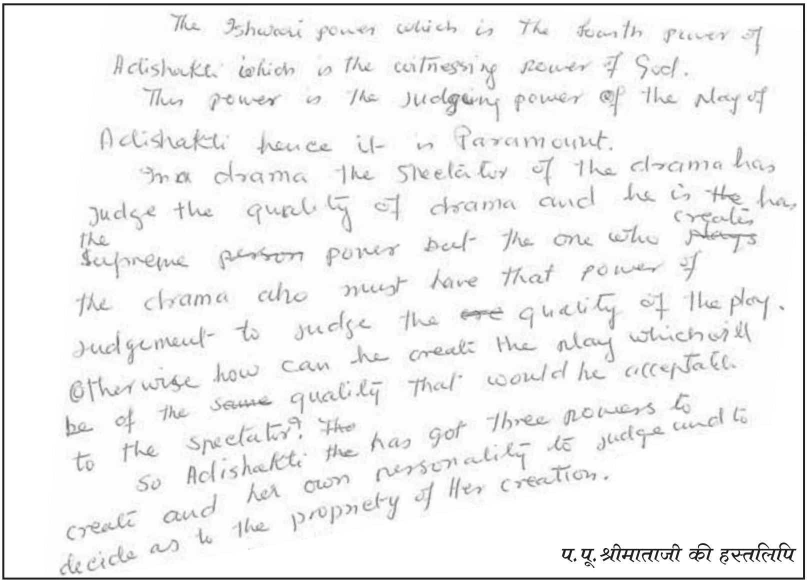
The Ishwari power which is the fourth power of
Adishakti which is the witnessing power of God.
This power is the judging power of the play of
Adishakti hence it is Paramount.
In a drama the spectator of the drama has
judge the quality of drama and he is ~~the~~ has
the supreme ~~person~~ power but the one who ~~plays~~ creates
the drama who must have that power of
judgement to judge the ~~one~~ quality of the play.
Otherwise how can he create the play which will
be of the ~~same~~ quality that would be acceptable
to the spectator? ~~The~~
So Adishakti she has got three powers to
create and her own personality to judge and to
decide as to the propriety of Her creation.

प.पू.श्रीमाताजी की हस्तलिपि

आदिशक्ति की चौथी शक्ति 'ईश्वरी शक्ति' हैं। ये परमात्मा की साक्षीत्व शक्ति हैं। आदिशक्ति की लीला का आकलन करने वाली शक्ति होने के कारण ये सर्वोच्च हैं। किसी भी नाटक में दर्शक ही नाटक की गुणवत्ता का आकलन करता है। उसके पास ऐसा करने की सर्वोच्च शक्ति होती है। परन्तु नाटक के सृजन कर्ता के पास भी नाटक की गुणवत्ता का आकलन करने की शक्ति होनी आवश्यक है, अन्यथा वो ऐसे नाटकों का सृजन नहीं कर सकता जो दर्शकों

को स्वीकार हों। इसी प्रकार अपने सृजन का चित्रपट बुनते हुए आदिशक्ति भी स्वयं को नाटक का मूल्यांकन कर के उसके ताने-बाने में परिवर्तन करने की शक्ति प्रदान करती हैं और साथ ही साथ अपनी ईश्वरी शक्ति के माध्यम से वे सर्वशक्तिमान परमात्मा से तालमेल भी बिठाती हैं।

अपने सृजन का आकलन और इसके औचित्य के बारे में निर्णय लेने के लिए स्वयं अपने व्यक्तित्व के अतिरिक्त, आदिशक्ति के पास तीन शक्तियाँ विद्यमान हैं। उनकी 'ईश्वरी शक्ति' इस नाटक को चरमबिन्दु तक ला सकती है। ऐसा दो प्रकार से किया जा सकता है :

१) प्रणव प्रज्वलन (Ignition) द्वारा वे ऐसा कर सकती हैं।

२) वे नाटक को समाप्त कर सकती हैं।

प्रथम अवस्था में आदिशक्ति स्वयं नाटक में भाग लेने वाले सभी मनुष्यों की चेतना को ज्योतिर्मय कर सकती हैं तथा दूसरे स्थान पर वे अपनी लीला को नष्ट कर सकती हैं। अत: यह ईश्वरी शक्ति सर्वोच्च हैं, और आदि माँ यदि अपने बच्चों के बुरे व्यवहार से परेशान हो जाएं या तंग आ जाएं तो क्रोध में आकर वे आसानी से अपने सृजन (लीला) को समाप्त कर सकती हैं।

विराट का सृजन

इस अवस्था में 'आदि-पिंड' (Primordial Zygote) विराट रूप में विकसित होते हैं। हमने देखा है कि किस प्रकार आदि शक्ति, अपनी शक्ति को पहले अण्डाकार वृत्त से संस्कृत के शब्द ॐ के रूप में परिवर्तित करती हैं और फिर साढ़ेतीन वलयों में। जिन रेखाओं में आदि प्रणव गतिशील होते हैं वे भी साढ़ेतीन कुण्डलों के रूप में हैं।

'आदि-पुरुष' (Primordial Being) के आदि हृदय (Primordial Heart) का सृजन करने के लिए आदिशक्ति पहले अण्डाकार वृत्त को हृदय के आकार में परिवर्तित करती हैं। उनके स्वामी, परमेश्वर इस हृदय को

आशीर्वादित करते हैं और यह हृदय प्रणव (अनाहत) की आवाज़ में धड़कने लगता है। इसकी तरंगे साढ़े तीन कुण्डलों में घूमती हैं और इन तरंगों से 'आदि कुण्डलिनी' का सृजन होता है। आदि-कुण्डलिनी की नींव का ढांचा भी साढ़े तीन कुण्डलों में तैयार किया जाता है। हृदय के इर्द गिर्द साढ़े तीन बार घूम कर, साढ़े तीन वलयों के अन्त तक पहुँचने के समय से 'आदि-समय' (Primordial Time) का सृजन हुआ। इस कुण्डलाकार आड़ोलन द्वारा सृजित परिघि से 'आदि-अंतरिक्ष' (Primordial Space) का सृजन हुआ। आदिशक्ति जब सृजन करना चाहती हैं तो उनकी गति सीधे चक्कर में (दायीं दिशा) होती है और सृष्टि के विनाश के समय ये गति उलटे चक्कर (बाईं दिशा) में होती है।

विराट के हृदय में निवास करने वाली परमात्मा की ईश्वरी (साक्षीत्व) शक्ति आदि कुण्डलिनी के माध्यम से तीन प्रकार से कार्य करती हैं :

१) वे लीला को देखते हैं।

२) वे लीला का आनन्द उठाते हैं।

३) वे लीला को नष्ट करते हैं।

आदि कुण्डलिनी और इसके साढ़े तीन कुण्डलों के महत्व को स्पष्ट समझ लेना आवश्यक है क्योंकि सृष्टि का पूर्ण कार-व्यवहार, विशेष रूप से मानव का, आदि-कुण्डलिनी तथा उनके साथ अन्य उर्ध्वस्थ शक्तियों के अनन्त संयोग तथा क्रम परिवर्तन के मार्गदर्शन द्वारा होता है। ये प्रश्न पूछा जाना अनुचित न होगा कि परमात्मा ने साढ़े तीन कुण्डलों को ही सामान्य मूल्यमान के रूप में क्यों चुना। इसका उत्तर शुद्ध गणित में निहित है। किसी वृत्त के मध्य बिन्दु से परिघि तक यदि कुण्डल आकार बनाया जाए और इसे हम पाई (Pie π) की संज्ञा दें तो :

$$\text{पाई}(\pi) = \frac{\text{परिघि}}{\text{व्यास}} = \frac{22}{7} \quad \text{या} \quad \text{पाई}(\pi) = \frac{\text{अर्ध परिघि}}{\text{व्यासार्ध}} = \frac{11}{3\frac{1}{2}}$$

अत: जैसे आकृति १ में दर्शाया गया है, साढ़े तीन कुण्डलों का होना आवश्यक था। इस सिद्धांत का उपयोग कलाई घड़ियों तथा कई अन्य यन्त्रों की तकनीक के रूप में भी होता है।

ऊर्ध्वस्थ (Vertical) शक्ति (आदि कुण्डलिनी)

सृजन की तीसरी अवस्था में आदिशक्ति मूलभूत यन्त्र - आदि कुण्डलिनी (Primordial Kundalini) का सृजन करती हैं ताकि उनके सृजन कार्य को समन्वयता, विविधता और गति प्राप्त हो सके। आदिशक्ति भी उस व्यक्ति की तरह से कार्य करती हैं जो सर्वप्रथम दफ़्तर में उन प्रबन्धकों का ढांचा खड़ा करता है जिन्हें उन्हीं की तरह से व्यापार चलाने की सूझबूझ हो। व्यापार आरम्भ करने के लिए उस व्यक्ति को भिन्न प्रबन्धक पद और दफ़्तर की अन्य नौकरियों का सृजन करना होगा। तत्पश्चात् प्रबन्धक एवं अधिकारियों को नियुक्त कर के अपने-अपने दफ़्तरों में स्थापित किया जाएगा। ठीक इसी प्रकार से आदिशक्ति ढांचा (विराट) स्थापित करती हैं, पदवियाँ बनाती हैं, अधिकारियों (देवी-देवताओं) की नियुक्ति करती हैं और उन्हें उनसे सम्बन्धित दफ़्तरों (चक्रों) में स्थापित करती हैं।

'आदि-हृदय' (Primordial Heart) के सृजन के बाद आदिशक्ति साढ़े तीन कुण्डलों में चलती हैं। कुण्डल के सबसे नीचे के बिंदु के अन्त में, अपने अण्डाकार आकार को त्रिकोण का आकार देकर वे अपने निवास (आदि मूलाधार) का सृजन करती हैं। इस कुण्डल को वे अपने निवास (त्रिकोण) के शिखर पर स्थापित कर देती हैं। इस निवास (आदि मूलाधार) के नीचे, बाहर की ओर, वे प्रथम सूक्ष्म चक्र 'आदि मूलाधार चक्र' का सृजन करती हैं। मानव में यह चक्र रीढ़ के छोर के बाहर स्थित है तथा श्रोणीय केन्द्र (Pelvic Plexus) का नियंत्रण करता है। इस प्रथम और सबसे नीचे स्थित सूक्ष्म चक्र पर 'आदि माँ' एक विलक्षण शिशु देवता - गजानन - श्रीगणेश का सृजन करती हैं। सृजन क्रिया में सृजित वे प्रथम देवता हैं। श्रीगणेश शाश्वत शिशुत्व

के प्रतीक हैं। आदि अंतरिक्ष ब्रह्माण्ड को दिव्यत्व के तत्व, पावनता और अबोधिता से परिपूर्ण करने के लिए उन्हें स्थापित करने की कृपा की गई। आदि-कुण्डलिनी के साढ़े तीन कुण्डलों द्वारा प्रवाहित की जाने वाली पावनता और अबोधिता के सर्वोच्च सिद्धांत से उनकी रचना की गई।

श्रीगणेश मूलाधार चक्र के शासक देवता हैं। संस्कृत शब्द 'मूलाधार चक्र' का अर्थ है 'जीवन वृक्ष' की जड़ों के आश्रय या आधार। रूपक के रूप में पुत्र श्रीगणेश का अपनी माँ से पावन सम्बन्ध सृष्टि के जीवन की जड़ या इसका सार तत्व है। यह हर चीज़ में व्याप्त हो जाता है, बिल्कुल वृक्ष के पोषक जल की तरह से, और जड़ों के माध्यम से ऊपर की ओर बढ़ कर अपनी जीवनदायिनी यात्रा का आरम्भ करता है।

श्रीगणेश का सृजन

हिन्दू ग्रन्थों में श्रीगणेश के सृजन का अत्यन्त रोचक वर्णन किया गया है। एक दिन आदिशक्ति, देवी गौरी स्नान कर रही थीं। उन्हें भय था कि कहीं कोई उनके स्नानागार में घुस कर उनकी पावनता (लज्जा) न भंग कर दे। अतः अपनी रक्षा के लिए उन्होंने अपने शरीर से उतरे उबटन के मल से एक शिशु का सृजन किया। उनके शरीर का मल निःसन्देह उनकी पावनता (कौमार्य) के चैतन्य से सुगन्धित था क्योंकि अभी तक वे कन्या अवस्था में थीं। विवाह के बाद, अपने स्वामी सदाशिव से प्रथम मिलन की तैयारी के लिए स्नान कर रही थीं। श्री सदाशिव जब अपने निवास पर पहुँचे तब भी वे स्नानागार में थीं। अपनी पत्नी के स्नानागार द्वार पर एक शिशु को देख कर उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। उस शिशु ने जब सदाशिव को बताया कि वह गौरी-पुत्र है तो सदाशिव को क्रोध आ गया। सदाशिव जानते थे कि गौरी कुँआरी हैं और ये सोच कर कि ये बच्चा उनकी पत्नी के पावन नाम को दूषित करने का प्रयास कर रहा है, उन्होंने क्रोधपूर्वक अपनी तलवार निकाली और वहीं बच्चे का सिर धड़ से अलग कर दिया।

गौरी ने जब देखा कि उनके पति ने बच्चे का वध कर दिया है, तो उन्होंने सदाशिव को बच्चे के सृजन के विषय में बताया और उनसे प्रार्थना की कि वे बच्चे को पुनर्जीवित कर दें। सदाशिव जंगल में गए और उन्हें एक शिशु-हाथी दिखाई दिया। उन्होंने शिशु हाथी का सिर काटा और इसे शिशु के धड़ पर लगा दिया। इस प्रकार श्रीगणेश को पुनर्जीवन प्राप्त हुआ और आज भी वे शिशु-हाथी के सिर वाले शाश्‍वत शिशु-देव के रूप में विद्यमान हैं। गजानन के प्रतीक का बहुत बड़ा महत्व है और इसके विषय में 'मूलाधार चक्र' के अध्याय में विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। श्रीगणेश के सृजन के बाद गौरी ने उन्हें अपने निवास 'मूलाधार' के नीचे स्थित 'मूलाधार चक्र' के राजा (शासक) के रूप में स्थापित कर दिया। आदि मूलाधार चक्र पर माँ गौरी की सम्मानमय पावनता और मर्यादा की रक्षा करने के लिए वहाँ पर उन्हीं का साम्राज्य है।

आदिचक्रों का सृजन एक ही समय पर नहीं कर दिया गया। एक चक्र से दूसरे चक्र के सृजन में लाखों वर्षों का अन्तर है तथा हर शासक देवी-देवता के स्थापन के बाद ब्रह्माण्डीय विलम्ब है।

आदि मूलाधार चक्र पर श्रीगणेश को नियुक्त करने के बाद आदि-कुण्डल के शिखर तक पहुँचने के लिए आदिशक्ति उनके साथ-साथ शीर्ष रेखा में ऊपर को उठीं। इस बिंदु पर अण्डाकार वृत्त को त्रिकोणाकार मस्तिष्क के आकार में परिवर्तित करके उन्होंने विराट के आदि मस्तिष्क का सृजन किया। अपने प्रथम आरोहण से, अभिव्यक्त होने पर उन्होंने परमात्मा के इच्छा पक्ष का प्रतिनिधित्व करने वाली 'आदि-ईड़ा-नाड़ी' का सृजन किया। ये उनकी महाकाली शक्ति हैं। विराट के आदि मस्तिष्क से अवरोहण (नीचे की ओर आना) करते हुए आदिशक्ति ने आदि पिंगला-नाड़ी का सृजन किया, जो अभिव्यक्त होने पर परमात्मा के क्रिया-पक्ष का प्रतिनिधित्व करती है। अब दूसरी बार मध्य मार्ग पर ऊपर को उठते हुए वे 'आदि-सुषुम्ना-

नाड़ी' का सृजन करती हैं।

ये तीनों वाहिकायें साढ़ेतीन कुण्डलों को भिन्न सात बिंदुओं पर काटती हैं और इस प्रकार 'सात आदिचक्रों' का सृजन करती है। इन चक्रों का विस्तारपूर्वक वर्णन इनसे सम्बन्धित अध्याय में किया गया है, परन्तु आदि चक्रों और मानव में उनके समान आकार एवं शारीरिक सदृश्यता के सम्बन्ध इस प्रकार है -

	सूक्ष्म रूप में आदि-पुरुष में	**स्थूलरूप में मनुष्य की रीढ़ में**	**मनुष्य के भौतिक शरीर में**
१	आदि मूलाधार चक्र	मूलाधार चक्र	श्रोणीय केन्द्र (Pelvic Plexus)
२	आदि स्वाधिष्ठान चक्र	स्वाधिष्ठान चक्र	महा धमनी केन्द्र (Aortic Plexus)
३	आदि नाभि चक्र	नाभि चक्र	सौर केन्द्र (Solar Plexus)
४	आदि अनाहत चक्र	अनाहत चक्र	हृदय केन्द्र (Cardiac Plexus)
५	आदि विशुद्धि चक्र	विशुद्धि चक्र	ग्रीवा केन्द्र (Cervical Plexus)
६	आदि आज्ञा चक्र	आज्ञा चक्र	तृतीय नेत्र ग्रन्थि स्थित शंकुरूप ग्रन्थि तथा पीयूष ग्रन्थि (कफ सम्बन्धी) को नियंत्रित करने वाला केन्द्र (Centre of optic Chiasma which controls pineal & pituitary glands)

७	आदि सहस्रार चक्र	सहस्रार चक्र	एक हज़ार नाड़ियों तथा तालुक्षेत्र वाले मस्तिष्क का ऊपरी भाग

आदि पुरुष के मस्तिष्क में आदिशक्ति की तीनों शक्तियाँ दो-दो स्वरूपों में अभिव्यक्त होती हैं। व्यवहारिक उद्देश्य के लिए इन्हें तीनों शक्तियों के 'बच्चे' कहा जा सकता है परन्तु वास्तव में ये अस्तित्व की भिन्न अवस्थाओं के प्रतिबिम्ब हैं। ये इस प्रकार हैं :-

महासरस्वती	महालक्ष्मी	महाकाली
सरस्वती शिव	लक्ष्मी ब्रह्मदेव	काली विष्णु

शिव काली से विवाह करते हैं क्योंकि वे उनकी शक्ति हैं, विष्णु अपनी शक्ति लक्ष्मी से विवाह करते हैं और ब्रह्मदेव अपनी शक्ति सरस्वती से। इस प्रकार सर्वशक्तिमान परमात्मा के तीन पक्ष अपनी सम्बन्धित शक्तियों से दिव्य गठबंधन में बंध पाते हैं।

सर्वेश्वर वाद (Pantheism)

प्राय: एक विवादमय तर्क दिया जाता है कि क्या परमात्मा केवल एक हैं (एकेश्वर वाद) या कई (Pantheism) सर्वेश्वरवाद। बाँसुरी की एक सामान्य उपमा द्वारा हम इस पुरातन मिथक को हमेशा के लिए शांत कर सकते हैं। बाँसुरी के शरीर में केवल सात छिद्र होते हैं, फिर भी सात स्वरों और उनके भिन्न क्रम-परिवर्तनों के सम्मिश्रण से संगीत की लय का सृजन होता है तथा बाँसुरी, उसमें फूंकी गई हवा को संगीत की लय में परिवर्तित कर देती है। सृष्टि की लय का सृजन करने के लिए परमात्मा भी भिन्न छिद्रों (आदि-चक्रों) का उपयोग करते हैं। चक्रों पर नियुक्त भिन्न देवी-देवता

एकमेव परमात्मा के एक या कई पक्षों को प्रबल करने के लिए बाँसुरी के छिद्रों पर रखी गई अंगुलियों की तरह हैं। किसी ऐसी बाँसुरी पर संगीत की लय उत्पन्न कर पाना असंभव है जिसमें हवा फूंकने के लिए केवल एक छेद हो और हवा के बाहर निकलने के लिए छेद न हों। विविधता प्रदान करने के लिए सात स्वर देने वाले सात छिद्रों के बिना किसी संगीत या लय का सृजन नहीं किया जा सकता। बाँसुरी में प्रवेश करने वाली हवा केवल एक है। ये हवा यदि सात छिद्रों में से भी निकले तो भी यह एकमात्र हवा की लहर बनी रहेगी। सृष्टि के सृजन के मामले में सभी 'आदि-चक्रों' पर भिन्न रूप से अभिव्यक्त होने वाली ये हवा 'प्रणव' है।

बहुत से देवताओं का सृजन किया गया। ये देवी-देवता पूजनीय हैं तथा अपने चरित्र (धर्म) से एकरूप (दृढ़)। देवी-देवता पुरुष या महिला रूप में हैं। इनके द्वारा शासित आदिचक्रों के स्वभाव, कार्य तथा धर्म के अनुरूप इनका सृजन किया गया तथा चक्रों द्वारा किए जाने वाले भिन्न कार्यों के अनुरूप इन देवी-देवताओं को चक्रों पर स्थापित किया गया।

जैसा आकृति २ में दिखाया गया है, आदिशक्ति नव विवाहित देवी-देवताओं के जोड़ों को अपने अण्डाकार वलय पर इस प्रकार स्थापित करती हैं।

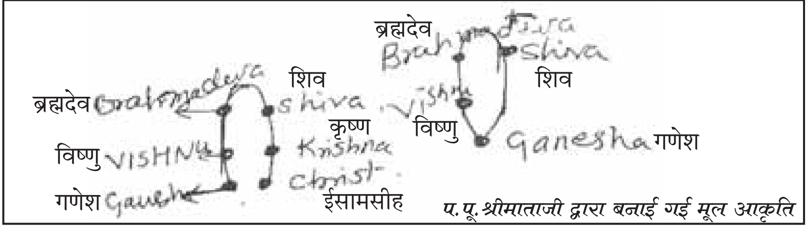

प.पू.श्रीमाताजी द्वारा बनाई गई मूल आकृति

आकृति २

ब्रह्मदेव शिव के सामने स्थान लेते हैं और दोनों देवताओं में अन्तर्सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और शेष दोनों देवता अण्डाकार समानान्तर रेखा पर अपनी छाप छोड़ देते हैं जैसे आकृति २ में दिखाया गया

है। इस प्रकार देवी-देवताओं के लिए छ: पीठों का सृजन होता है। (आकृति ३)

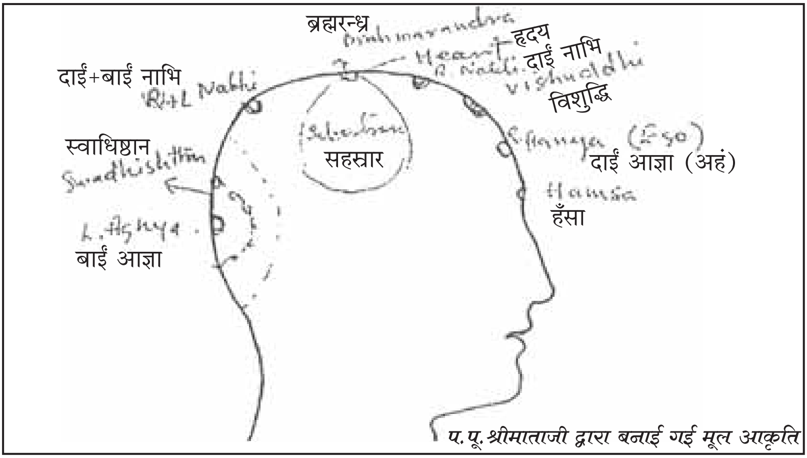

आकृति ३

वलय अब अपने पेंदे से खुलती है (आकृति २) विष्णु समानान्तर रेखा पर अपना चिह्न छोड़ते हैं जो श्रीकृष्ण रूप में उनके भविष्य के सर्वोच्च विकसित मानव रूप का संकेत हैं। इसी प्रकार गणेश भी ईसामसीह रूप में अपने उच्चतम विकसित मानव रूप के लिए सुरक्षित स्थान को चिह्नित करते हैं। अत: विष्णु के परमेश्वरी रूप और श्रीकृष्ण अवतरण के मानव रूप के बीच की दूरी का सृजन होता है। कृष्ण रूप में पुष्पित होकर उन्होंने विराट के पूर्ण रूप को प्रकट किया। संक्षिप्त में इसी प्रकार आदिवलय के दोनों तरफ ईसामसीह रूप में पूर्ण विकसित मानव अवतरण और श्रीगणेश रूप में ईश्वरी अवतरण के बीच भी दूरी है।

इस प्रकार आदिशक्ति आदि मस्तिष्क में देवी-देवताओं के स्थान नियत करती हैं। पूरी प्रक्रिया समकालिक (एक ही समय) की घटना न होकर विराट के आदि मस्तिष्क के सजीव अवयव के रूप में विकसित होने तक कई युगों में शनै-शनै घटित होती है। सृजन की वैकुण्ठ अवस्था में इन पीठों पर सम्बन्धित शासक अवतरणों का पूर्ण रूप से अभिषेक होता है। इसका अर्थ

यह हुआ कि श्रीकृष्ण और ईसामसीह के सृजन की धारणा वास्तव में उनके मानवरूप में अवतरित होने से लाखों वर्ष पूर्व बन चुकी थी।

देवी-देवताओं का भिन्न पीठों पर स्थापन महत्वपूर्णतम है, क्योंकि जिस प्रकार आदिशक्ति उन्हें आदिपुरुष के मस्तिष्क (आदिमस्तिष्क) में स्थापित करती हैं उसी से मनुष्यों के सिर की पीठ में भी उनका (देवी-देवताओं) स्थान निश्चित होता है। इसी के अनुरूप सहजयोग कार्यान्वित होगा।

अध्याय 2

परमात्मा के राजदूत - परमेश्वरी अवतरण

आदिपुरुष (विराट) के शरीर में आदि नाभि चक्र को चहुँ ओर से घेरे हुए भवसागर में इस विश्व का सृजन हुआ। विश्व के पोषक एवं रक्षक श्रीआदिविष्णु यहीं निवास करते हैं। आदि ब्रह्मदेव ने विराट के शरीर में ही सृजन आरम्भ किया। जो भी कुछ सृजित हुआ था उसका परिवर्तन आवश्यक था, जो जन्मा था उसकी मृत्यु आवश्यक थी और आदिपुरुष की आदि ईड़ा नाड़ी (चन्द्रनाड़ी) (परलोक) पर स्थान देकर इसका संग्रह किया जाना था। आदि अवचेतन मस्तिष्क के रूप में अभिव्यक्त होने वाले परलोक का सृजन मृत तत्वों का संग्रह करने के लिए किया गया। यह आदि पुरुष का सामूहिक अवचेतन है, मनुष्य में जिसे 'अवचेतन मस्तिष्क' कहते हैं। इसी प्रकार अहंकारमय आकांक्षाओं के माध्यम से आनन्द खोजने वाले मृत तत्वों का संग्रह करने के लिए आदि पिंगला नाड़ी (सूर्यवाहिका) पर सामूहिक अतिचेतन का सृजन किया गया।

मृत्यु के बाद पशुओं की आत्माएं परलोक में जाती हैं। उनका पृथ्वी पर पुनर्जन्म होता है क्योंकि वहाँ उन्होंने अनुभवों के माध्यम से बहुत कुछ सीखा होता है। विकास प्रक्रिया में अवतरित भिन्न अवतरणों ने उनका भी मार्गदर्शन किया। आदम और हौवा (Adam and Eve) के समय पर, जब विकास प्रक्रिया मानव अवस्था तक पहुँची तो मानव को जीवन की विकास प्रक्रिया और जीवन-विरोधी विनाश प्रक्रिया के बीच एक का चुनाव करने की स्वतन्त्रता प्रदान की गई। विकास प्रक्रिया ही एकमात्र ऐसा मार्ग था जिसके माध्यम से व्यक्ति विकसित एवं आत्मसाक्षात्कारी मानव बन सकता था। परन्तु विनाश के उपाय विकसित करके, कुछ लोगों ने जीवन-विरोधी प्रक्रिया को चुना। सामूहिक अवचेतन और सामूहिक पराचेतन से बार-बार वे

जीवन-विरोधी और परमात्मा-विरोधी गतिविधियों वाला जीवन अपनाने के लिए पृथ्वी पर लौटे। उन्होंने घृणा की आसुरी शक्तियों का सृजन एवं विस्तार किया। सामूहिक अवचेतन और सामूहिक अतिचेतन से मृत जीव जब पृथ्वी पर आयें तो वे अनिष्टकर बन गये और उन्हें नरक में डाल दिया गया। नरक से उभड़कर ये शैतानी शक्तियाँ भवसागर में आ गईं। नरक का द्वार मूलाधार चक्र के सामने स्थित है, जहाँ श्रीगणेश की सूंड अपने क्रोध की लहरियाँ भेजती है। अपने क्रोध की चिंघाड़ से वे इन दुष्ट आत्माओं को पुनः नरक में धकेल देते हैं। नरक के कष्ट भुगतने के बाद ये आत्माऐं पुनः पृथ्वी पर जन्म लेती हैं परन्तु अब भी वे विनाशमय दुष्कार्यों को चालू रखती हैं।

आदिशक्ति के उग्र अवतार, दुर्गा, ने इन बहुत सी दुष्ट आत्माओं का वध किया और कुछ को नरक में तुच्छ जीवों के रूप में बने रहने का दण्ड भी दिया। नरक की सात सतहें हैं जिनका वर्णन कई प्राचीन धर्मग्रन्थों में किया गया है। बहुत बार इन आसुरी शक्तियों को शारीरिक रूप से नष्ट किया गया, परन्तु उनमें से कुछ सभी अवतरणों के पृथ्वी पर आगमन से पूर्व पुनर्जन्म ले लेती हैं। कलियुग के इस युग में भी एकबार फिर ये राक्षस अपनी गद्दिओं पर आरूढ़ हो गये हैं। परन्तु इस बार वे धर्म का चोला पहन कर झूठ-मूठ के गुरुओं और योगियों के रूप में आए हैं। महामाया रूप में अवतरित आदिशक्ति स्वयं एक-एक कर के उनके दुष्कर्मों का भण्डाफ़ोड़ करेंगी।

विष्णु अवतरण

आदि विष्णु स्वयं उत्क्रान्ति पथ को विकसित करते हैं और उसकी रक्षा करते हैं। उनके अवतरण आध्यात्मिक चेतना के विकास में मील के पत्थर हैं और एक-एक कर के ये मानवीय ज्ञान के नये आयाम विकसित करते हैं। अज्ञान के अंधेरे में वे उजाला करते हैं और हर अवतार सृष्टि के सौन्दर्य में एक नया असीम-बोध, एक नई सुरभि और एक नया रंग जोड़ता है।

जीवन का मूल आरम्भ जल में हुआ जिसे सृजन के भिन्न ईश्वरी तत्वों

(तन्मात्राओं) के सम्मिश्रण और क्रम परिवर्तन के माध्यम से बनाया गया था। जीवन का आरम्भ एक-कोशिकीय पशु से होकर बाद में बहुकोशिकीय मछलियों के रूप में विकसित हुआ। ये एक-कोशिकीय परजीवी जो उच्च प्रकार की मछलियों पर जीवित रहते थे, बड़ी मछलियों के रूप में जन्म लेने लगे, परन्तु इनकी चेतना निम्न प्रकार की थी। वे शैतानी शक्तियों के स्रोत बने। आकार में ये बड़े होते गये परन्तु उनसे विशाल और शक्तिशाली मछलियाँ उन्हें खा लेती थीं। विकास के परिवर्तनकाल में जो मछलियाँ जल से पृथ्वी पर आने का प्रयत्न कर रही थीं, ये जीव उनके लिए विशेष कर विनाशशील थे।

इन दुष्ट अवतरणों को नष्ट करने के लिए आदि विष्णु ने मत्स्य (मछली) अवतार धारण किया और तट पर आने के लिए प्रयत्नशील मछलियों के अगुआ बने। ये उनका पहला अवतरण था। इसे 'मत्स्य अवतार' के नाम से जाना जाता है। आवश्यक रूप धारण करके वे हर कदम पर सहायक होते हैं। उदाहरण के रूप में, भ्रांतिसागर (भवसागर) के जल से निकल कर अन्ततः रेंगने वाले जीवधारी बनने के लिए मछलियों का नेतृत्व करने के लिए उन्होंने मत्स्य अवतार धारण किया। तट पर लाकर उन्हें सभी प्रकार के पशुओं की रक्षा करनी थी। उनकी पूँछ के साथ एक नाव बांध दी गई और उनकी कठोर पीठ का उपयोग क्षीरसागर का मंथन करने के लिए किया गया। इस मंथन से मानव के लिए चौदह रत्न निकले। तट पर आकर मछलियों ने अपने नीचे पृथ्वी पाई और उन्होंने पृथ्वी पर रेंगना और पृथ्वी पर रेंगने वाले जीवों का सृजन आरम्भ कर दिया। इस बिंदु पर विकास प्रक्रिया की उन्नति में बाधा डालने वाले राक्षसों को नष्ट करने के लिए आदिविष्णु ने दूसरा अवतरण धारण किया, रेंगने वाले जीव, कछुए के रूप में (कूर्मावतार)। बाद में, महाप्रलय के समय इसी अवतरण ने नोआ (मनु) की नाव का प्रलय की विशाल जल राशि में पथ प्रदर्शन करके सहायता की। सुरक्षा के लिए अपने

अर्धगोलाकार कवच से कछुआ पृथ्वी के आकार का प्रतिनिधित्व करता है। रेंगने वाले जीवों को यह सुरक्षा ढाल विकसित करना सिखाता है।

सर्वप्रथम शरीरधारी का विकास सुनिश्चित है। मृत्यु के भय का मनोवेग पशुओं में सुरक्षा की खोज आरम्भ करता है-उनकी पहली खोज। जीवित रहने की आकांक्षा पशुओं में सामूहिक संगठनबिंदु का आरम्भ है। स्तनधारी पशुओं की अवस्था में अपने तीसरे अवतरण (वराह अवतार) में, उन्होंने सुरक्षा की नैसर्गिक प्रेरणा को अधिक परिष्कृत प्रकार के आचरणों द्वारा अभिव्यक्ति किया। इस अवस्था में चौपाए पशुओं के झुण्डों में सुरक्षात्मक उपाय दिखाई पड़े। वराह, रेंगने वाले जीवों से चार पैरों वाले पशुओं के रूप में हुए विकास का संकेतक है।

श्रीविष्णु ने अपना चौथा अवतार नरसिंह रूप में धारण किया, आधा मनुष्य-उपर का भाग-और आधा सिंह। विकास के इस बिंदु पर मानव ने पशुओं तथा प्राकृतिक शक्तियों पर प्रभुत्व प्राप्त किया, जिसका ज्ञान (चेतना) उसे था। इस अवतरण ने पशु और मानव अवस्था के बीच हुए विकास को दर्शाया। नरसिंह की भूमिका हिरण्यकश्यप नामक राक्षस का वध करने की थी।

मानव रूप में विकसित होने से पूर्व मनुष्य वानर अवस्था में विकसित हुआ। विकास प्रक्रिया में वानर भी संघर्षरत थे। उनकी सहायता के लिए विराट के आदिपूर्वचेतन मस्तिष्क (Primordial Preconscious Mind) ने स्वयं श्रीविष्णुभक्त वानर देवता हनुमान का अवतरण लिया। डार्विन के सिद्धांत के अनुसार मानव विकास में लुप्त कड़ी वानर (अर्द्धमानव) का श्री हनुमान ने नेतृत्व किया। इस प्रकार मानव अवस्था तक विकसित होने में वानरों की सहायता की गई।

अपने पाँचवे अवतरण में श्रीविष्णु पहली बार मानव रूप में अवतरित हुए। उन्होंने बौने मनुष्य (वामन अवतार) का रूप धारण किया। परमात्मा को

खोजने वाले मनुष्यों का मार्गदर्शन करने के लिए वे पृथ्वी पर अवतरित हुए। वामन इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि वे तीनों लोकों का अधिग्रहण कर सकते हैं - पृथ्वी लोक, स्वर्ग लोक (आकाश) और पाताल लोक (नरक या अवचेतन लोक)। परिणामस्वरूप इस अवतरण ने मानव मस्तिष्क में ये धारणा भर दी कि वह तीनों लोकों पर अधिकार कर सकता है। ये बात समझ ली जानी चाहिए कि 'आदि-विष्णु' के अवतरण, विकास अनुक्रम, उच्च, गहन और विस्तृत अध्यात्मिक चेतना की ओर जाने का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं क्योंकि यही चेतना सृजन के विकास को नापने का सच्चा आईना (मापदण्ड) है। पहले व्यक्तिगत विकास प्राप्त किया जाता है और फिर जनसमूह द्वारा सामूहिक आत्मसात्करण की अनुभूति की जाती है।

उनका छठा अवतरण उग्र पुरुष श्रीपरशुराम का था। उन्होंने तपोबल द्वारा प्राप्त की गई शक्तियों की अभिव्यक्ति की। पूर्ण विकास प्राप्त करने पर मानव के अन्दर 'मैं' भाव (अहंकार) विकसित हो गया और तब मनुष्य को अपने अन्तर्निहित 'अज्ञात' की खोज की आवश्यकता महसूस हुई। वे परमात्मा के विषय में सोचने लगे और उन्हें आध्यात्मिक जीवन की शक्ति की चेतना प्राप्त हुई तथा मनुष्य ने आंतरिक जीवन की नई खोज आरम्भ कर दी। यह खोज व्यक्तिगत थी। अत: साधकों ने स्वयं को समाज से पूरी तरह दूर कर लिया। बहुत से लोग संसार को त्याग कर जंगलों के पूर्ण एकांत में परम सत्य को खोजने के लिए चले गये। कई जन्मों में प्राय: वर्षों तक वे अपनी इसी खोज में लगे रहे। परशुराम हठयोग और राजयोग के संस्थापक थे। इन का अभ्यास किसी गुरु के पथप्रदर्शन में अकेले किया जाता है।

मानव में ये आध्यात्मिक जागृति बहुत जोर पकड़ गई और एक बार फिर तपस्या (यज्ञ आदि) द्वारा मनुष्य की खोज में बाधा डालने के लिए आसुरी शक्तियाँ अवतरित हो गईं। इस समय, श्रीविष्णु के सातवें अवतरण, श्रीराम के अवतरित होने से पूर्व आदिशक्ति जगत्जननी देवी दुर्गा के रूप में

अवतरित हुईं। वे विराट का 'पावन हृदय' कहलाने वाले 'आदि अनाहत चक्र' से अवतरित हुईं। साधकों की आसुरी शक्तियों से रक्षा करने के लिए आदिशक्ति देवी दुर्गा रूप में मुख्यत: एक सौ आठ बार अवतरित हुईं।

त्रिमूर्ति महेश, विष्णु और ब्रह्मदेव ने एक गुरु, आदिगुरु दत्तात्रेय के रूप में अवतार लिया। लोगों को परमेश्वरी रहस्य बताने, परमात्मा को प्रकट करने और मानव के अपने व्यक्तित्व में रहते हुए भ्रांतिसागर (भवसागर) पार करने में मानव की सहायता करने के लिए वे पृथ्वी पर आए। अज्ञान के बंधनों में फँसे हुए मनुष्य के हाथों में अब विकास प्रक्रिया और आगे नहीं बढ़ सकती थी। अत: आदि गुरु ने बार-बार भिन्न अवतरण लेकर मानव का मार्गदर्शन किया। आदिशक्ति ने उनका त्रिशिर शिशु दत्तात्रेय के रूप में सृजन किया। त्रेतायुग में वे महान ऋषि अत्री की पत्नी सति अनसूया के रूप में अवतरित हुई। प्राचीनतम धर्म, जैन धर्म के प्रवर्तक आदिनाथ के रूप में भी आदिगुरु अवतरित हुए। फिर वे जानकी के पिता राजा जनक के रूप में आए। सीता (जानकी) आदिशक्ति का अवतरण थीं।

आदिगुरु ने मछिंद्रनाथ के रूप में जन्म लिया और फिर प्राचीन फारसियों द्वारा पूजित ज़ोरास्ट्र के रूप में अवतरित हुए। इससे पूर्व उन्होंने अब्राहम और फिर जुडामत के संस्थापक मोज़िज़ के रूप में जन्म लिया। चीन में वे कन्फ़्यूशियस और लाओत्से तथा यूनान में सुकरात के रूप में जन्मे। इस्लाम धर्म के प्रवर्तक पैगम्बर मोहम्मद साहिब के रूप में उन्होंने अत्यन्त महत्वपूर्ण अवतरण लिया। उनकी पुत्री फातिमा आदिशक्ति के अवतरण सीता का पुनर्अवतरण थीं। मुसलमानों में फ़ातिमा बी ने 'शिया' मत आरम्भ किया। भारतीय खड़ी बोली में 'सीता' को 'सिया' के नाम से पुकारा जाता है। एक बार फिर उन्होंने सिक्ख धर्म के संस्थापक गुरुनानक के रूप में जन्म लिया। उनकी बहन नानकी, पुनर्जन्मित सीता (आदिशक्ति) ही थीं। पिछली शताब्दि में उन्होंने भारत के महाराष्ट्र राज्य में श्री साईंबाबा के रूप में जन्म

लिया। वर्ष १९१८ में उन्होंने देह त्याग किया। कुल मिला कर आदिगुरु दत्तात्रेय के दस मुख्य अवतार हुए।

ये बात समझ लेनी आवश्यक है कि पशु अवस्था तक, पशुओं को जीवन की समस्याऐं सुलझाने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि पशु परमात्मा के पाश में पूर्णत: बंधे हुए होते हैं। आदम और हौवा की कहानी से जिस प्रकार हमें पता चलता है, मानव अवस्था प्राप्त करने पर मनुष्य को जीवन की समस्याऐं सुलझाने की स्वतंत्रता दी गई थी। इस प्रकार विकास को एक कदम आगे बढ़ना था। स्वतंत्रता के बिना मनुष्य परमेश्वरी शक्ति के रहस्यों को समझने में सक्षम नहीं था।

त्रेतायुग में श्रीराम अवतार में, सातवां अवतरण लेकर श्रीविष्णु ने मानव रूप में भवसागर पार कर के चेतना के एक नये आयाम को स्पर्श किया। हज़ारों वर्ष पूर्व प्लाटोकथित 'दार्शनिक राजा' के सच्चे उदाहरण को सत्य साबित करते हुए श्रीराम रूप में उन्होंने सामाजिक और राजनीतिक चेतना ज्योतित की। मानव के लिए उन्होंने 'समाज तथा राजकारण धर्म' स्थापित किया। राजकाज तथा संस्थावाद में उन्होंने गरिमा एवं मर्यादा के दैवी पक्ष की अभिव्यक्ति की तथा आदर्श मानव (मर्यादा पुरुषोत्तम) का जीवनयापन किया। सारी जनता ने उनका ये रूप देखा और परिणामस्वरूप मानव में पहली बार सामूहिक चेतना जागृत हुई। सभी राजाओं में श्रीराम आदर्श राजा थे और उनका साम्राज्य 'राम-राज' आदर्श साम्राज्य था।

आदि सुषुम्ना नाड़ी (मध्यमार्ग) से भवसागर को पार करते हुए वे आदि अनाहत चक्र (Primordial Heart Chakra) में एक स्तर तक पहुँचे। उनकी पत्नी सीता आदिशक्ति का अवतरण थीं। वाल्मिकी कृत महाकाव्य 'रामायण' में वर्णन किया गया है कि किस प्रकार भगवान राम कुछ समय के लिए भूल गए कि वे आदिविष्णु के अवतार थे, क्योंकि उनसे ये अपेक्षा की गई थी कि वे सामान्य मनुष्य की तरह व्यवहार करें ताकि प्रजा भी उनसे

सामान्य व्यवहार करने के लिए स्वतन्त्र हो। बाद में सीता के पृथ्वी में समा जाने के बाद भगवान राम को अपने ईश्वरत्व का स्मरण हुआ।

श्रीराम के काल में आदिशक्ति तीन मानव रूपों में विद्यमान रहीं :

महालक्ष्मी-श्रीराम की पत्नी, सीता के रूप में, महासरस्वती-आदिगुरु दत्तात्रेय को जन्म देने वाली सति अनसूया के रूप में, महाकाली-राक्षस रावण की पत्नी मन्दोदरी के रूप में।

श्रीविष्णु का आठवाँ अवतरण द्वापर युग में श्रीकृष्ण रूप में हुआ। इस बार भी आदिशक्ति ने तीन रूप धारण किए। महाकाली श्रीकृष्ण की शिशु बहन के रूप में बहुत कम समय पृथ्वी पर रहीं। विष्णुमाया का जन्म, वास्तव में, श्रीकृष्ण का पालन-पोषण करने वाली माँ यशोदा की कोख से हुआ। राक्षस कंस ने उसकी हत्या कर दी। इसके बाद उन्होंने पाण्डवपत्नी द्रोपदी के रूप में जन्म लिया। यशोदा स्वयं भी महासरस्वती का ही अवतरण थीं। महालक्ष्मी रूप में उन्होंने दो रूप धारण किए-राधा और रुक्मिणी। 'रा' अर्थात् शक्ति (ऊर्जा) और 'धा' अर्थात् धारण करना। अत: 'राधा' का अर्थ हुआ-शक्ति को धारण करने वाली। रुक्मिणी रूप में वे द्वारकाधीश श्रीकृष्ण की सम्राज्ञी बनी।

श्रीकृष्ण परम पिता परमात्मा के महानतम रूप थे। परमेश्वरी प्रेम की शक्ति की लीला का साक्षीभाव से आनन्द उठाने के लिए मानवीय सूझबूझ में एक नया आयाम (क्षितिज) खोलने के लिए वे अवतरित हुए थे। उनके अवतरण से मानव मस्तिष्क को सर्वशक्तिमान परमात्मा की साक्षीत्व शक्ति का ज्ञान होना था। वास्तव में उन्हीं के माध्यम से महाआदिपुरुष (विराट) की अभिव्यक्ति हुई और उनके अवतरण ने कवियों और दार्शनिकों को आध्यात्मिक ज्ञान-बोध की सहजानुभूति के साम्राज्य में प्रवेश करने की योग्यता प्रदान की। एक राजा तथा राजनयिक के रूप में लोगों को वास्तविकता का सत्य स्वभाव समझाने के लिए उन्होंने दिव्य

व्यवहारकुशलता (Divine Diplomacy) की विधि अपनाई। जनता का आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करना इस दिव्य व्यवहारकुशलता का सौन्दर्य है और व्यवहार कुशलता द्वारा चतुराई से या भ्रान्ति उत्पन्न करके अज्ञानी, मूर्ख लोगों का धर्म और धर्मपरायणता के मार्ग पर पथप्रदर्शन इसका सार है। संक्षेप में ऐसे लोगों का किसी भी प्रकार से परमात्मा के प्रेम के तट पर लाया जाना आवश्यक है। श्रीकृष्ण का जीवन जनता के बीच व्यतीत हुआ, इस प्रकार उनके अवतरण ने सामूहिक आध्यात्मिक आन्दोलन की धारणा को बढ़ावा दिया। अर्जुन के समक्ष वे विराट रूप में प्रकट हुए और पहली बार मानव चक्षु साक्षात् श्री आदिपुरुष (विराट) की झलक देख पाए।

प्राचीन काल में कहा जाता था कि सत्य बोलो जो मधुर हो (सत्यंवद्, प्रियंवद्) यद्यपि सत्य से प्राय: दूसरों की भावनाओं को ठेस पहुँचती है। बाद में बहुत से बुद्धिवादियों ने इस विवादास्पद कथन को चुनौती भी दी। इसकी व्याख्या करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा कि सत्य कहने और मधुर कहने बीच में यदि आत्मा के हित के लक्ष्य को रख लिया जाए तो सतर्कतापूर्वक सत्य कह पाना सम्भव है। उनके कहने का अभिप्राय यह था कि आत्मोन्नति के लिए यदि सत्य कहा जाए तो अन्तत: प्रेममय बन कर यह आत्मा को प्रसन्न करता है।

अपने शैशवकाल में राधा और कृष्ण रासलीला किया करते थे। रास (राक्स) अर्थात् ऊर्जा के साथ। 'रास' परमात्मा की शक्ति के साथ घनिष्ठता की अभिव्यक्ति करने वाली लीला है। यह सहजयोग का खेल था, परमेश्वरी चैतन्य मण्डल (आभा) का खेल। श्रीकृष्ण के साथ खेलने वाले सारे बच्चे अबोध गोप-गोपियाँ थे। वे नहीं जानते थे कि रास के माध्यम से वे सहजयोग (अन्तरात्मा की स्वत: उन्नति) का खेल खेल रहे हैं। यह गोल-गोल घूमने (Ring-A-Ring-A-Roses) जैसा खेल है।

राधा जब यमुना से घड़े में जल भरती तो वे अपने प्रणव से स्वत: यमुना

के जल को चैतन्यित कर देती थीं। वे आदिशक्ति थीं और जल को अपने सिर पर उठा कर ले जाती थीं। श्रीकृष्ण जब मटकी फोड़ते थे तो उनका अभिप्राय वृंदावन की भूमि को उस जल से चैतन्यित करना होता था। इसी प्रकार राधाजी जब अपने चरण यमुना में डालतीं तो यमुना का जल चैतन्यित हो जाता था। गोपियाँ और उनके पति, वृंदावन के सीधे लोग, जब मिट्टी के घड़ों में नदी का जल अपने सिर पर रख कर ले जा रहे होते तो श्रीकृष्ण कंकड़ मार कर उनके घड़े फोड़ देते ताकि यमुना का चैतन्यित जल उनके सिर पर गिरे और उनकी रीढ़ से बहता हुआ नीचे की ओर जाए। रीढ़ पर बहते हुए जल से उनकी कुण्डलिनी जागृत होती और ऊपर को आ जाती तथा सहजयोग की स्वतः जागृति की तरह उन्हें आत्मसाक्षात्कार प्राप्त हो जाता। यह खेल-खेल में जागृति देने (बपतिज्म) जैसा है, परन्तु श्रीकृष्ण के ये सारे तौर-तरीके एकदम से सहजयोग की पूरी अभिव्यक्ति नहीं करते। वे केवल सहजयोग का बीज बो पाए। उनके नाम 'कृष' का अर्थ ही 'बीज बोने वाला' है। गोप-गोपियों की कुण्डलिनी का जागृत होना महान उपलब्धि थी। उनकी कुण्डलिनी की जागृत अवस्था से मानव का सीमित स्वभाव ज्योतिर्मय तो हुआ, उनकी चेतना भी विस्तृत हुई, परन्तु अब भी वे असीम में प्रवेश न कर पाए। ये कार्य कृष्ण के समय के बाद होना था। अतः उनकी जागृत कुण्डलिनियों को भी सहजयोग की अनुभूति प्राप्त करने के योग्य बनने के लिए बहुत वर्षों या बहुत से जन्मों के निरन्तर प्रयास की आवश्यकता थी।

दत्तात्रेय के अवतरण का सृजन भवसागर में हुआ जब कि श्रीकृष्ण उनसे कहीं उच्च बिंदु (स्तर) पर अवतरित हुए, आदि अनाहत चक्र, जिस पर श्रीराम अवतरित हुए, उससे भी ऊपर के बिन्दु पर। विराट के शरीर में श्रीकृष्ण का स्थान 'आदि विशुद्धि चक्र' पर है। यह गर्दन की जड़ में रीढ़ के अन्दर है। श्रीकृष्ण विराट के पूर्ण अवतार थे। अपने विराट स्वरूप के दर्शन उन्होंने अपने शिष्य अर्जुन को प्रदान किए। अर्जुन को दी हुई उनकी शिक्षायें

श्रीमद्भगवत् गीता में संकलित हैं। साक्षीत्व की मूर्ति बन कर उन्होंने, श्रीराम की तरह बहुत से राक्षसों और राक्षसियों का वध किया। ये हस्तियाँ जब-जब भी मानव की विकास प्रक्रिया में बाधा डालती हैं तो इनका वध किया जाना आवश्यक होता है। आदिशक्ति के अधिकतर अवतरण राक्षसों का वध करने के लिए ही हुए।

राधाजी के अवतरण दर्शाते हैं कि किस प्रकार मनुष्य के विचारों में शनैः शनैः परिवर्तन आया। सीता के युग की तुलना में राधाजी का जीवन निश्चित रूप से समाज के धर्मान्धतापूर्ण विचारों से आगे बढ़ने के लिए ऊपर की ओर लगाई गई मेख (खूंटी) है। श्रीकृष्ण से उनका लौकिक (सांसारिक) विवाह नहीं हुआ। उनका विवाह अलौकिक था और बहुत से लोगों की उपस्थिति में श्रीब्रह्मदेव ने उनका यह आध्यात्मिक और सामाजिक विवाह किया। इससे पूर्व यद्यपि सीताजी का विवाह सामाजिक स्वीकृति से विधिवत रूप से हुआ, फिर भी समाज ने उनकी निंदा की। बिना विधिवत सांसारिक विवाह के भी राधा जी के प्रति श्रीकृष्ण के प्रेम तथा सम्मान को गौरवान्वित किया गया, जब कि श्रीराम की वैध पत्नी होते हुए भी सीताजी को जनसमर्थन नहीं दिया गया।

राजकुमारी सीता का विवाह राजा राम से पारम्परिक विधि से हुआ। वनवास के समय राक्षस रावण सीताजी के समक्ष सन्यासी रूप में प्रकट हुआ और उनका अपहरण करके उन्हें लंका में, अपनी राजधानी में ले गया। अपनी पत्नी की रक्षा करने के लिए श्रीराम ने युद्ध किया। रावण ने सीताजी को साम्राज्य के बीचोंबीच एक टापू पर कैद कर रखा था।अपने शत्रु को हरा कर श्रीराम सीता को वापिस अयोध्या ले आए। यद्यपि सीता पावन से पावनतम और पवित्र से पवित्रतम थीं, राम की अयोध्या नगरी के लोगों ने उन्हें संदेह की दृष्टि से देखा। रावण द्वारा बलपूर्वक अपहृत किए जाने के कारण वे सीता को अपनी रानी के रूप में स्वीकार नहीं कर रहे थे। उन्होंने सीताजी की

पावनता पर संदेह किया और उन्हें अस्वीकार कर के सामूहिक अपराध किया। सीताजी गर्भवती थीं फिर भी लोगों ने श्रीराम को उनका त्याग करने के लिए विवश कर दिया। बिहार राज्य के जंगलों में वे ऋषि वाल्मिकी के आश्रम में रहीं जहाँ उन्होंने लव-कुश नामक जुड़वाँ पुत्रों को जन्म दिया। ये बच्चे पूरी तरह से मानवीय व्यक्तित्व थे, परन्तु पूर्वजन्मों से ही आध्यात्मिक कुल परम्परा के थे। सीता ने उन्हें जीवन का ईश्वरी मार्ग सिखाया। बाद में वे बिहार में गौतम, भगवान बुद्ध और महान जैन धर्म के अगुवा श्रीमहावीर के रूप में अवतरित हुए। ईसामसीह के जन्म के पाँचसौ वर्ष पूर्व ये सब घटित हुआ। इन जन्मों के माध्यम से उन्होंने आंतरिक रूप से महान बुलंदियाँ प्राप्त कीं। उन्होंने अहिंसा का सिद्धांत सिखाया जिसको बाद में शाकाहार के उग्र रूप में परिवर्तित कर दिया गया। शाकाहारी त्यागी वृत्ति की अति से बचने और अधिक संतुलित बने रहने के लिए उन्होंने धर्मान्ध ब्राह्मण के घर जन्म लेने के स्थान पर क्षत्रिय कुल में जन्म लिया। फिर भी उनकी शिक्षाओं को त्याग उनके शिष्य शाकाहार को अति की सीमा तक ले गये। आंतरिक सन्यास को उन्होंने त्याग की आयोजित-संस्था मान लिया और अहिंसा को वे शाकाहार मान बैठे। बाद में श्रीबुद्ध और महावीर के शाकाहारी अनुयाईयों ने श्रीकृष्ण की तीव्र आलोचना की।

बाद में वही अरब देश में मोहम्मद साहिब की पुत्री फातिमा के दो बेटों-हसन-हुसैन के रूप में अवतरित हुए। करबला के भयानक युद्ध में उनका वध कर दिया गया। उनकी मृत्यु को धर्म के लिए किया गया एक महान बलिदान माना जाता है। यह इस बात का द्योतक कि किस प्रकार अतिवादी स्वभाव के लोग धर्मान्धता को अपना कर अपनी मूर्खता में मानवरूप में शरीरधारी धर्मतत्वों के अवतरणों को भी नष्ट कर देते हैं। इस जागृति ने पृथ्वी के धार्मिक मनुष्यों के जनसमूह को गहरा आघात पहुँचाया और इसके परिणामस्वरूप जनसामूहिक पश्चाताप की प्रक्रिया चालू हुई। इस

प्रकार लोगों को यह महसूस करवाया गया कि आत्मसाक्षात्कारी लोगों के लिए युद्ध का कोई मोह नहीं हो सकता। हिंसा और अहिंसा मस्तिष्क के दो गुण (लक्षण) हैं परन्तु चेतना आतिवाद से परे है। धर्मपरायणता की रक्षा करने के लिए व्यक्ति को युद्ध में कूदना पड़ता है, परन्तु मानव जब साक्षी बन जाता है तो वह युद्ध की लीला को किसी मान या अपमान की भावना से व्याकुल हुए बिना देखता है।

सीता के पुनर्अवतरण फ़ातिमा की मृत्यु के बाद मुसलमानों में साम्प्रदायिक युद्ध छिड़ गया। फ़ातिमा ने 'शिया' मत की स्थापना कर दी थी। भारतीय खड़ी बोली में सीता को 'सिया' के नाम से बुलाया जाता है। इस मत के अनुयायी 'शिया' कहलाते हैं। अपनी मातृ-सुलभ सौम्यता के कारण शिया महिलाओं को निर्मल, अबोध और सुन्दर माना जाता है। इसी प्रकार भारत में सीता के जन्मस्थान 'जनकपुर' की महिलाओं पर श्रीमहालक्ष्मी की बहुत कृपा है।

अपने सीता अवतरण के बाद उन्होंने Mother of Mercy (करुणा की माँ) पावन (कुआंरी) कुआन-यिन (Kuan Yin) के रूप में चीन में जन्म लिया। आदिशक्ति ने अपना पहला अवतरण नेपाल में लिया जहाँ आज भी वे नेपाल राष्ट्र की अधिष्ठात्री देवी हैं। उनके अधिकतर जन्म नेपाल के समीप हिमालय पर हुए जहाँ लोगों के भारतीय और चीनी मिलेजुले नाक-नक्श हैं। अधिकतर नेपाली महिलाएं गौरवर्ण और कोमल त्वचा वाली हैं और अत्यन्त शान्त और सुन्दर मानी जाती हैं। अपनी उभरी हुई गालों की अस्थियों के कारण वे हमेशा युवा प्रतीत होती हैं। अदिशक्ति के नाक-नक्श भी ऐसे ही हैं। संक्षिप्त में, वे नेपाली लगती हैं।

आदिशक्ति का चौथा मानव जन्म ईसामसीह की माँ 'कुंआरी मेरी' रूप में था। वे 'जुडा' नामक मध्यपूर्व साम्राज्य में अवतरित हुईं। इस जीवन में उन्होंने न तो विवाह किया और न ही राधा की तरह जीवन बिताया। राधा ने

मद्यपि वैकुण्ठ अवस्था में ही विराट के शरीर में अपने एकमात्र पुत्र महाविष्णु का सृजन कर लिया था, वे उसे पृथ्वी पर नहीं लाईं। आदिविष्णु के नौंवे अवतरण ईसामसीह के गर्भधारण का कार्य 'कुआँरी (पावन) मेरी' ने किया।

शब्द इस अवतरण की महानता का पर्याप्त वर्णन नहीं कर सकते, परन्तु 'देवी भागवत्' में ईसामसीह के विषय में एक परिच्छेद है। इसमें बताया गया है कि किस प्रकार वैकुण्ठ में राधा जी ने विराट के एकमात्र पुत्र महाविष्णु को जन्म दिया। वे चिरबालक, श्रीगणेश के प्रतीक के अतिरिक्त कोई अन्य नहीं हैं। साक्षात ब्रह्मा जी ने उनके एकमात्र भाई श्री कार्तिकेय के शरीर से उनके शरीर की रचना की। तथा विराट श्रीकृष्ण, जो उनके पिता थे, के सोलहवे भाग से उनका गर्भधारण किया गया। महाविष्णु रूप में वे पूरे जगत के आश्रय (धारक) हैं। पिता की हमेशा ये इच्छा होती है कि उसका पुत्र उससे महान बने। अतः वरदान दे कर श्रीकृष्ण ने महाविष्णु को स्वयं से लाखों गुणा महान बना दिया और स्वयं से ऊँचा स्थान प्रदान करने का वचन भी दिया। उनके अस्तित्व में असंख्य ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश निहित होंगे और प्रलय के अन्तिम दिन, उनके मस्तक से ग्यारह रुद्रों का सृजन किया जाएगा।

'मेरी' अवतरण में राधा, पुत्र को अपने स्वामी कृष्ण का नाम देना चाहती थीं। कृष्ण शब्द की उत्पत्ति 'कृष'+'ण' से होती है। 'कृषि' अर्थात् खेती, 'ण' अर्थात् करने वाला। अतः 'क्राइस्ट' शब्द (नाम) का उद्भव कृषि से है। जीज़स नाम 'जसोदा' (यशोदा) से आया है-श्रीकृष्ण का पालन-पोषण करने वाली माँ के नाम से। वृन्दावन और गोकुल में यशोदा की राधा के प्रति श्रद्धा और भक्ति के कारण राधा अपने पुत्र को यशोदा का नाम देना चाहती थीं। यशोदा का संक्षिप्त नाम 'येशु' है। अतः राधा/मेरी ने अपने पुत्र को 'जीज़स क्राइस्ट' नाम दिया।

ईसामसीह के अवतरण में 'परमात्मा के पुत्र' रूप में पृथ्वी पर आध्यात्मिकता के सारतत्व की अभिव्यक्ति हुई। मानव हित के लिए परम

पिता (विराट) के एकमात्र प्रियतम पुत्र के बलिदान का साक्षी सारा संसार था। इस बलिदान ने हमें मानव जाति के लिए परमात्मा के अगाध प्रेम की गहन धारणा प्रदान की। ईसामसीह के बलिदान के समय तक मानव परम पिता परमात्मा के विषय में जान चुका था परन्तु उसे इस बात का ज्ञान नहीं था कि मानव के आध्यात्मिक उत्थान के लिए उसके सांसारिक स्वार्थों का बलिदान किस प्रकार किया जाय। ईसामसीह के पुनर्जन्म का यही अर्थ है - कि मनुष्य अपनी आँखों से आत्मा के अमरत्व का साक्षी बन सके, देख सके कि आत्मा की न तो मृत्यु होती है और न इसे कोई कष्ट होता है। श्रीकृष्ण ने अपने जीवन काल में आत्मा की जिस अनश्वरता के सत्य का वर्णन किया था, जिसे महाकवि व्यास ने भगवद्गीता में संकलित किया है, पहली बार मानवीय चेतना ने आत्मा के अमरत्व की इस गहन धारणा को समझा।

श्रीकृष्ण का नाम लेने से पूर्व 'राधा' का नाम लेना पड़ता है। अतः 'विराट' का मन्त्र कहने के लिए साधक को 'राधा-कृष्ण' का नाम लेना होता है। इसी प्रकार श्रीराम का मन्त्र लेने के लिए 'राम' से पूर्व 'सीता' का नाम लिया जाता है - 'सीता-राम' मन्त्र का उच्चारण होता है। ईसामसीह के युग में शान्त और गतिज (Potential) 'पावन मेरी' को भी बाद में उनके अनुयाईयों ने ईसामसीह की सम्भाव्य शक्ति के रूप में मान्यता प्रदान की। 'मेरी' के देहत्याग के बाद, आरम्भिक ईसाइयों ने बहुत वर्षों तक उनकी पूजा की। आधुनिक काल में आसुरी प्रवृत्ति मनुष्य आदि माँ (मेरी) के कौमार्य (Virginity) और कुँआरेपन में उनके ईसामसीह को जन्म देने की वैधता को चुनौती दे रहे हैं। 'मेरी' ने 'कुँआरेपन' (पावनता) की उस शक्ति को स्पष्ट दर्शाया था जो माँ के पद को इतने शक्तिशाली और उन्नत स्तर पर ला कर अपनी इच्छा मात्र से गर्भधारण कर सके। वे विकास की उस उच्च अवस्था तक पहुँच चुकी थीं जहाँ मात्र अपनी दिव्य-इच्छा से उन्होंने पावन-गर्भ धारण किया। हिन्दू पौराणिक साहित्य में ऐसे और भी उदाहरण हैं-कुन्ती ने

मन्त्र शक्ति से पाण्डवों तथा करण को जन्म प्रदान किया।

राधा ने वैकुण्ठ अवस्था में अपने एकमात्र पुत्र महाविष्णु का सृजन किया, अविवाहित होने के कारण राधा गर्भधारण न कर पाईं। परन्तु मेरी के अवतरण में उन्होंने बिना विवाह के, पूर्ण कुँआरेपन में अपने पुत्र का गर्भधारण किया। यह निष्कलंक पावन गर्भधारण (Sinless Immaculate Conception) उनकी पावनता की शक्ति की अभिव्यक्ति थी। 'मेरी' के जीवन ने पावनता की शक्ति द्वारा सामाजिक (सामूहिक) चेतना की महानतम उन्नति को दर्शाया तथा समाज विकास पथ पर अग्रसर हुआ। वे यद्यपि कुँआरी थीं, फिर भी ईसा मसीह को जन्म देकर वे इतने उच्चपद पर पहुँच गईं कि जनता उन्हें आज भी परमात्मा की जननी के रूप में स्वीकार करती है।

सहजयोग की गहन सूझबूझ द्वारा पाठक 'निष्कलंक गर्भधारण' की सहजता को समझ पाएंगे। अपने 'आदि हृदय चक्र' में गर्भधारण कर के मेरी ने प्रमाणित कर दिया कि वे आदिशक्ति का अवतार हैं। पावन हृदय ही वह स्थान है जहाँ जगद्जननी 'जगदम्बा' का निवास है। जिस प्रकार उन्होंने ब्रह्माण्ड का गर्भधारण किया था, वैसे ही उन्होंने ईसामसीह का गर्भधारण किया और आदि सुषुम्ना नाड़ी के माध्यम से इसे 'आदि कुम्भ' (Uterus) का नियंत्रण करने वाले 'आदि स्वाधिष्ठान चक्र' में पहुँचाया ताकि मानव शिशु के रूप में इन्हें जन्म दिया जा सके। सृजनात्मकता के परमेश्वरी स्वर्ग में इस निष्कलंक गर्भ ने अण्डम् (Zygote Egg) का रूप धारण किया। आदिशक्ति के 'मेरी' अवतरण तक बहुत से युगों (कल्पों) में यह अण्ड उसी अवस्था में बना रहा। आदिशक्ति के लिए यह कार्य कठिन नहीं था। दुर्भाग्य की बात है कि उनकी महान शक्तियों को उनके पृथ्वी से विदा होने के बाद ही मान्यता दी गई।

सहजयोग के माध्यम से साधक भी ठीक इसी प्रकार से पुनर्जन्म प्राप्त करता है। आदिशक्ति सभी साधकों को जन्म देना चाहती हैं। साधक के सूक्ष्म

शरीर का वे हृदय में गर्भधारण करती हैं। उनका चित् साधक के सूक्ष्म शरीर में कुण्डलिनी जागृत करता है। वे हृदय तक उन्नत की गई उसकी आत्मा जीवात्मा को आशीर्वादित करती हैं और अपने चित् द्वारा आत्मा को तालु-क्षेत्र पर लाती हैं। मस्तिष्क पर बने सभी चक्रों की पीठों से वे इसे तब तक गुज़ारती है (उन्नत करती हैं) जब तक यह सिर की खोपड़ी के छिद्र, ब्रह्मरन्ध्र से जन्म न ले ले। इसी प्रकार सभी आत्माऐं सहजयोगी के रूप में पुनर्जन्म प्राप्त करती हैं।

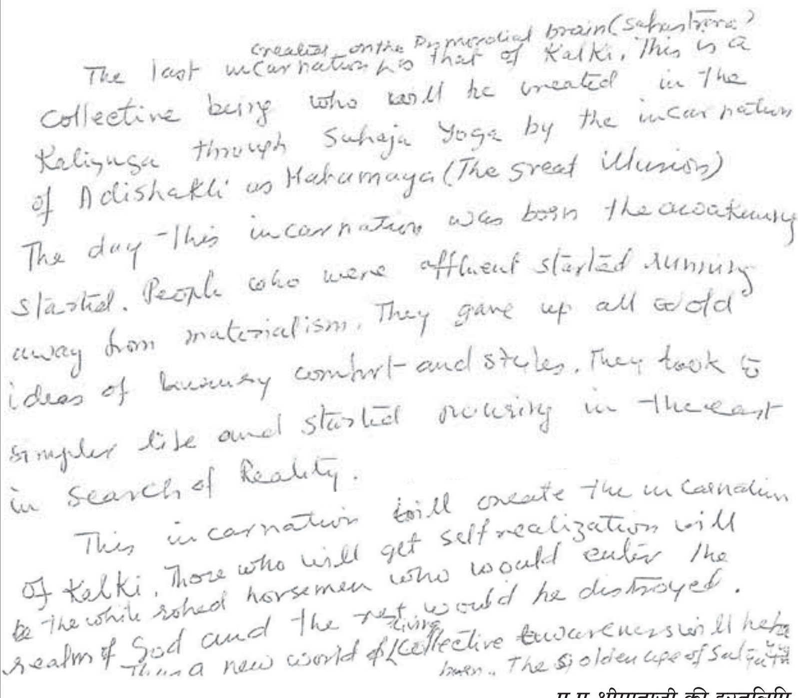
created on the Primordial brain (Sahastrara)
The last incarnation is that of Kalki. This is a
collective being who will be created in the
Kaliyuga through Sahaja Yoga by the incarnation
of Adishakti as Mahamaya (The great illusion)
The day this incarnation was born the awakening
started. People who were affluent started running
away from materialism. They gave up all old
ideas of luxury comfort and styles. They took to
simpler life and started roaming in the east
in search of Reality.
This incarnation will create the incarnation
of Kalki. Those who will get self realization will
be the white robed horsemen who would enter the
realm of God and the rest would be destroyed.
living
Thus a new world of Collective awareness will be
born. The golden age of Sat Yuga

प.पू.श्रीमाताजी की हस्तलिपि

कल्कि का सृजन

आदि मस्तिष्क (सहस्रार) पर सृजित अन्तिम अवतरण श्री कल्कि हैं। ये सामूहिक पुरुष हैं जिनका सृजन कलियुग में महामाया रूप में अवतरित

श्रीआदिशक्ति द्वारा सहजयोग के माध्यम से किया जाएगा। आदिशक्ति के महामाया रूप में जन्म के प्रथम दिवस से ही जागृति का आरम्भ हो गया था। वैभवशाली लोगों ने भौतिकता से दूर भागना शुरु कर दिया था। ऐशोआराम की प्राचीन शैली को त्याग, सहजजीवन अपना कर वे बड़ी संख्या में वास्तविकता की खोज में निकलने लगे थे।

यही अवतरण कल्कि का सृजन करेंगी। जो लोग आत्मसाक्षात्कार प्राप्त कर लेंगे वे श्वेतवस्त्रधारी अश्वारोही (घुड़सवार) बन कर परमात्मा के साम्राज्य में प्रवेश कर लेंगे और बाकि लोग नष्ट हो जाएंगे।

इस प्रकार जीवन्त सामूहिक चेतना के नये संसार का उदय होगा- सत्ययुग के स्वर्णिम काल का। यह वह काल है जिसमें पृथ्वी पर परमात्मा का साम्राज्य स्थापित होना है। विश्व में अपने करुणामय कार्यों से सामूहिक पुरुष (विराट) का प्रकटन आरम्भ हो चुका है, स्वयं को सामूहिक रूप से परमेश्वरी चेतना में विलीन कर रहे सभी आत्मसाक्षात्कारी इस विराट रूप को आकार प्रदान कर रहे हैं। कल्कि की शक्ति महामाया रूप में जानी जाती है क्योंकि ये महाभ्रान्ति हैं। पूर्णतः मानवीय होते हुए भी वे महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती की तीन समग्र शक्तियों की अभिव्यक्ति करती हैं।

जनसमूह में सामूहिक आत्मसाक्षात्कार, जिसके माध्यम से साधक सामूहिक चेतना के साम्राज्य में प्रवेश करते हैं, देकर वे अपनी शक्तियों का प्रदर्शन करती हैं। आत्मसाक्षात्कार को आध्यात्मिक विकास के इतिहास की महत्वपूर्णतम घटना कहा जाएगा क्योंकि इसमें परमेश्वरी प्रेम के पथ-प्रदर्शन में पूरी सृष्टि अपने स्रोत परमेश्वरी प्रेम की ओर लौटने लगती है। जिस दिन आदिशक्ति के इस अवतरण (महामाया) ने मानव रूप धारण किया उसी दिन कल्कि की जागृति आरम्भ हो गई थी। वास्तविकता की खोज में आत्माएं बड़ी संख्या में पृथ्वी पर जन्म लेने लगीं, वैभवशाली लोग भौतिकतावाद को

त्यागने लगे, अधिकतर ने ऐशोआराम के पुराने विचारों को त्याग कर सहजजीवन शैली अपना ली। इस युग में आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करने वाले लोग श्वेतवस्त्रधारी घुड़सवार होंगे (मस्तिष्क उनके घोड़े हैं) जो भिन्न धर्मग्रन्थों में दिए गये वचन के अनुरूप परमात्मा के साम्राज्य में प्रवेश करेंगे। अन्य सब लोग नष्ट हो जाएंगे। इस प्रकार जीवन्त सामूहिक चेतना का नया संसार उदय होगा।

भिन्न अवस्थाओं में विकास प्रक्रिया का नेतृत्व करने के लिए भगवान विष्णु ने ये सारे अवतार धारण किए। उनके साथ अवतरित होकर उनकी शक्ति महालक्ष्मी भी भिन्न विकास प्रक्रियाओं में अपने अवतरणों को विकसित करती हैं। मानव अवस्था पर पहुँचने तक विकास घटित होता रहता है परन्तु सम्बन्धित जीव को इस विकास का ज्ञान नहीं होता। केवल कल्कि की अन्तिम और परम अवस्था में ही, जब आदिशक्ति स्वयं अवतरित होती हैं, मानव सामूहिक चेतना की उच्च चेतना में प्रवेश करता है, अपने जीवन काल में ही और उसे अपने नये जन्म (पुनर्जन्म) का पूर्ण ज्ञान भी प्राप्त होता है।

अध्याय 3

विकास (प्रक्रिया)

विकास परमात्मा का कार्य है, सर्वप्रथम जिसकी अभिव्यक्ति वैकुण्ठ अवस्था में होती है और बाद में पृथ्वी पर। महाकाली और महासरस्वती शक्तियाँ अपनी शक्ति (ऊर्जा) की लहरियाँ विराट के मस्तिष्क पर डालती हैं। ये लहरियाँ तरंगों के रूप में गतिशील होती हैं और एक-दूसरे को सात बिंदुओं पर काटती हैं। ये सात बिंदु सात आदि-चक्र हैं। 'आदिनाभि चक्र' पर महालक्ष्मी शक्ति की एक अन्य तरंग का उद्‌भव होता है। महालक्ष्मी शक्ति सभी जीवन्त और मृत पदार्थों को आश्रय (पोषण) प्रदान करती हैं। पदार्थों के गुण या संयोजकताऐं उन्हीं की शक्ति से संभलते हैं। श्रीआदिविष्णु का निवास 'आदिनाभि चक्र' पर है और वे ही अपनी पोषण शक्ति प्रसारित करते हैं जो दाईं ओर (आदि पिंगला नाड़ी पर) सूर्य को आश्रय प्रदान करती है और बाईं ओर (आदि ईड़ा नाड़ी पर) चन्द्र को तथा अन्ततः पृथ्वी को आश्रय प्रदान करती हैं। आदि ब्रह्मदेव सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी का सृजन करते हैं परन्तु उनके आश्रय प्रदायक गुण श्रीआदिविष्णु की देन हैं।

आश्रय (sustenance) उन्हें कार्यक्षेत्र प्रदान करता है। उनके माध्यम से कार्य करके चेतना मृत और जीवन्त प्रकार की भिन्न प्रतिकृतियों (Pattern) का सृजन करती है। ये प्रतिकृतियाँ नियतकालिक (Periodic) हैं तथा पदार्थों में इनकी सात चक्करों में पुनर्आवृत्ति होती है और मनुष्यों में नौ चक्करों में। निर्जीव पदार्थ की अभिव्यक्ति चार दिशाओं में या श्रीगणेश की चार भुजाओं की तरह होती है।

पदार्थ का सृजन

आदिविष्णु की आश्रय शक्ति से पदार्थ भिन्न तत्वों में विभाजित हो

जाता है, वे उनका नियतकालिक प्रतिकृतियों (Periodic Pattern) में सृजन करते हैं। (आकृति ४) आदि गणेश कार्बन को जीवन्त प्रक्रिया के लिए सुस्थिर करते हैं। उनकी चार भुजाएं कार्बन जैसे स्थिर तत्वों की चार संयोजकताएं हैं। कार्बन जैव तत्वों (Organic Elements) के लिए आधार बनाता है और यह परिपूर्ण संतुलित तत्व है। अजैविक (अकार्बनिक) विकास के छोर को पूरा करने के लिए उनकी १, २, ३ या अधिक संयोजकताएं हैं।

महालक्ष्मी की शक्ति के प्रभाव से कार्बन सूर्य और चन्द्र की किरणों से सम्मिलित होकर ऑक्सिजन और हाइड्रोजन प्रसारित करता है। जल के अन्दर जीवन धड़कता (चलता) है क्योंकि आदिनाभि चक्र पर जल, सूर्य और चन्द्र की शक्ति का समिश्रण है। आदिशक्ति प्रथम धड़कन (जीवन)

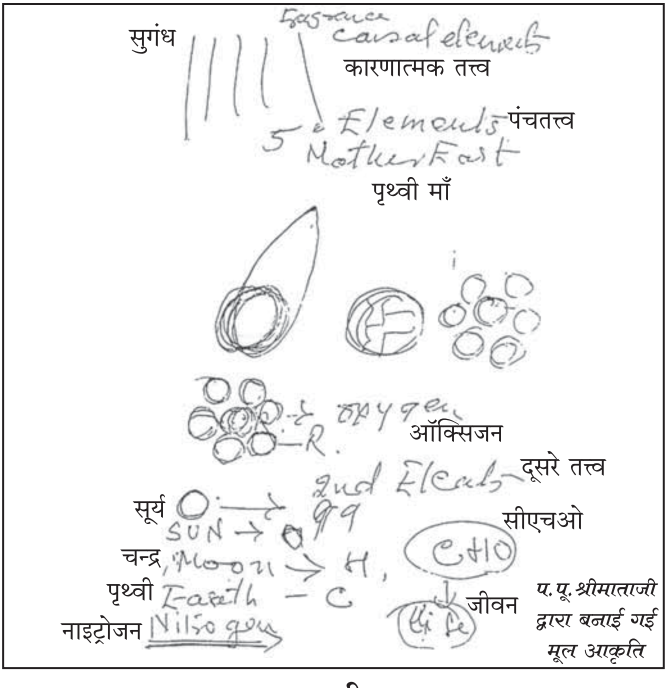

आकृती ४

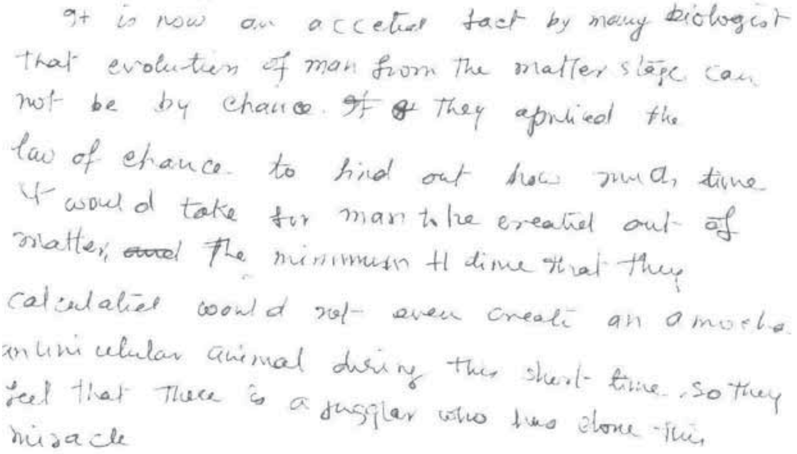
It is now an accepted fact by many biologist that evolution of man from the matter stage can not be by chance. They applied the law of chance to find out how much time it would take for man to be created out of matter, the minimum time that they calculated would not even create an amoeba unicellular animal during this short time. So they feel that there is a juggler who has done this miracle

प.पू.श्रीमाताजी की हस्तलिपि

उत्पन्न करती हैं क्योंकि वे जलतत्व में श्वास लेती हैं।

बहुत से शरीर-वैज्ञानिकों ने इस तथ्य को स्वीकार कर लिया है कि मनुष्य का पदार्थ से विकसित होना संयोग नहीं है। ये जानने के लिए कि पदार्थ से मानव अवस्था तक विकसित होने में संयोग के सिद्धांत से कितना समय लगा होगा, उन्होंने प्रयोगद्वारा परिणाम निकाला कि सृष्टि के सृजन में जितना समय लगा है, संयोग के सिद्धांत से इतने कम समय में तो एककौशिक अमीबा का सृजन भी नहीं किया जा सकता। उन्हें लगता है कि सृष्टि का सृजन किसी बाज़ीगर का चमत्कार है।

मेरी पीढ़ी के लोग जब बचपन में थे तो ये कल्पना से परे की बात थी कि हमारे जीवन काल में मनुष्य चाँद पर उतर पाएगा। आज हम देखते हैं कि विस्फोटक ऊर्जा विज्ञान में कुशलता पा कर उसका उपयोग करते हुए मनुष्य ने यह असम्भव प्रतीत होने वाली उपलब्धि प्राप्त कर ली है। इसी प्रकार अन्तरिक्ष यात्रा के लिए उपयोग की गई विधि (विस्फोटक ऊर्जा) द्वारा मानव के विकास की गति को भी तीव्र कर दिया गया है।

चार या पाँच डिब्बे (इंजन) जोड़ कर अन्तरिक्ष यान की रचना की

जाती है। इन डिब्बों में उड़ान की भिन्न अवस्थाओं पर विस्फोटित होने के लिए समय नियत किया जाता है। अंतरिक्षयान सामान्य गति से उड़ना शुरु करता है, इस गति को हम ‘X’ कहेंगे, और उसकी ये गति उसे वहाँ तक ले जाती है जहाँ पर पहले इंजन में विस्फोट होता है। इस विस्फोट से यान की गति को कहीं अधिक तेज़ कर दिया जाता है। इस गति को हम X^n कहेंगे। इस प्रकार गति बढ़ती चली जाती है और चौथे इंजन के विस्फोट होने पर यह X^{4n} गति प्राप्त कर लेता है। अंतरिक्ष यान अंतरिक्ष में प्रवेश कर जाता है। इतनी लम्बी दूरी तय करने के लिए यह बहुत कम समय लेता है, सुपरसोनिक (पराध्वनिक) हवाईजहाज़ की तुलना में बहुत कम समय। संक्षिप्त में, विकास प्रक्रिया की गति को बढ़ाने का श्रेय भी विस्फ़ोट की इसी प्रणाली को जाता है।

आरम्भ में जब जीवन-विस्फ़ोट (जीवन का आरम्भ) हुआ, तो पहला बक्सा भौतिक (शारीरिक) तत्व का था। इस का विस्फ़ोट हुआ और इससे वनस्पति जगत तथा एककोशिक और बहुकोशिक पशुओं में शरीर तत्व की अभिव्यक्ति हुई। तब मस्तिष्कधारियों का सृजन करने के लिए दूसरा विस्फ़ोट घटित हुआ। इस प्रगति के माध्यम से पशुओं को बुद्धि प्राप्त हुई। जिन पशुओं का शरीर बड़े आकार का हो गया उन्हें पीछे छोड़कर उनका स्थान अधिक बुद्धि वाले छोटे पशुओं ने ले लिया। तीसरे विस्फ़ोट से भावनात्मक तत्व स्थापित किया गया। कुत्ते, बंदर, गाय, घोड़े और डोल्फ़िन मछलियाँ आदि पशु इस समूह में सम्मिलत हुए। अन्तिम और निर्णायक विस्फ़ोट घटित होने पर मानवीय तत्व की स्थापना हुई। मनुष्य में भौतिक, मानसिक, भावनात्मक और मानवीय तत्व हैं। वर्तमान अवस्था तक पहुँचने के लिए मानव को जिन अनुभवों से गुजरना पड़ा उन्हें मनुष्य ने अभिलिखित कर लिया। अचेतन (Unconscious), विकास प्रक्रिया को दिशा निर्देश प्रदान करता है।

सभी पावन पशु सुषुम्ना नाड़ी के मध्य मार्ग पर हैं। शारीरिक विस्फ़ोट ने उन पशुओं का सृजन किया जो शारीरिक रूप से शक्तिशाली हैं। जिन

स्तनधारी पशुओं का विकास अति की सीमा तक हो गया था उन्हें विकास प्रक्रिया से हटा दिया गया। बचे हुए पशुओं में से निम्नलिखित को परमेश्वरी वाहनों के रूप में चुना गया -

* हाथी पृथ्वी पर शेष रह गये क्योंकि अन्य पशुओं की अपेक्षा हाथी विकास के मध्यमार्ग के बहुत समीप हैं। यह अत्यन्त गौरवशाली पशु है तथा श्रीलक्ष्मीजी का वाहन होने के कारण पावन है।

* मछलियों में भी विशालकाय मछलियों को विकास प्रक्रिया से बाहर फेंक दिया गया, जब कि छोटी, अधिक बुद्धिमान मछलियाँ जीवित रह गईं। इन मछलियों में डोल्फ़िन विकास के मध्य मार्ग के समीपतम होने के कारण अत्यन्त मानवीय और पावन है।

* शक्तिशाली शरीर वाले पशुओं में से सिंह और चीतों को विकास प्रक्रिया में बनाए रखा गया। ये पशु बुद्धिमान और तेजस्वी होने के कारण अत्यन्त पावन हैं। ये आदिशक्ति के वाहन बने।

* छोटे बुद्धिमान पशुओं में से मध्यमार्ग पर बने रहने के लिए मूषक को चुना गया। यह श्रीगणेश का विनम्र वाहन बना।

* पक्षियों में गरुड़ को अपने वर्ग के पक्षिओं में अत्यन्त विकसित पक्षी की अभिव्यक्ति माना गया। गरुड़ श्रीविष्णु का वाहन है।

* रेंगने वाले जीवों में सर्प सबसे अधिक विकसित जीव था। भवसागर में शेषनाग श्रीविष्णु की शैय्या बने।

* पशुओं में लोमड़ी, बुद्धि और चालाकी की अति तक पहुँच गये थे। ये कोल्हासुर जैसे राक्षस बन गये। कलियुग में इस प्रकार के राक्षसों की बहुत बड़ी संख्या है। ये गुरुरूप में अवतरित हुए हैं और पुण्य प्रतीत होने वाले छल तथा पाप करते हैं।

* घोड़े और कुत्ते जैसे मानव सम्पर्क में आने वाले भावनात्मक पशु भी

बहुत से हैं। शारीरिक और भावनात्मक तत्वों के सामंजस्य से इनका सृजन किया गया।

* भारत में गाय की पूजा की जाती है क्योंकि एक बार आदिशक्ति ने सुरभि नामक गाय के रूप में महत्वपूर्ण जन्म लिया। इसके अतिरिक्त गाय हर भारतीय परिवार की माँ है। यह बच्चों के लिए दूध देती है और इस कारण से भारतीय लोगों के लिए माँ समान गाय का माँस खाना बहुत कठिन है। गाय भावनात्मकता का सार-तत्व है।
* ईड़ा नाड़ी मार्ग पर चलने वाला एकमात्र पशु नन्दी (बैल) है।
* यम के वाहन के रूप में उपयोग होने वाला पशु भैंसा, भावनात्मकता की पराकाष्ठा माना जाता है। अत्यन्त क्रूर पशु होने के कारण इसे विकास प्रक्रिया से बाहर फैंक दिया गया ताकि महिषासुर जैसे राक्षसों का रूप धारण कर ले।
* बंदरों का समग्र पशुओं की तरह से विकास हुआ। बंदर ने अपना सिर उठाया और खड़ा हो गया। इससे पशुओं के विकास में एक नये आयाम का सृजन हुआ। पृथ्वी पर अर्धपुरुष और अर्धबंदर की लुप्त कड़ी साकार हो उठी। विकसित होकर इन्होंने हनुमान और भैरव जैसे देवदूत व्यक्तित्व धारण किए।

देवता सभी तत्वों के रक्षक हैं। बहुत से महान संत देवता बन गये। उनका व्यक्तित्व ऐसा है कि उन्हें विकास की मानवीय अवस्था-संसार अवस्था-में प्रवेश नहीं करना पड़ता। वे भवसागर अवस्था में ही रहते हैं। इनमें से नारद ही एकमात्र ऐसे देव हैं जो सृजन की हर अवस्था में गतिशील होते हैं। देवता मानव जन्म नहीं लेते, वे अतिचेतन क्षेत्र (Realm of the supraconscious) में ही बने रहते हैं। इसके आगे वे विकसित नहीं होते।

अभी तक जीव में जो भी विकास हुआ वह विकसित जीव के जाने

बिना हुआ। बंदर अवस्था के बाद मानव का सृजन हुआ। बहुत से जन्म लेने और बहुत सी खोज करने के बाद मनुष्य को जीवन का ज्ञान प्राप्त होता है। मनुष्य पशुओं से भिन्न है परन्तु अपने विकास के अनुरूप वह असभ्य जंगली भी बन सकता है।

मनुष्य - भौतिक जीव

- ✻ मनुष्य में स्वामित्व विवेक है।
- ✻ मनुष्य में सौन्दर्य विवेक है।
- ✻ मनुष्य में मृत पदार्थों का अपनी सुख-सुविधा के लिए परिवर्तन करने का विवेक है। इसी के कारण आगे चल कर वह भौतिक पदार्थों का दास बन जाता है।
- ✻ मनुष्य में विवाह विवेक है। विकसित होने पर वह बहु-पति या बहु-पत्नी नहीं रहता। ये प्रवृत्तियाँ केवल अविकसित लोगों में ही बनी रहती हैं।

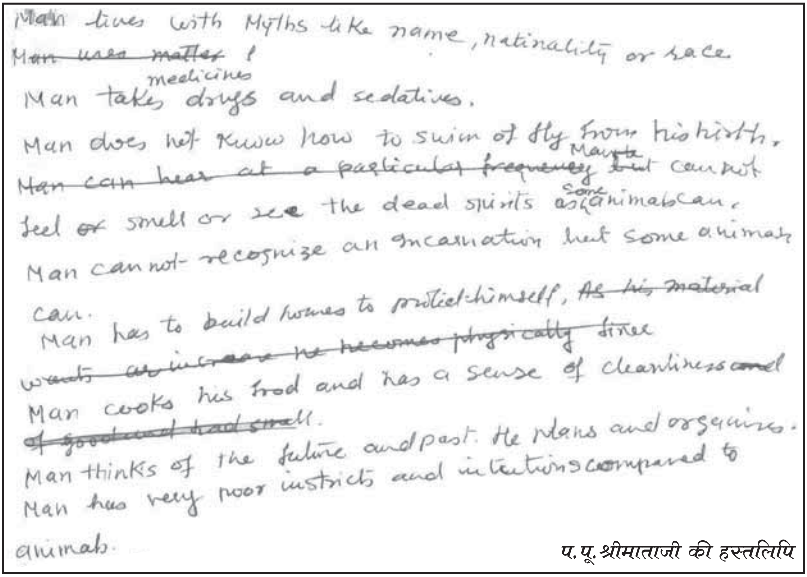
Man lives with Myths like name, natinality or race
~~Man uses matter~~ !
Man takes drugs (medicines) and sedatives.
Man does not know how to swim or fly from his birth.
~~Man can hear at a particular frequency but~~ (Maybe) cannot
feel ~~or~~ smell or see the dead spirits as (some) animals can.
Man cannot recognize an incarnation but some animals
can.
Man has to build homes to protect himself, ~~As his material~~ since
~~wants are increase he becomes physically~~
Man cooks his food and has a sense of cleanliness ~~and~~
~~of good and bad smell~~.
Man thinks of the future and past. He plans and organises.
Man has very poor instincts and intuitions compared to
animals.

प.पू.श्रीमाताजी की हस्तलिपि

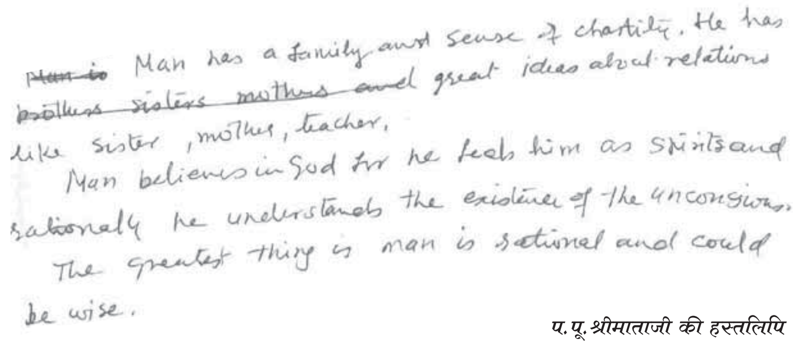
~~Man is~~ Man has a family and sense of charity. He has
~~brothers sisters mothers and~~ great ideas about relations
like sister, mother, teacher,
Man believes in God for he feels him as Spirits and
rationally he understands the existence of the unconscious.
The greatest thing is man is rational and could
be wise.

प.पू.श्रीमाताजी की हस्तलिपि

- ❋ मानव नाम, राष्ट्रीयता और नस्ल की काल्पनिकता के साथ जीवित रहता है।
- ❋ मनुष्य दवाईयाँ, नशीले पदार्थ और शामकों (sedatives) का उपयोग करता है।
- ❋ मनुष्य को तैरने या उड़ने का जन्मजात ज्ञान नहीं होता।
- ❋ कुछ पशुओं की तरह, मनुष्य मृत आत्माओं को न तो देख सकता है, न सूँघ सकता है और न उनकी अनुभूति कर सकता है।
- ❋ अपनी सुरक्षा के लिए मनुष्य को घर बनाना पड़ता है।
- ❋ मनुष्य खाना पकाता है और उसमें स्वच्छता विवेक होता है।
- ❋ मनुष्य भूत और भविष्य के विषय में सोचता है। वह योजना बनाता है और आयोजन करता है।
- ❋ पशुओं की तुलना में मनुष्य में मूलवृत्ति तथा आकांक्षाएं (instincts and intentions) बहुत दुर्बल होती है। वंशानुगत (Id) प्राप्त अन्तर्ज्ञान (intuitions) उसका मार्गदर्शन करता है।
- ❋ मनुष्य का परिवार होता है और उसमें पावनता विवेक होता है। उसके माँ, बहन, भाई और गुरु जैसे उत्कृष्ट सम्बन्ध भी होते हैं।

* मनुष्य परमात्मा में विश्वास करता है क्योंकि वह उसे आत्मारूप में महसूस करता है तथा तर्कबुद्धि से अचेतन के अस्तित्व को समझता है।
* मानव का सहज गुण ये है कि वह बुद्धिसंगत होता है और सम्भाव्य रूप से विवेकशील।
* मानव ही एकमात्र ऐसा जीव है जिसमें पावनता विवेक है।
* मनुष्य में श्रद्धा (समर्पण) विवेक है।
* मानव अचेतन से इस प्रकार संदेश प्राप्त करता है कि उन्हें समझा जा सके, जबकि पशुओं का मूल स्वभाव (instinct) उनका मार्गदर्शन करता है।
* मनुष्य अपने सभी अनुभवों को ज्ञान रूप में अभिलिखित कर लेता है।
* भावनात्मक होने के कारण मनुष्य में परिवारभाव होते हैं, क्योंकि वह अत्यन्त कोमल एवं जटिल यन्त्र है।
* अलौकिक धारणाओं से मानव भावनात्मक रूप से लिप्त हो जाता है, इन धारणाओं की कल्पना केवल मानव ही कर सकता है।

जिस प्रकार सहजयोग में वर्णन किया गया है, शिखर की ओर संकेत करता हुआ मानव मस्तिष्क का शंकुरूप (Conical) आकार अहं और प्रति अहं का सृजन करता है। केवल मानव में ही आत्मा की अभिव्यक्ति होती है। पशुओं में कुण्डलिनी सुप्त अवस्था में है, इसकी जागृति केवल मानव अवस्था में ही हो सकती है। केवल मानव में ही सभी देवता भी पूर्णत: अलग-अलग हो जाते हैं और प्रणव भी मानव में ही २१,००० भिन्न शक्तियों में पूरी तरह विभाजित होता है।

अध्याय 4

मानव की खोज

मानव की खोज तीन आयामों में चली - शारीरिक आयाम, मानसिक आयाम और भावनात्मक आयाम में। मानव की प्रथम और सर्वोपरि समस्या मात्र उसके शारीरिक पक्ष की थी। भूतकाल में और आज भी क्रूर प्राकृतिक शक्तियों ने मानव को अपने अस्तित्व की रक्षा के विषय में चिंतित बनाए रखा। मानव जीवन की रक्षा हेतु किए गये सभी मानवीय प्रयास कुछ समय बाद मानव अस्तित्व के कट्टर दुश्मन बन गये। उदाहरण के रूप में मानव ने एटम बम्ब और हाइड्रोजन बम्ब बनाए और अब उन्हीं ने यमदूतों का रूप धारण कर लिया है। पूरी मानव जाति को विनाश के भय से मुक्त करने के लिए मनुष्य ने राज्यों और साम्राज्यों जैसी बहुत सी संस्थाएं बनाईं, परन्तु उसके सारे प्रयास विफल हो गये। अमानवीय शक्तियों से मनुष्य का डर तो समझ में आता है, परन्तु आज अपने ही साथी मनुष्यों से किए जाने वाले विनाश के डर का सामना मनुष्य कर रहा है। मानव जीवन की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए किए गये सभी प्रयासों ने अत्यन्त विस्फोटक स्तर की असुरक्षाओं का सृजन कर दिया।

शारीरिक आनन्द (शरीरानन्द) की आवश्यकता ने मनुष्य को एक दूसरी अति की चरम सीमा तक धकेल दिया जहाँ उसे यह शिक्षा प्राप्त हुई कि किसी भी सीमा तक शरीर का आनन्द वास्तविक आनन्द प्रदान नहीं कर सकता। इसके विपरीत यह मानव जीवन को असह्य तनावों और निराशाओं (Tensions & Frustrations) से भर देता है। वैभवशाली विकसित देशों में निराश, कुण्ठित और रोगी मनुष्यों की संख्या सबसे अधिक है। परन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि कम वैभवशाली लोग इन खतरों से मुक्त हैं। जिन लोगों को अभी तक शारीरिक प्रलोभनों का अनुभव नहीं हुआ है, या जो

किसी प्रकार के भय के कारण नियंत्रित हैं उन्हें भी इन्हीं समस्याओं का सामना करना पड़ेगा। इन नियंत्रणों के समाप्त होते ही एक दिन उन्हें भी ऐसी ही समस्याओं का सामना करना पड़ेगा।

अर्थशास्त्र इस सिद्धांत पर आधारित है कि प्राय: मनुष्य की इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती। किसी को अपने संतोष और आवश्यकता के लिए यदि घर की आवश्यकता है तो बड़ी आशाओं के साथ वह घर बनाता है। घर प्राप्त हो जाने के बाद उसे लगता है, कि सुरक्षा का भाव स्थापित नहीं हुआ और न ही सिर पर छत बनने से उसे किसी प्रकार की शांति या आनन्द प्राप्त हुआ है। और वह ऐशोआराम की अन्य वस्तुओं जैसे कार, छुट्टियाँ, नाव या हवाई जहाज आदि की कामना करने लगता है। परन्तु हमें ऐसा एक भी व्यक्ति दिखाई नहीं देता जो अपने भाग्य से सन्तुष्ट हो या हर समय प्रसन्न रहता हो। किसी न किसी नई तथा बड़ी सम्पत्ति की इच्छा निरंतर बनी रहती है।

सृजन की भौतिक संरचना-शरीर-के माध्यम से सौंदर्य अभिव्यक्ति मानव की खोज का एक अन्य क्षेत्र है। कला के माध्यम से मनुष्य उस सौन्दर्य बोध के आनन्द की अभिव्यक्ति करता है जिसे उसने महसूस किया है और जिसकी उसे अनुभूति हुई है। परन्तु इस प्रकार की अभिव्यक्तियाँ ऐसी कला के सृष्टा या सौन्दर्य बोध (aesthetics) के जनक को संतुष्ट नहीं करतीं। फिर भी भौतिक पदार्थ को प्राप्त करने या उसका स्वामित्व हासिल करने का प्रयत्न किए बिना ऐसा व्यक्ति जब कला के माध्यम से अपने भौतिक स्वभाव की अभिव्यक्ति करता है तो हम कह सकते हैं कि वह आनन्द की अपनी सूझबूझ में सूक्ष्म हो गया है। एक ओर तो आवश्यकता और सुख के लिए किए जानेवाले परिवर्तनों से मानव को आनन्दमय जीवन और शांति प्राप्त नहीं होती और दूसरी ओर व्यक्ति, अन्ततः स्वयं को इन मृत पदार्थों के मोह में बंधा हुआ पाता है और उसे इनके उपयोग की आदत हो जाती है।

अपनी सभी आदतों को त्याग कर सन्यासी बन जाने की इच्छा उसकी

अगली अवस्था है। संसार के सम्मुख सारी भौतिक उपलब्धियों और सम्पत्तियों को त्यागने की घोषणा करके वह दास बनाने वाले पदार्थों के प्रलोभनों से दूर, मनुष्यों की भीड़ से परे, स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए जंगल की ओर चल पड़ता है। परन्तु इस प्रकार का भगोड़ापन भी उसे मोक्ष प्राप्ति का लक्ष्य प्राप्त करने में सहायक नहीं होता क्योंकि अभी तक भी उसमें भौतिक पदार्थों की लिप्सा बाकी बनी हुई है जिससे वह दूर भाग रहा है।

ये धारणा भी एक मिथक है कि मानव, पदार्थ का किसी भी रूप में स्वामी बना रह सकता है। अपनी तथाकथित सम्पत्तियों, जैसे घर, कार, वायुयान या नाव आदि का पंजीकरण वह किसी भी पंजीकरण संस्था से करवा सकता है परन्तु मृत्यु के बाद ये संस्थायें भी इन सम्पत्तियों को उसके साथ नहीं भेज सकतीं। उन सम्पत्तियों को जिसे वह अपना कहता था, मृत्यु के बाद वह अपने साथ नहीं ले जा सकता। इस तथ्य को हम सब जानते हैं और इसे मान्यता देते हैं, फिर भी हम इस सत्य की अपेक्षा कि 'हम स्वामी नहीं है', स्वामित्व के मिथक को स्वीकार करते हैं। भौतिक सम्पत्तियों का त्याग करते हुए भी हम इस तथ्य को स्वीकार कर रहे होते हैं कि हम ही इसके स्वामी हैं। अतः हमारा ये दावा करना भी कि हम स्वामित्व त्याग रहे हैं, समान रूप से हास्यास्पद है। इस मूर्खतापूर्ण धारणा को बैंक, बीमा कम्पनियाँ या शेयर बाजार जैसी संस्थाएं विश्वसनीय बनाती हैं। यद्यपि ये स्वयं मनुष्य-रचित इकाईयाँ हैं जो इस सत्य की विरोधी हैं, कि जो हमारा है ही नहीं उसे भी हम त्याग नहीं सकते। त्याग की झूठी धारणाओं में फँसे लोग स्वयं को अन्य लोगों से उच्च मानते हैं, परन्तु वास्तव में ऐसे लोग विषम स्वभाव के होते हैं। पागलखाने का पागल व्यक्ति भी स्वयं को पृथ्वी पर जन्मा विवेकतम व्यक्ति मानता है।

प्रकृति के विवेक को देखिए। वृक्ष के पास कौनसी सम्पत्ति है या धूप के पास? पृथ्वी के पास कौनसी सम्पत्ति है? वे मिथकों के साथ नहीं रहती

क्योंकि वे सत्य के साथ एकरूप हैं। परन्तु मनुष्य भ्रान्तियों (माया) में फँसा रहता है। उनके लिए भ्रान्ति की ये मृगतृष्णा जानबूझ कर बनाई गई है ताकि इसमें फँस कर वे स्वयं को और अपने जीवन को पूर्णज्ञान और पूर्ण प्रेम प्राप्त करने और इसका प्रसार करने के कुशल यन्त्र बनने के लिए विकसित करे।

भौतिक आवश्यकताओं से आगे मानव खोज सत्ता के क्षेत्र में बढ़ती है। राजनीतिक संस्थाओं का सृजन मानव की सत्ता की खोज के परिणाम स्वरूप हुआ। मानव के भय का कारण बनने वाली बाह्य शक्तियों को नियंत्रित करने के लिए इनका आरम्भ हुआ। परन्तु इन संस्थाओं को बनाने वाले लोगों के लिए ये आश्चर्य का कारण बन गई थीं। उनके द्वारा बनाई गई संस्थाएं ही सर्वत्र मानव की स्वतन्त्रता के लिए चुनौती बन गई हैं। पहले तो मनुष्य सत्ता के सामने झुकता है और सत्ताधीश की आज्ञा को मानता है, परन्तु स्वयं सत्ता प्राप्त करने के बाद वह चाहता है कि लोग उसका आदेश माने और उसके प्रति नतमस्तक रहें। सत्ता की लोलुपता में मनुष्य अपने ही साथी मनुष्यों पर प्रभुत्व जमाना चाहता है। वह सोचता है, कि अन्य लोगों पर शासन करने से उसे वह आनन्द प्राप्त हो जाएगा जिसे वह खोज रहा है। सत्ता की इस खोज ने ऐसी संस्थाओं का सृजन कर दिया है, जो यह नहीं समझतीं कि मानव प्रबन्धन की समस्या के समाधान के रूप में खोजे गये उनके उपाय अति उग्र हैं।

निःसंदेह इन संस्थाओं ने ऐसे वातावरण का सृजन कर दिया है, जो मानव को यह जानने की आज्ञा देता है कि पदार्थ और मानसिक शक्ति उसे क्या प्रदान कर सकते हैं। राजनीतिक सिद्धांतों ने ऐसे उग्र वादों (Isms) का सृजन कर दिया है, जो मानव की खोज का कोई आदर्श उत्तर नहीं देते। उदाहरण के रूप में वैज्ञानिक आविष्कारों के माध्यम से विज्ञान और भौतिक शक्ति के उपयोग से मानव एक ऐसे समाज की स्थापना करने के योग्य हो गया है, जो रोजमर्रा के जीवन की समस्याओं को समाप्त कर सके। परन्तु इन

आविष्कारों के माध्यम से मनुष्य ने जो शक्ति प्राप्त की है वह उसकी अपेक्षित आनन्द, आशिष और शांति नहीं ला सकी।

अपनी प्रत्यक्ष सफलता से मदमस्त लोग जो अपना और अपने आदर्शों का कोई अन्त नहीं समझते, उनका क्या किया जा सकता है? 'उन्हें किस प्रकार विश्वास दिलाया जाए कि अपने पूरे जीवन में जिस लक्ष्य की खोज में वे लगे हुए थे उसे प्राप्त करने में असफल हो गये हैं। इस जैट युग में चाहे मानव चाँद पर पहुँच चुका हो, परन्तु हम इस बात का अन्दाज़ा नहीं लगा पाए हैं कि हमारे आस-पास इतने कष्ट क्यों हैं! आईये, परिवर्तन के लिए ही सही, अपनी वस्तुस्थिति का सामना करते हुए, चुने हुए मार्ग से हट कर भिन्न मार्गों पर ध्यान केन्द्रित करने की अपनी गलतियों को समझते हुए, हम मानव की छानबीन करें। वास्तव में हम जीवन के लक्ष्य से किस प्रकार भटक गये हैं? विज्ञान के अध्ययन के माध्यम से मानव की खोज ने उसे पदार्थ तथा भौतिक क्षेत्र में विद्यमान शक्तियों को समझने के स्तर पर पहुँचा दिया है। अर्थशास्त्र और राजनीति-विज्ञान आदि समाजशास्त्रों ने मनुष्य की ये समझने में सहायता की है कि भिन्न वातावरणों में मनुष्य किस प्रकार आचरण करता है और मानव पर शासन किए जाने की आवश्यकता क्यों है। परन्तु विज्ञान क्षेत्र में उन्नत लोग उस सर्वोच्च शक्ति, परमात्मा के अस्तित्व को भूल गये। उन्होंने अचेतन के स्रोत का तो वर्णन किया परन्तु अचेतन (unconscious) की चेतावनियों पर ध्यान नहीं दिया।

अब मनुष्य का परमात्मा से वार्तालाप करने और ये समझने का समय आ गया है कि परमात्मा की शक्ति 'अचेतन' के आशिष स्वरूप जो थोड़ा बहुत ज्ञान उन्हें प्राप्त हुआ है वह तो परमेश्वरी ज्ञान सागर की एक झलक मात्र है।

मनोविज्ञान (Psychology) के मस्तिष्क-विज्ञान में भी महान आविष्कार हुए हैं। परिणामस्वरूप प्राप्त हुए ज्ञान ने मनुष्य को विश्वस्त कर

दिया है कि हम तथ्यों की वस्तुस्थिति की ही व्याख्या कर सकते हैं, उनके अस्तित्व या घटित होने के कारणों की व्याख्या हम नहीं कर सकते। उदाहरण के रूप में ये कहा जा सकता है कि पृथ्वी पर चुम्बकीय शक्ति कार्यरत है परन्तु इसके कार्यरत होने का कारण मनुष्य नहीं दे सकता।

ये बात स्पष्ट है, कि मानव में सुव्यवस्थित होने की इच्छा है, परन्तु उसमें दूसरों को नष्ट करने की इच्छा भी तो है, जो युद्धकाल में गतिशील हो उठती हैं। मनोविज्ञान के माध्यम से हम यह पता लगा सके हैं कि मानव केवल उसके 'पूर्वचेतन मस्तिष्क' से ही नहीं बना, जिसके माध्यम से वह अपनी इच्छा को बलपूर्वक दर्शाता है, परन्तु उसमें 'अवचेतन मस्तिष्क' भी समान रूप से बना है और यह आपातकालीन स्थिति में कार्यशील हो उठता है। हम यह नहीं कह सकते कि भिन्न परिस्थितियों में मनुष्य किस प्रकार प्रक्रिया करेगा। अस्तित्व की खोज में ज्ञान के जिन तथ्यों का उपयोग नहीं हुआ उन्हें भी वह नहीं पहचान सकता।

मानव की भावनात्मक खोज उसे परिवार के सृजन और परिवार के सदस्य के रूप में अपनी अभिव्यक्ति करने तक ले गई। परन्तु मानव के सीमित प्रेम को अति की सीमा तक ले जाना प्रेम की मृत्यु है। प्रेम पेड़ के रस की तरह है, जो पेड़ के सभी फूलों, फलों, तने और जड़ों को जीवन तथा ऊर्जा प्रदान करने के लिए उठता है। यह किसी विशेष फूल या पत्ते पर केन्द्रित नहीं हो जाता। यदि पेड़ का रस ऐसा करे तो पेड़ की मृत्यु निश्चित है, और जिस फूल पर यह रस रुक जाएगा, पेड़ के विनाश के साथ उस फूल की भी मृत्यु हो जाएगी।

आधुनिक काल में परिवार नामक संस्था पुरानी बात हो गई है। जो संस्था कभी एकसूत्र में बाँधे रखने का कार्य करती थी आज उसका नियन्त्रण मानव और उनके समाज पर समाप्त हो गया है। इस संस्था के पतन से सामाजिक अव्यवस्था के अतिरिक्त कुछ प्राप्त नहीं हुआ। मानव अति की

अवस्था में जीवित रहता है। उनके या तो अति स्व-केन्द्रित परिवार हैं या वे परिवारहीन हैं। अति की दिशा में की गई खोज झूले की तरह अस्थिर करने का कार्य करती है।

मानव को केवल इतना ही महसूस नहीं करना चाहिये कि केवल कोमल बच्चों की बढ़ोतरी के लिए ही परिवार अत्यन्त आवश्यक है, उसे यह भी समझना है कि परिवार एक बड़े समाज का भाग है तथा विश्व परिवार की सबसे बड़ी इकाई है। नन्हें बच्चों को परिवार का सुरक्षित आश्रय देने के स्थान पर मनुष्य ने अजीब, कामुक एवं स्वच्छन्द सम्बन्धों का सृजन कर लिया है जिनमें इन बच्चों का पालन-पोषण करना होता है। ये विकृत सम्बन्ध मानव द्वारा स्वच्छन्द समाज की स्थापना के फलस्वरूप हैं। इसका परिणाम स्पष्ट है कि बच्चों को माँ के प्रेम और पिता की सुरक्षा के अभाव में जन्म से ही असुरक्षा-भाव के साथ जीना पड़ता है। जो व्यस्क पारिवारिक जीवन को त्याग कर पितृत्व और मातृत्व की ज़िम्मेदारियों से भाग खड़े होते हैं वे अत्यन्त शुष्क व्यक्तित्व और स्वार्थी बन जाते हैं। वे ऐसे समूह बनाते हैं जिनमें निराशा बहुत बड़े परिमाण (स्तर) तक पहुँच जाती है। वे जोड़े जो बच्चे न उत्पन्न करने का निर्णय लेते हैं वे शून्य सम और सनकी बन जाते हैं क्योंकि उनके जीवन का कोई उद्देश्य ही नहीं रह जाता। बच्चे यदि माता-पिता के प्रेम के अवतरण होंगे तो माता-पिता के उत्क्रान्ति मार्ग की बाधा बनने वाले विनाशकारी गुण शांत हो सकते हैं। परन्तु इसकी अपेक्षा स्वतन्त्रता के नाम पर ये लोग ऐसे समूह बनाते हैं जिनमें निराशा ज्वालामुखी की शक्ति की तरह खड़ी हो जाती है। ऐसे लोग चाहे माता-पिता बनने की पुरानी परम्परा की या नियन्त्रणकारी सामाजिक नियमों की निंदा करते रहें, परन्तु समाज की बाह्य रूप रेखा को बदल कर वे कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते। ऐसे लोग अन्ततः कहीं के नहीं रह जाते।

हर परमेश्वरी अवतरण के अवतरित होने के बाद जीवन वृक्ष पर फूलों

की तरह से सच्चे धर्म प्रकट होते हैं। धर्म के पुष्प कुसुमित करने के लिए भिन्न कालों में अवतरण आए। मानव समूहों ने जीवन वृक्ष से इन खिले हुए फूलों को तोड़ लिया और शीघ्र ही ये फूल वैसे ही सूख गये, मुरझा गये और भद्दे हो गये जैसे किसी अन्य पुष्प को पौधे से तोड़ कर बटन के सुराख में लगाने पर होता है। ऐसे सभी समूह इस बात का दावा करते हैं कि वे ही अवतरण के संदेश के सच्चे व्याख्याकार (प्रतिपादक) हैं। इस प्रकार के सभी धर्म, इसके संस्थापक के संदेश को घिसे-पिटे रूप में समझाने में ही लगे रहे और अन्ततः परमात्मा के नाम पर परस्पर युद्ध करने वाले असंख्य पन्थों और दलों में बँट गये। इस प्रकार के तथाकथित धार्मिक लोगों द्वारा भूतकाल में किए गये आचरण तथा जिस प्रकार आज भी वे एकदूसरे को नष्ट करने में लगे हुए हैं, के विषय में पढ़ना कितना भयावह है! इन धर्मों के अनुयायी स्वयं को चुना हुआ, सुरक्षित और सर्वोच्च कहते हैं। वे अपने स्वयं के काल्पनिक स्वर्ग (Fool's Paradise) में जीते हैं। वे दुराग्रही हैं और उनकी श्रेष्ठता स्वप्रमाणित है। अपने मत को स्थापित करने के लिए वे अधार्मिक विधियों से अपने धर्म का प्रचार करना चाहते हैं। अत्यन्त विनम्रता पूर्वक हमें स्वीकार कर लेना चाहिए कि अपनी खोज में मानव न तो शांति और स्वतन्त्रता के समीप पहुँचा है और न ही उसने उस दिव्य जीवन की अनुभूति की है, जिसका वचन सभी धर्मों ने दिया है। अब सामूहिक आत्मसाक्षात्कार घटित होने का समय आ गया है, परन्तु बहुत से लोग इसे भी स्वीकार नहीं करना चाहते।

वृक्ष जब अपने साधनों से अधिक बढ़ने का प्रयत्न करता है, तो इसके लिए अपने जीवन का स्रोत खोजना आवश्यक हो जाता है, अन्यथा इसका नष्ट होना अवश्यम्भावी है। मानव सभ्यता ने अपनी बाह्य अभिव्यक्ति और अनुभव में इतनी उन्नति कर ली है कि यह पूरी तरह से असमानुपात (असंतुलन) में चली गई है। अपने स्वभाव की बहिर्मुखी अभिव्यक्ति पर स्वयं को पूरी तरह से केन्द्रित करने के बाद अब इसका अन्तर्मुखी होना या

जीवन के आन्तरिक स्वभाव की ओर मुड़ना आवश्यक हो गया है। जड़ों के ज्ञान का अध्ययन इसके लिए आवश्यक है। मानव सभ्यता यदि बने रहना चाहती है, तो आवश्यक है, कि यह जीवन के स्रोत का पता लगाए। इस संकट काल में सहजयोग का आविष्कार परमात्मा के सर्वव्यापक प्रेम का आशीर्वाद है। यह उस तकनीक का परमेश्वरी प्रतिपादन (व्याख्या) है, जो पूरी मानव जाति के उद्धार को कार्यान्वित करेगा, क्योंकि परम सृष्टा (ब्रह्माण्ड का सृजन करने वाले) कभी भी इस बात की आज्ञा नहीं देंगे कि उनके द्वारा सृजित कोई भी जीव उनकी सृष्टि को नष्ट कर दे।

सहजयोग स्वतः उद्धार (Spontaneous Salvation) की तकनीक है। यह प्रकृति से सम्बन्धित है और साक्षात परमात्मा इसके साक्षी हैं। मानव के सृजन और उसके उद्धार के लिए प्रकृति जिस जटिल तकनीक का उपयोग करती है उसका अध्ययन करने से पूर्व आईये हम अपनी सीमाओं को पहचान लें। एक बार जब हम समझ लेंगे कि मानवीय सीमाओं ने हमें इस दयनीय जीवन तक पहुँचा दिया है, तब आसानी से इस तथ्य को स्वीकार कर लेंगे कि अभी तक मनुष्य अपने उद्धार (मोक्ष) के लिए या तो कुछ भी नहीं कर सका है या बहुत ही कम। शायद उसे कभी यह महसूस ही नहीं हुआ कि इसके विषय में वह कुछ नहीं कर सकता। मानव ने अपना सृजन स्वयं नहीं किया और न ही वह अपना रूपरेखाकार है। अतः भविष्य को भी वही (परमात्मा) कार्यान्वित कर सकता है जिसने ये सारे कार्य किए हैं। तर्कबुद्धि से भी व्यक्ति ये समझ सकता है, कि मानवीय प्रयास जीवन की शक्तियों का पथप्रदर्शन नहीं कर सकते। मनुष्य एक बीज को भी अंकुरित नहीं कर सकता। बीज स्वतः अंकुरित हो सकता है। बीज को अंकुरित करने के लिए मनुष्य जो चाहे हरकतें करता रहे, वह जीवन का चमत्कार कार्यान्वित नहीं कर सकता। फिर भी जब आत्मसाक्षात्कार और उद्धार के स्वतः घटित होने के विषय में बात की जाती है तो मनुष्य के अहम् को एकदम से चुनौती मिलती है। उसमें

अचानक विरोध की एक लहर उठ खड़ी होती है और वह इस प्रकार के वक्तव्यों को स्वीकार नहीं कर पाता। मानव को इस सत्य के प्रति नतमस्तक होना होगा कि जो परमात्मा अरबों-अरब बीजों को अंकुरित करता है और करोड़ो-करोड़ मानवों का सृजन करता है, उसी को मानव उत्क्रान्ति की जीवन्त प्रक्रिया का चमत्कार करना होगा। यह एहसास (अनुभूति), नि:संदेह, करने में इतनी देर नहीं हो जानी चाहिए कि हम स्वयं को इतना नष्ट हुआ पायें कि हमारा उद्धार हो ही न सके।

हम अपने अन्दर एक अत्यन्त गंभीर मानवीय संकट का सामना कर रहे हैं, ऐसा संकट जो मनुष्य के असत्य से तादात्म्य और इसके विनाशकारी प्रभावों के दबाव में हर पल विस्फोटित होता रहता है। ज्योंही हम स्वीकार कर लेते हैं कि यह कार्य बिना किसी प्रयास के स्वत: होगा, हम वास्तव में परमात्मा की कृपा के योग्य सामान्य मानव बन जाते हैं। एक अन्य स्मरण योग्य महत्वपूर्ण बात ये है कि मानव की उत्क्रान्ति अत्यन्त सुगम होनी चाहिए-श्वास प्रक्रिया की तरह। सहज होना मानव को कठिन लगता है। अधिकतर मामलों में मनुष्य ने अनावश्यक रूप से बनावटी जटिलताएं खड़ी कर ली हैं। यदि उन्हें श्वास लेना सीखना पड़ता या हृदय को धड़काने की विधि सीखनी पड़ती तो मनुष्य लम्बे समय तक जीवित न रह पाता। मानव को यह समझना होगा कि जीवन के सभी महत्वपूर्ण कार्य अत्यन्त सुगम हैं।

इसी प्रकार, हमारी स्वत: उत्क्रान्ति का भी सुगमतम होना आवश्यक है। आप यदि चिकित्सा विशेषज्ञ नहीं हैं तो आप के लिए साँस लेने की कला अत्यन्त जटिल प्रक्रिया है। किसी डॉक्टर से भी यदि आप इस सहजकार्य के विषय में पूछें तो वह एक पूरी पुस्तक लिखकर भी इसकी पूरी तकनीक की व्याख्या नहीं कर पाएगा। आप यदि बिजली जलाना चाहते हैं तो एक बटन दबाने मात्र से ये कार्य हो जाता है। परन्तु इस सहजकार्य के पीछे छिपी यान्त्रिकी अत्यन्त जटिल है और कोई इन्जीनियर ही इसे समझ सकता है और

इसकी व्याख्या कर सकता है। श्वास लेने या बिजली का बटन दबाने की प्रक्रिया की तरह से हम इस जटिल यान्त्रिक गतिविधी के ज्ञान को भी अपना अधिकार मान कर स्वीकार कर लेते हैं। तो क्यों हम इस बात की चिंता करें कि मानव की उत्क्रान्ति (मोक्ष) किस प्रकार कार्यान्वित होती है?

आइए, पहले ज्योतिर्मय होने का अनुभव प्राप्त कर लें और फिर उस प्रकाश को कार्यान्वित करने वाली इस जटिल यान्त्रिकी को समझें। किसी मज़दूर की अपेक्षा एक बिजली इन्जीनियर को बिजली के विषय में समझाना कहीं आसान होगा। आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति, परमात्मा के इन्जीनियर, के हाथों में परमेश्वरी शक्ति बिना किसी प्रयास के विद्युत करंट की तरह निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। अत: केवल वही व्यक्ति इसका उपयोग कर सकता है और इसके साथ प्रयोग भी कर सकता है।

मानव की खोज को बंद गली के छोर तक ले जाया गया है। मात्र निराशा के बीच इस खोज ने विघटित (Disintegrated) उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं। प्रयास द्वारा व्यक्ति केवल परिधि तक पहुँच सकता है, परन्तु मूल मध्य-बिन्दु तक पहुँचना आवश्यक है। खोज प्रकृति में पदार्थ और उद्देश्य के बाह्य क्षेत्र में हुई है, परन्तु यह खोज पदार्थ के यथार्थ के विषय में होनी चाहिए थी। यह आत्मगत (subjective) मार्ग है। इसके सत्य स्वभाव, वास्तविक सार-तत्व और मूल को समझे बिना, मार्ग की खोज के लिए यह सारा प्रयास किया गया। परन्तु अब व्यक्ति को आत्मपरक (subjective) बनना होगा। केवल इसकी बातें करने से व्यक्ति आत्मपरक नहीं हो जाता। आत्मपरकता की अवस्था का आरम्भ मानवीय चेतना में करना होगा।

मानव के अन्दर यह अवस्था तब उसका अंग-प्रत्यंग बन जाती है जब वह अपने अन्दर परमात्मा को चैतन्य लहरियों के रूप में प्रवाहित होते हुए महसूस करता है। वह व्यक्ति खाली (खोखली) बाँसुरी बन जाता है जिसे सर्वशक्तिमान परमात्मा अपना मधुर संगीत बजाने के लिए चुनते हैं। कोई यदि

स्वयं को किसी देश का राष्ट्रपति कहने लगे तो वास्तव में वह राष्ट्रपति नहीं बन जाता। कोई यदि अपने लिए स्व-प्रदत्त उच्चपद का दावा करे और स्वयं इसे सत्य मान ले, तो केवल मूर्ख लोग ही ऐसे व्यक्ति के दावों की ओर ध्यान देंगे। आत्मपरकता (subjectivity) प्राप्त करना एक वास्तविक घटना है और जब यह घटित होती है तो मानव व्यक्तित्व से बाह्य खोज के पीछे दौड़ने की ललक समाप्त हो जाती है। व्यक्ति समझ जाता है कि वह अचेतन (परमेश्वरी प्रेम) के सागर में बूँदसम है। उसकी सुरक्षा स्वतः स्थापित हो जाती है और साक्षात सृष्टा (परमात्मा) उसकी ज़िम्मेदारियों को सम्भाल लेते हैं। उसका 'अहंकार' 'आदि अहंकार' की इच्छा में विलीन हो जाता है और ऐसा व्यक्ति सर्वशक्तिमान परमात्मा की लीला का मौनसाक्षी बन जाता है।

अध्याय 5

अवचेतन तथा सामूहिक अवचेतन

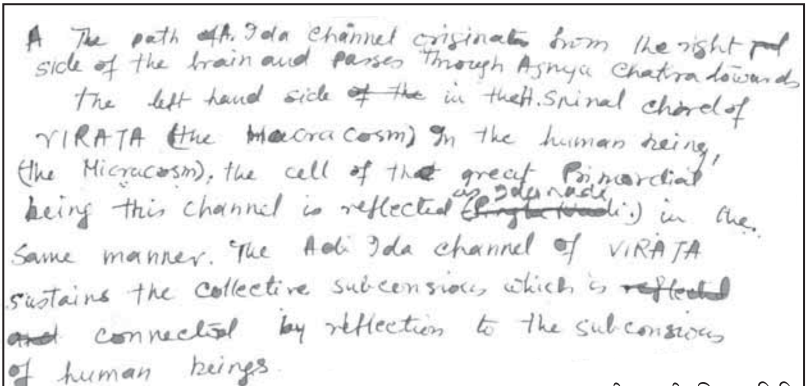
A The path of A. Ida channel originates from the right side of the brain and passes through Agnya Chakra towards the left hand side in the A. Spinal chord of VIRATA (the Macrocosm) In the human being, (the Microcosm), the cell of that great Primordial being this channel is reflected (as Ida nadi) in the same manner. The Adi Ida channel of VIRATA sustains the collective subconscious which is connected by reflection to the subconscious of human beings.

प.पू.श्रीमाताजी की हस्तलिपि

आदि इड़ानाड़ी के मार्ग का आरम्भ विराट (ब्रह्माण्ड या आदिपुरुष) के मस्तिष्क के दाईं ओर से होता है और 'आदि आज्ञा चक्र' से गुजरता हुआ यह रीढ़ के बाईं ओर को जाता है। यह वाहिका मानव में (लघु ब्रह्माण्ड और 'महा आदिपुरुष' की एक कोशिका) 'आदिनाड़ी' के रूप में प्रतिबिम्बित होती है।

'आदि ईड़ा नाड़ी' सामूहिक अवचेतन का पोषण करती है। सामूहिक अवचेतन मनुष्य के अवचेतन मस्तिष्क से प्रतिबिम्ब द्वारा जुड़ा हुआ है और यह विराट के भावना पक्ष की अभिव्यक्ति करता है। 'आदि पुरुष' के 'आदि हृदय', जहाँ भगवान शिव शासक देवता के रूप में निवास करते हैं, की देखभाल भी यही वाहिका करती है। श्रीआदिशक्ति के महाकाली पक्ष ने सर्वप्रथम 'आदि ईड़ानाड़ी' का सृजन किया था। यह जीव के अस्तित्व का प्रतिनिधित्व करती है।

इसे एक उपमा के माध्यम से समझा जा सकता है। मनुष्य में इच्छा

अपनी अभिव्यक्ति करने के लिए जागृत होती है। इच्छा जिस का अस्तित्व तो है परन्तु जो पूर्ण नहीं हुई है। अत: यह अदृश्य है। इसी प्रकार आदिशक्ति की सृजन की इच्छा की अभिव्यक्ति करने के लिए 'आदि ईड़ानाड़ी' का सृजन किया गया और उनकी इच्छा को मूर्तरूप (साकार) देने के लिए 'आदि पिंगला नाड़ी' का सृजन किया गया। इच्छा भावना है, इसका साकार रूप नहीं है। किसी कवि में ईड़ानाड़ी के माध्यम से भाव जागृत होते हैं, परन्तु अपनी कविता को मूर्त रूप वह महासरस्वती शक्ति की सहायता के माध्यम से देता है, जो दाई ओर की पिंगला नाड़ी है। सामूहिक अवचेतन इच्छाओं और भावनाओं का सृजन करता है और विराट के शरीर में यह 'आदि श्रीगणेश' से दृढ़तापूर्वक जुड़ा हुआ है। इसलिए अवचेतन से उठने वाली भावनाओं का पावनता से गहन सम्बन्ध है। 'आदि ईड़ानाड़ी' का एक अन्य कार्य सृजन में सृजित सभी मृततत्वों को एकत्र करना है। विकास प्रक्रिया से बाहर फेंके गये सभी तत्वों को यह एकत्र करती है। जैसे आकृति ५ में दर्शाया गया है, आदि ईड़ा नाड़ी की सात संकेन्द्रित (अभिमुखी) वाहिकाएं हैं जिनका मुख एक दूसरे की ओर है

मनुष्य की मृत्यु के पश्चात उसके शरीर से केवल पृथ्वी तत्व चला जाता है। बाकी का पूरा शरीर आत्मा के आस-पास बना रहता है। जीवात्मा के रूप में यह कम से कम पन्द्रह दिन उस वातावरण में बना रहता है, उसके बाद यह विराट के अवचतेन मस्तिष्क (परलोक) में चला जाता है। यह परलोक के भिन्न संस्तरों में आराम करता है। अच्छे लोगों से अच्छी जीवात्माएं बनती हैं, परन्तु मृत्यु होने पर क्योंकि कुण्डलिनी निकल जाती है और देवी-देवता लुप्त हो जाते हैं, कुण्डलिनी की सारी शक्तियाँ भी जीवात्मा के शरीर से बाहर चली जाती है। कुण्डलिनी जीवात्मा के निकट बनी रहती है और इसके कार्यों को देखती है, परन्तु जीवात्मा का नियन्त्रण करने की शक्ति उसमें नहीं होती। दुष्ट लोगों की (प्रेत) आत्माएं, अत: सभी प्रकार के अपराध करती है।

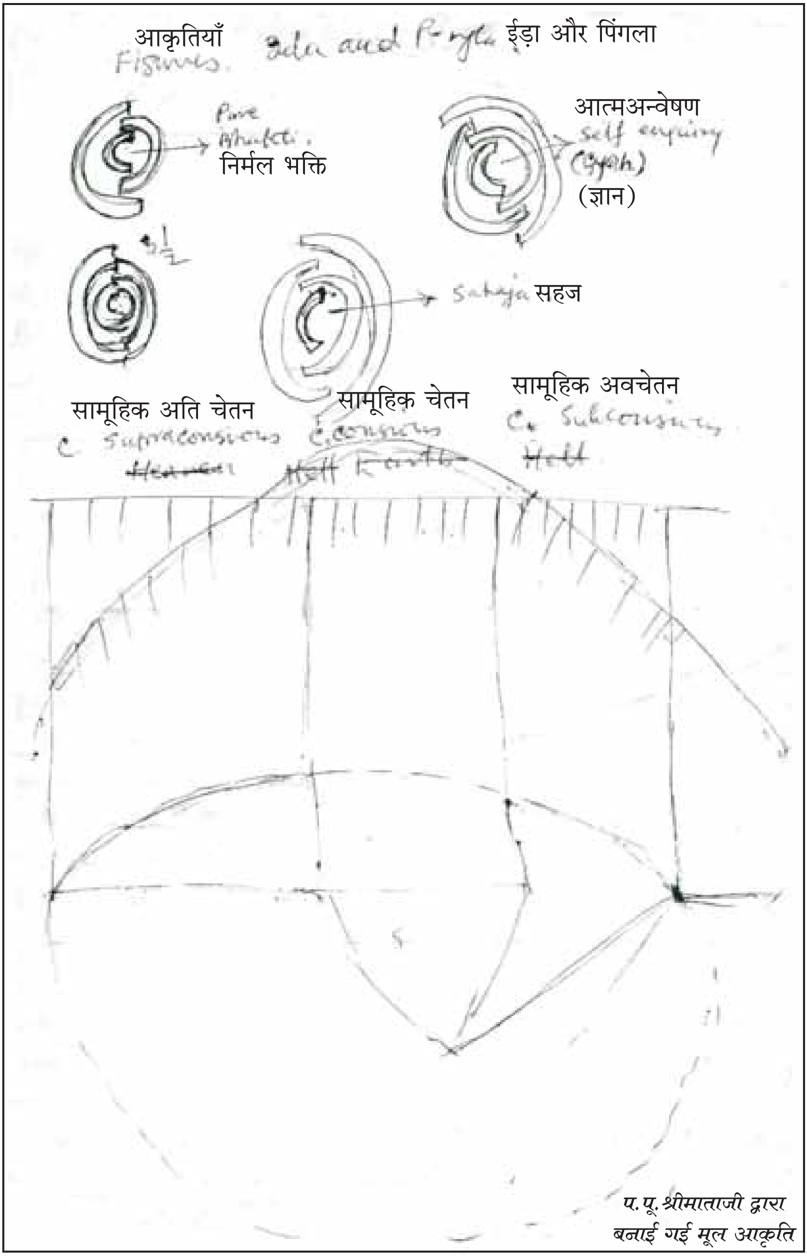
आकृतियाँ
ईड़ा और पिंगला
निर्मल भक्ति
आत्मअन्वेषण
(ज्ञान)
सहज
सामूहिक अति चेतन
सामूहिक चेतन
सामूहिक अवचेतन
प.पू. श्रीमाताजी द्वारा
बनाई गई मूल आकृति

आकृति ५

अवचेतन अवस्था में जीव विकास की ओर तो नहीं बढ़ सकता परन्तु अपराध करने के कारण पतित अवश्य हो सकता है। चहुँ ओर मंडराती हुई अधम प्रकार की आत्माओं या मानव के अन्दर प्रवेश करने वाली आत्माओं को उनकी कुण्डलिनी त्याग देती है क्योंकि मुरझाकर कुण्डलिनी प्रणव में विलय हो जाती है। इस प्रकार की भयानक आत्माएं विकास प्रक्रिया के नियन्त्रण में नहीं रहतीं। ये शैतानी आत्माएं होती हैं और पृथ्वी पर नारकीय लीला आरम्भ करती हैं। श्रीगणेश इन्हें सामूहिक अवचेतन में फेंक देते हैं और बाद में नरक में डाल देते हैं। परन्तु जो प्रेतात्माएं पूरी तरह से नष्ट नहीं होती वे बार-बार अवतरित होती हैं। सृजन चक्र के अन्त में आदि विष्णु के दसवें और अंतिम अवतरण कल्कि के कपाल से जब एकादश रुद्र (ग्यारह विध्वंस शक्तियाँ) प्रकट होंगे तो ये शैतानी शक्तियाँ पूर्णतः नष्ट हो जाएंगी।

अच्छी आत्माएं परलोक में रहती हैं। वे अपना आकार घटाती चली जाती हैं। शुक्राणु (sperm) बनने के लिए वे बहुत छोटी हो जाती हैं, जब कि जिस अण्ड (Ovum) में उन्हें समाहित होना होता है वह पृथ्वी तत्व द्वारा बनता है।

मोटे रूप से मनुष्यों को चार श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। इन श्रेणियों के विषय में कोई पक्का नियम नहीं हो सकता क्योंकि आत्माओं का पतन या उन्नति उनके कर्मानुसार होती है, उनकी पसन्द के अनुरूप, फिर भी, ये श्रेणियाँ इस प्रकार हैं :

दुष्ट मानव

राक्षस, अत्यन्त दुष्ट एवं भ्रष्ट लोग, अत्यन्त अहंकारी तथा अत्यन्त दबाए हुए (नियन्त्रित) लोग।

सामान्य मानव

सामान्य लोग, बहुत अच्छे लोग, सत्यसाधक, अबोध लोग, जागृत

लोग, धार्मिक लोग।

उच्च मानव

आत्मसाक्षत्कारी लोग, पूर्ण आत्मसाक्षात्कारी लोग, परमात्मसाक्षात्कारी लोग (God Realised Souls)

अवतरण

प्रथम श्रेणी के लोगों (दुष्टों) में अचेतन (परम चैतन्य) की कोई रुचि नहीं है। मृत्यु के बाद कुछ पशु भी मानव अण्डाणु में प्रवेश कर सकते हैं, परिणाम स्वरूप कुछ मनुष्य पशु स्वभाव (व्यक्तित्व) के साथ जन्म लेते हैं। यदि मानवीय वातावरण पशुओं के लिए अधिक अनुकूल हो तो वे (पशु) मानव रूप में जन्म लेते हैं। कलियुग के इस काल में पृथ्वी पर अत्यधिक जनसंख्या का कारण समझने के लिए यह तथ्य सहायक हो सकता है।

अचेतन को दूसरी श्रेणी के लोगों की बहुत चिन्ता है। इस क्षेत्र में इसका कार्य अत्यन्त संवेदनशील है। यह अण्डाणु और शुक्राणु के मिलन का इस प्रकार प्रबन्ध करता है, कि एक ही व्यक्तित्व के दो अर्धभाग पुनर्निमित होते हैं। विवाह प्रणाली यदि अच्छी हो, सामूहिक चेतन से स्वीकृत हो तो यह सम्भावित माता-पिता का चुनाव सुगम बना देती है। विवाह प्रणाली अचेतन (परम चैतन्य) की कार्यशैली की समझ (सूझबूझ) पर आधारित होनी चाहिए। इस प्रकार के विवाह ऐसा वातावरण प्रदान करते हैं जिसमें दूसरी श्रेणी के लोग (सामान्य) जन्म ले सकें। प्राय: वे अपने पूर्व शरीर और पूर्व आत्मा के साथ जन्म लेते हैं।

तीसरी श्रेणी की आत्माओं को अचेतन अत्यन्त महत्व देता है। इनके माता-पिता अत्यन्त सावधानी पूर्वक चुने जाते हैं। उनकी वही आत्मा और वही शरीर होता है, जो पिछले जन्म में था, परन्तु अपने जन्म और मृत्यु के समय का चुनाव वे स्वयं करते हैं। अधिकतर, वे तभी जन्म लेते हैं जब कोई

अवतरण अवतरित होता है।

अन्तिम श्रेणी, 'अवतरण', अपने माता-पिता तथा जन्म का स्थान और समय स्वयं निश्चित करते हैं। वे अपने शरीर के विशेष सूक्ष्म गुणांक के समानुपात के साथ जन्म लेते हैं (subtle co-efficient of proportions)। अपने जन्म और मृत्यु का चयन वे स्वयं करते हैं। वे परमात्मा के तत्वों (पक्षों) की अभिव्यक्ति होते हैं और उनकी अभिव्यक्ति के लिए वे विराट के चक्रों का वहन करते हैं, उन्हें सम्भालते हैं।

इस प्रकार आत्मा बार-बार जन्म लेती है। माँ के गर्भ में महासरस्वती शक्ति द्वारा सृजित शुक्राणु, जिसमें जीवात्मा (पंचतत्व-बिना पृथ्वी तत्व के) विद्यमान होती है, और आत्मा (महाकाली शक्ति द्वारा बनाए गए) अण्डाणु में प्रवेश करती है, जो पृथ्वी तत्व है, और इस प्रकार भ्रूण आकार धारण करता है। भ्रूण जब स्वयं को गर्भाशय की दीवार के साथ स्थापित कर लेता है, तो खोपड़ी के शिखर, तालु-अस्थि (ब्रह्मरन्ध्र) से कुण्डलिनी इसमें प्रवेश करती है। अब भ्रूण बढ़ने (विकसित) लगता है। वास्तव में कुण्डलिनी का प्रवेश ही इसे गर्भाशय की दीवार के साथ स्थापित करता है। सामान्य भाषा में हम जीवात्मा (soul) को आत्मा (spirit) कह सकते हैं। वास्तव में आत्मा तो सुप्त होती है तथा केवल आत्मसाक्षात्कार घटित होने के बाद ही अपने प्रकाश की अभिव्यक्ति करती है।

आत्मसाक्षात्कारी व्यक्तियों की मृत्यु के बाद उनकी कुण्डलिनी जीवात्मा में बनी रहती है, क्योंकि उनकी आत्मा कुण्डलिनी से समग्र (एकरूप) हो जाती है। इस श्रेणी में भी, यद्यपि, आत्माओं के तीन या चार भिन्न प्रकार हैं जो अपनी उपलब्धियों तथा उत्क्रान्ति के अनुरूप जन्म लेती हैं।

आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति वातावरण में कुण्डलिनी की गुंथी हुई, कुण्डलाकार आकृतियाँ देख सकता हैं। गोल आकृतियों के रूप में अच्छी-

बुरी आत्माओं को भी वे देख सकते हैं, इन आकृतियों के रंग इनकी गुणवत्ता की अभिव्यक्ति करते हैं। वे (आत्मसाक्षात्कारी) आत्माओं का शरीर नहीं देख पाते, परन्तु, स्वयं अवचेतन संस्तर से सम्बन्धित होने के कारण, भूतबाधित लोग इन आत्माओं के शरीर को देख सकते हैं।

परमात्म-साक्षात्कारी व्यक्ति जानते हैं कि कब किसी अवतरण का जन्म हुआ है, क्योंकि वे वातावरण में इसके चिह्न देख लेते हैं। इन महत्वपूर्ण अवतरणों के जन्म के विषय में सूचित करने के लिए अचेतन (परम चैतन्य) द्वारा उपयोग की जाने वाली बहुत सी विधियों में से एक विधि ये भी है।

जो आत्माएं अतृप्त होती हैं वे पृथ्वी के वातावरण में उतरकर उपयुक्त जीवित मनुष्यों के अन्दर प्रवेश करने से पहले वहाँ मंडराती रहती हैं। परपोषी शरीर (Host bodies) भिन्न प्रकार के होते हैं, जैसे वासना, शराब, नशीले पदार्थों के दास, या ऐसे दबे हुए लोग जो किसी अहंकारी की भावनाओं का आनन्द लेते हैं। किसी तानाशाह व्यक्ति के अन्दर एक या अधिक अहंकारी आत्माएं प्रवेश कर के उसे नियन्त्रित कर सकती हैं। ऐसा व्यक्ति जीवन भर युद्ध करने में लगा रह सकता है।

ऐसे कलाकार, डॉक्टर, संगीतज्ञ, कवि या राजनीतिज्ञ जो किसी जीवित व्यक्ति के माध्यम से अपनी प्रतिभा और अनुभवों को पुनः जीना चाहते हैं, वे जीवित लोगों को भूतबाधित करते हैं। वास्तविक मानवजीवन का बोझ सहन किए बिना वे मानव अस्तित्व का आनन्द उठाना चाहते हैं। सूक्ष्म होने के कारण ऐसी आत्माएं अपनी इच्छानुसार, जीवित व्यक्तिओं में प्रवेश कर सकती हैं या उन्हें त्याग सकती हैं।

विराट का सामूहिक अवचेतन (परलोक) ऐसा क्षेत्र है जहाँ अपनी इच्छाओं और कर्मों के अनुरूप मृत आत्माएं भिन्न संस्तरों में एकत्र की जाती हैं। हाल ही में मृत मनुष्यों की आत्माएं इस परलोक में अपने व्यक्तिगत साधना पथ के अनुरूप अपनी उत्क्रान्ति के विषय में निर्णय लेती हैं। परलोक

के देवता महादेव (श्रीशिव) उनके अगले जन्म के विषय में निर्णय करते हैं।

जिन लोगों ने उग्र प्रकार का जीवन व्यतीत किया होता है उन्हें प्रायः कर्मफल के प्रभाव के अनुसार अतिमय जीवन में डाल दिया जाता है। उदाहरण के रूप में, बहुत से बच्चों वाला कोई व्यक्ति यदि बच्चों से प्राप्त बुरे अनुभवों के साथ मृत्यु को प्राप्त होता है, तो हो सकता है, कि अगले जन्म में उसकी कोई सन्तान ही न हो, या किसी जीवन में अनिवार्य ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला व्यक्ति अगले जन्म में अत्यन्त व्यभिचारी (लम्पट) व्यक्ति बने। शनैः-शनैः ऐसी आत्माएं मध्य मार्ग की ओर बढ़ती हैं, परन्तु जो निरन्तर अति के कार्यों में संलग्न रहते हैं उन्हें विकास प्रक्रिया से बाहर फेंक दिया जाता है। बाद में वे नरक में वास करते हैं।

बाधित करने वाली आत्माओं का प्रवेश भिन्न प्रकार से घटित हो सकता है :

* कोई व्यक्ति जब किसी प्रकार के मानसिक या भावनात्मक दबाव में होता है तो उसके अहम् या प्रतिअहम् में आई छोटी सी दरार भी अनधिकार प्रवेश करने वाली आत्मा के प्रवेश के लिए गलियारा (मार्ग) प्रदान कर सकती है।

* किसी कुगुरु के प्रभाव में सूक्ष्म चक्रों, विशेष रूप से आज्ञा और नाभि चक्र, पर ध्यान केन्द्रित करने वाले विभ्रान्त (भटके हुए) व्यक्ति के माध्यम से भूतबाधित करने वाली ये आत्माएं प्रवेश कर सकती हैं। ये दोनों केन्द्र अति संवेदनशील हैं और व्यक्ति यदि भ्रूमध्य (भृकुटी) बिंदु पर ध्यान केन्द्रित करता है या सभी प्रकार के अनधिकृत उपायों से नाभि क्षेत्र को उत्तेजित करता है, तो ये चक्र भूतबाधा के प्रति भयानक रूप से दुर्बल हो जाते हैं। इसी कारण, भारतीय महिलाएं अपने मस्तक को कुमकुम के लाल रंग से ढके रखती हैं।

* सबसे बुरी भूतबाधा तब आती है जब अपने शिष्य को नियन्त्रित

करने के लिए कोई कुगुरु उसमें मृत आत्मा डाल दे। कुछ ऐसे तान्त्रिक और मान्त्रिक भी हैं जो वशीकृत आत्माएं अन्य लोगों में डाल सकते हैं।

सामान्य रूप से अपने से दुर्बल आत्मा को नियन्त्रित करने वाली कोई भी आत्मा व्यक्ति को भूतबाधित कर सकती है। मनोवैज्ञानिक और मनश्चिकित्सक अनजाने में सहर्ष स्वेच्छा से प्रस्तुत मृत आत्माओं की शक्ति का उपयोग करते हैं। ये लोग प्रेतात्माओं के प्रवेश की इस अन्तिम विधि के अच्छे उदाहरण हैं।

सम्मोहन विद्या में लगे लोग सम्भवत: ये नहीं जानते कि वे सामूहिक अवचेतन के सम्पर्क में हैं और उनकी पहुँच बहुत सी जीवात्माओं या प्रेतात्माओं तक है। सम्मोहन की अवस्था में सम्मोहित व्यक्ति पर एक या बहुत सी आत्माएं नियन्त्रण कर सकती हैं। ये आत्माएं उस व्यक्ति के चित् का निर्देशन करती हैं और इसे चेतन अवस्था से खींच कर अवचेतन अवस्था में ले आती हैं। व्यक्ति का चित् पहले वर्तमान जीवन के बीते समय में जाता है और उसका मस्तिष्क अपने बचपन का पुनर्अनुभव करता है। यही कारण है, कि सम्मोहित अवस्था में रोगी पहले माँ के गर्भ की गरमाहट और सुरक्षा को महसूस करता है। ज्यों ज्यों अवचेतन चेतनमस्तिष्क की कार्यशैली पर नियन्त्रण करता है, मृत आत्मा के प्रभाव में पूरा चेतन मस्तिष्क अवचेतन की ओर चला जाता है। सम्मोहक अपने विषय (रोगी) को नींद में सुला सकता है या उसे अपने भूतकाल या बचपन के अनुभवों में जाने का आदेश दे सकता है। धीरे-धीरे अवचेतन में कार्यरत मृत आत्मा इतनी शक्तिशाली हो जाती है, कि निस्सहाय होकर व्यक्ति पूर्णत: नियन्त्रित हो जाता है। चेतन मस्तिष्क का पूरा ध्यान अवचेतन अवस्था में चला जाता है। अब सम्मोहक मृत आत्मा को अपनी आज्ञा मानने का सुझाव दे सकता है। सुझाव मात्र से सम्मोहित व्यक्ति दो तिपाइयों (stools) पर रखे लकड़ी के तख्ते की तरह लम्बित पड़ा रहता है। अन्य लोग सम्मोहित व्यक्ति के लकड़ी के तख्ते की तरह दिखाई

पड़ने वाले शरीर को आश्रय देने वाली आत्मा को नहीं देख सकते। सम्मोहित व्यक्ति के शरीर में यदि काँटा (Fork) चुभाया जाए तब भी उसे दर्द महसूस नहीं होगा क्योंकि उसका चेतन मस्तिष्क तो सोया हुआ है। उसका पूर्ण व्यक्तित्व मृत आत्मा से एकरूप हो जाता है और सम्मोहक ऐसे व्यक्ति को उसकी अपनी (सम्मोहक की) इच्छाओं की पूर्ति करने के लिए भी कह सकता है।

सम्मोहक लोगों को बालसम निर्भरता और पूर्ण आज्ञापालन की अवस्था तक सम्मोहित कर सकता है। सम्मोहित व्यक्ति के मस्तिष्क की पूर्वचिंताओं, मनोग्रन्थिओं और उसके भय एवं व्यसनों (आदतों) के विषय में जानकारी प्राप्त करना भी सम्भव है। मृत आत्माएं स्वभाव से अतिसूक्ष्म होती हैं। उनके शरीर वैसे ही होते हैं जैसे मानव रूप में जीवित होते हुए थे, अन्तर केवल इतना होता है कि उनके शरीरों को जीवित मनुष्य न तो देख सकते हैं न स्पर्श कर सकते हैं।

अवचेतन से जुड़े हुए भूतबाधित लोग जैसे अतीन्द्रीयदर्शी (clairvoyants), मनोविज्ञान आत्मिकी (Psychics), या माध्यम (Mediums) ही उन्हें अतिस्पष्ट रूप से देख सकते हैं। अधिकतर मामलों में अकस्मात मृत्यु प्राप्त व्यक्तियों या जिन लोगों ने हाल ही में आत्महत्या की हो, की आत्माएं सम्मोहक व्यक्तियों की सहायता करती हैं।

अतिसंवेदीज्ञान बोध (Extra sensory perception-ESP) वास्तव में अतिरिक्त व्यक्तित्व (मृत आत्माओं की) शक्तियाँ (Extra personality powers) हैं। ये अत्यन्त भयानक शक्तियाँ हैं क्योंकि आत्माएं जब आत्मसंवेदीज्ञान बोध (ESP) की अभिव्यक्ति करती हैं तो मेज़बान को इसका पता भी नहीं होता, चाहे सम्मोहक अनुपस्थित ही क्यों न हो। युद्ध करते हुए सिपाही को युद्ध के बीच में अचानक आघात लग सकता है। ऐसी परिस्थितिओं में किसी मृत डॉक्टर की आत्मा उसमें प्रवेश कर सकती है। यह

मृत डॉक्टर अपनी किसी कला को दिखाना चाहता है या उसका प्रदर्शन करना चाहता है या कोई अधूरा कार्य पूर्ण करना चाहता है। डॉक्टर की आत्मा का बोझ वहन करने के लिए वह किसी शारीरिक रूप से शक्तिशाली व्यक्ति को ही चुनेगा। युद्ध के मैदान में ऐसे अनगिनत उदाहरण हैं, जब बिना कोई चिकित्सा शिक्षा प्राप्त किए सामान्य सैनिकों ने लोगों के ऑपरेशन किए और उन्हें रोगमुक्त किया।

अतिसंवेदी ज्ञान बोध (ESP) वाले कुछ लोगों का जन्म इन आत्माओं के साथ होता है, परन्तु स्नायविक तनाव की अवस्था में उनमें से अधिकतर भूतबाधित हो जाते हैं। ऐसे लोग भी अपने आसपास आत्माओं की उपस्थिति को महसूस कर सकते हैं क्योंकि वे भी अवचेतन क्षेत्र में रहते हैं। उनमें से कुछ ऐसी आत्माओं की पकड़ में आ सकते हैं जो उनके कान में फुसफुसाकर सूचना दे दे (कर्णपिशाच)। इन पिशाच आत्माओं के माध्यम से ये व्यक्ति भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं की भविष्यवाणी कर सकते हैं या भूतकाल की घटनाओं के विषय में बता सकते हैं। ये बिल्कुल अनजान लोगों के नाम और पते बता सकते हैं, उनके सम्बन्धों, राजनीतिक और सामाजिक संस्थाओं के विषय में भी बता सकते हैं। ऐसे व्यक्ति की बीमारिओं के इलाज के लिए वे औषधियाँ भी सुझा सकते हैं। ऐसे अतिसंवेदनशील बोध (ESP) का अभ्यास करने वाले लोग ये सोचते हैं कि वे मस्तिष्क पढ़ने का कार्य करते हैं। इनमें से बहुत से स्वप्रमाणित मनोविज्ञानी बन कर अपनी जीविका कमाते हैं, बिना ये महसूस किए कि वे भूतबाधित हैं।

पूना में एक बार मैं एक प्रसिद्ध मान्त्रिक (मन्त्र द्वारा मृत आत्माओं को बुलाने वाला) से मिली। उसने मुझे आत्मसाक्षात्कार का आशीर्वाद देने के लिए कहा। उसने स्वीकार किया कि वह अन्य लोगों की ईड़ानाड़ी को जागृत करने का कार्य करता है और इस कार्य से उसने बहुत धन कमाया था। जनता के लोग उसे पूर्वजों के गढ़े या खोए हुए धन को खोजने के लिए नियुक्त करते

थे। बार-बार मैं उसे बताती रही कि यदि वह आत्मसाक्षात्कार चाहता है तो उसे अपनी इन सारी शक्तियों का त्याग करना होगा। उसने मुझे विश्वास दिलाया कि वह वास्तव में इनसे मुक्ति चाहता है। मैंने उसकी कुण्डलिनी उठाई, और ये पा कर वह हैरान रह गया कि आत्मसाक्षात्कार के बाद उसकी आत्मसंवेदी ज्ञानबोध की सारी शक्तियाँ वास्तव में चली गई थीं। उसने मन्त्र पढ़ कर देखा, परन्तु उसका कोई लाभ न हुआ। जो आत्माएं अब तक उसकी सहायता कर रही थीं वे हमेशा के लिए उसे छोड़ कर चली गई थी। अब तक उसकी सहायता करने वाली आत्माएं अब उसे सताने लगी थीं। इस प्रकार की प्रेत-आत्माओं का उपयोग करने वाले लोगों का प्राय: दयनीय अन्त (मृत्यु) होता है।

आज तक मुझे एक भी ऐसा आध्यात्मिक रोग-निवारक नहीं मिला है जो अपने कार्य में मृत आत्माओं का उपयोग नहीं करता। इस तरह के अधिकतर लोगों को, यदि कभी ये जान भी जाएं तो, बहुत-बहुत समय तक इन आत्माओं की उपस्थिति का पता ही नहीं होता। प्राय: वह पूर्णत: गुप्त (छिपी) रहती हैं और मेज़बान को इनका ज्ञान ही नहीं होता।

आँखों से प्रेम खिलवाड़ का आनन्द लेने वाले लोग दूसरे प्रकार की मृत आत्माओं के मेज़बान (Host) बन जाते हैं, ऐसी आत्माओं के जो अपने पिछले जीवन में या तो नपुंसक हों या अपने यौनजीवन से असंतुष्ट। ये हमेशा इसी प्रकार की दुर्बलताओं वाले लोगों के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति करती हैं। इनमें से सबसे बुरी आत्माएं आज्ञा चक्र के माध्यम से कार्य करती हैं, दूसरे व्यक्ति की आँखों में एकटक देख कर उसमें प्रवेश करने के लिए वे अपने मेज़बान की आँखों का उपयोग करती हैं। आधुनिक समाज प्रेम खिलवाड़ (flirting) को पापाचार नहीं मानता, परन्तु इस आदत से अधिक हानिकारक कोई और आदत नहीं है। प्रेम खिलवाड़ में लिप्त व्यक्ति की रुचि अन्य सभी प्रकार के आनन्दों में समाप्त हो जाती है। प्रेम खिलवाड़ के

आनन्द का भ्रामक सुख एक ऐसा संभ्रान्त तरीका है जिसके माध्यम से कुछ अत्यन्त भ्रष्ट आत्माओं की अभिव्यक्ति पृथ्वी पर होती है। इसके द्वारा वे मनुष्य के उच्च विलास विवेक को समूल नष्ट कर देती हैं। यह केवल प्रेम खिलवाड़ करने वाले व्यक्ति के लिए ही घातक नहीं है, यह बहुत सी असन्तुष्ट आत्माओं के मानव समाज में प्रवेश सरिता की वाहिका का कार्य भी करता है। किसी प्रेम खिलवाड़ करने वाले व्यक्ति, जिसने अपनी सम्मोहक एकटक दृष्टि पर स्वत: नियन्त्रण की योग्यता प्राप्त कर ली हो, के माध्यम से ये आत्माएं सामूहिक अवचेतन से भयावनी गति से प्रवेश करती हैं। वह अपनी दृष्टि को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति की ओर घुमाता है और प्रतिजाति (भिन्न लिंग) के व्यक्ति को लुभाने के नाम पर उनमें मृत आत्माएं वितरित करता है। सभी प्रलोभित व्यक्ति एक ही खेल खेलने लगते हैं और अनजाने में इन मृत आत्माओं के दास बन जाते हैं।

एक युवा महिला ने एक बार मेरे समक्ष स्वीकार किया कि उसने ये आदत एक पचास वर्ष की आयु के पुरुष से ली थी और अब यह उसके जीवन पर हावी हो गई है। बहुत से युवा लोग मुझसे पूछते हैं कि वे किस प्रकार इस गंदी बेकार की आदत से मुक्ति प्राप्त करें, जिसे वे विषाणुओं (Virus) की तरह से फैला रहे हैं। उन्हें लगता है कि इस दासत्व के कारण उनकी बहुत सी ऊर्जा नष्ट हो जाती है और ये आदत उन्हें यौन सुख के सच्चे आनन्द से वंचित करती है। जहाँ भी ये रोग फैल जाता है, समाज का ताना-बाना अत्यन्त बनावटी हो जाता है। इनाम के रूप में इस आदत के शिकार लोगों को नपुंसकता प्राप्त होती है और इससे एक दुष्चक्र (कुचक्र) आरम्भ होता है : महिलाएं अपने शरीर का प्रदर्शन करना चाहती है और प्रेम खिलवाड़ की इच्छा को बढ़ावा मिलता है। इतना ही नहीं, नपुंसकता के कारण यौन संतोष प्राप्त करने के लिए प्रेम खिलवाड़ों पर निर्भरता निरन्तर बढ़ती है।

मेरी जान पहचान की एक धनी महिला पुरुषसम दिखाई देने के लिए तरसती थी और वह किसी महिला से विवाह करना चाहती थी। वास्तव में वह किसी पुरुष आत्मा से भूतबाधित थी। इस मृत आत्मा से मुक्त होने पर, पुनः वह सामान्य महिला बन गई। कुछ आत्माएं थोड़े समय के लिए किसी में प्रवेश करती हैं और उस मेज़बान को अत्यन्त तुनकमिज़ाज (temperamental) व्यक्ति बना देती हैं।

कहा जाता है कि सम्मोहन शल्यक्रिया (ऑपरेशन) में होने वाले दर्द को सहन करने में सहायक होता है। सम्मोहन का कुछ आरामदायी प्रभाव हो सकता है क्योंकि सम्मोहित व्यक्ति के चेतन मस्तिष्क की गतिविधि पर किसी अन्य आत्मा का नियन्त्रण होता है। परन्तु यह अत्यन्त अल्पकालिक लाभ है। लम्बे समय में, एक या अधिक बाह्य या अनिमंत्रित आत्माओं (मेहमानों) को आश्रय देने के कारण रोगी अनुकम्पी नाड़ी प्रणाली की अत्यधिक क्रियाशीलता के अन्य लक्षणों के कारण कष्ट उठाता है। ये आत्माएं उस व्यक्ति के अनुकम्पी नाड़ी तन्त्र की ऊर्जा तथा साधनों को खर्च करती हैं और ऐसा व्यक्ति आत्मसाक्षात्कार प्राप्त नहीं कर सकता।

मानसिक शान्तिकरण के माध्यम से सम्मोहन शक्ति का दुरुपयोग जन सम्मोहन के लिए एक ही समय पर हज़ारों लोगों को नियन्त्रित करने के लिए किया जा सकता है। कुछ प्रतिभावान आसुरी लोग अपने प्रवचनों (भाषणों) के माध्यम से भी ये कार्य कर सकते हैं। थोड़े से लोगों को सम्मोहित करने की छल-योजना से आरम्भ कर के हज़ारों लोगों को सम्मोहित अवस्था में लाया जा सकता है। ये थोड़ी सी आत्माएं आने वाली आत्माओं के लिए आरम्भिक माध्यम का कार्य करती हैं। राजनीतिक धर्मान्धता, धार्मिक उन्माद और जनसामूहिक व्यवहार की तर्कहीन क्रूरता, प्रायः सामूहिक सम्मोहन की कला में निपुण एकमात्र शक्तिशाली व्यक्ति के स्वामित्व के परिणामस्वरूप होती है।

एक अन्य विचारधारा (पंचमकर) विलासिता में विश्वास करती है। उनका मानना है कि पाँच विलासिताओं में लिप्त होने से व्यक्ति आत्मसाक्षात्कार प्राप्त कर सकता है। इनका ये भी मानना है, कि इस विलासिता के माध्यम से सभी रोगों से मुक्ति पाई जा सकती है। ऐसी मान्यताएं, तथा ऐसे प्रयोग जिनमें व्यक्ति से अपने अवचेतन संस्कारों (बंधनों) की कै (उल्टी) करने की अपेक्षा की जाती है, ये पूर्णत: भ्रामक हैं। वास्तव में ऐसे सभी लोग अवचेतन हस्तियों (आत्माओं) के स्थायी दास बन चुके हैं। ऐसे स्व-प्रमाणित पावन लोगों को आत्मसाक्षात्कार दे पाना वस्तुत: असम्भव है। एक अन्य विचारधारा ये सुझाती है कि यदि आप अपनी दुर्बलताओं को दबाने का प्रयत्न करेंगे तो वे आप पर हावी हो जाएंगी। उनके अनुसार अपनी दुर्बलताओं का आनन्द लूटना ही उन्हें समाप्त करने का सर्वोत्तम उपाय है। परन्तु आपके कपड़े यदि गन्दे हो तो साफ़ करने के लिए क्या आप इन्हें गन्दगी में घसीटेंगे? अब वो समय आ गया है जब मनुष्य को ये समझ लेना चाहिए कि ये विनाश की ओर ले जाने वाला अधोमुखी मार्ग है। मानव जाति को यदि जीवित रहना है तो अवचेतन के नियन्त्रण से बचना होगा, इससे घृणा करनी होगी और इसकी निंदा करनी होगी।

ईसामसीह मृत आत्माओं का विरोध करने वाले पहले पथप्रदर्शक गुरु थे। पीड़ित लोगों (भूतबाधितों) के अन्दर से मृत आत्माओं को निकालकर उन्होंने सूअरों में डाल दिया जो जाकर समुद्र में गायब हो गये। परन्तु अधिकतर ईसाई राष्ट्रों का अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए अवचेतन मस्तिष्क के दुरुपयोग में व्यस्त होना आश्चर्यजनक है! कुछ प्राचीन लोगों ने तो प्रेतात्मवादी चर्चों और मृत गुरुओं के मंदिरों को स्थापित करने के लिए विशेष प्रयत्न किए हैं। भूतबाधित हो जाने पर उनमें से बहुत से लोग तो ये मानते हैं कि उन पर आदिशक्ति (Holy Ghost) की विशेष कृपा है। व्यक्ति को ये बात समझ लेनी चाहिए कि जब आदिशक्ति (Holy Ghost) की कृपा

वर्षा होती है तो व्यक्ति शांति, आनन्द और जीवन परिवर्तन की अनुभूति करता है। सत्य स्पष्ट दिखाई देता है क्योंकि सामूहिक चेतना के माध्यम से साधक दूसरे लोगों की अन्त: स्थिति को महसूस कर सकता है। निर्विचार अवस्था में साक्षी-भाव विकसित होता है।

मेरी जान-पहचान के एक धनी भारतीय पुरुष ने मुझे बताया कि वह एक कुगुरु के पास गया था। गुरु ने उसे एक हीरे की अंगूठी दी जिसे उसने हवा में से पकड़ा था। वह धनी व्यक्ति उस गुरु से बहुत प्रभावित हुआ और गुरु की तिजोरी के लिए उसने बहुत बड़ी राशि दान में दी। मैंने जब अपनी जान पहचान के उस वैभवशाली व्यक्ति से पूछा, कि उसके पास पहले हीरे की कितनी अंगूठियाँ हैं, तो उसने बताया कि उसे इनकी संख्या याद नहीं है। तब मैंने उससे पूछा, कि अपनी पसन्द के जौहरी से जब वह जितनी चाहे अंगूठियाँ खरीद सकता है, तो अंगूठी के लिए उसके पास जाने की क्या जरूरत थी? उसने उत्तर दिया, कि वह अपने गुरु को परमात्मा का श्रेष्ठ व्यक्ति समझता था। मैंने उसे बताया कि परमात्मा को बाज़ार से नहीं खरीदा जा सकता। मैंने पूछा कि गुरु यदि इतना ही उदार था तो वह भारत के गरीब लोगों के लिए अंगूठियाँ हवा से क्यों नहीं निकालता और देश की आर्थिक समस्याओं का समाधान क्यों नहीं करता! इस बिंदु पर धनी व्यक्ति की पत्नी फफक फफक कर रो पड़ी। उसने स्वीकार किया कि इस धर्म-गुरु के शिकंजे से मुक्त होने के लिए सहायता प्राप्त करने के लिए वह मेरे पास आना चाह रही थी। वास्तविक समस्या ये थी कि उसके पति को पता चल गया था कि घर से बहुत से रत्न गायब हैं और उसकी पत्नी ने स्वीकार किया कि उसके अन्दर कोई आत्मा है.....[†]

मैंने जब उस महिला से पूछा कि इन रत्नों को मैं क्यों स्वीकार करूं, किसी आध्यात्मिक व्यक्ति के लिए तो ये धूलसम हैं, तो मेरे प्रश्न से उसे आघात लगा। पढ़ी लिखी होने के कारण उसने सारा खेल समझ लिया था।

कुछ समय सहजयोग ध्यानधारणा करने के बाद उसे उस आत्मा से पूर्ण मुक्ति मिल गई। उसने मुझे बताया कि इस गुरु के बहुत से महिला शिष्यों के पतियों का बहुत छोटी आयु में हृदयाघात से देहांत हो गया था। उसके अपने पति को एक बार हृदयाघात हो चुका था। विधवा महिला शिष्यों ने अपनी सारी सम्पत्ति गुरुजी को दान कर दी थी और अब उसी के साथ उसके आश्रम में रहती थीं। वे उसकी सेवा, स्नान कराने और वस्त्र पहनाने में लगी हुई थीं। उस महिला ने ये भी बताया कि वह गुरु अच्छी व्हिस्की का बहुत शौकीन था। ऐसा व्यक्ति किस प्रकार अनुसरण योग्य आध्यात्मिक उदाहरण हो सकता है?

† श्रीमाताजी ने नई दिल्ली में २३ फरवरी १९७७ को यह पूरी कहानी सुनाई थी। ये इस प्रकार है : ये भद्र पुरुष मेरे पास हीरे की अंगूठी लेकर आया, 'देखो, मुझे हीरे की अंगूठी मिली है।' मैंने कहा, 'बहुत बढ़िया, अब आप को मुझसे क्या चाहिए! मेरे पास तो हीरे नहीं हैं।' उसने कहा, 'नहीं, श्रीमाताजी, मैं तो केवल सर्वश्रेष्ठ की याचना कर रहा हूँ।' मैंने कहा, 'तुमने ये अंगूठी क्यों ली? आप बाज़ार से अंगूठी खरीद सकते हैं, आपके पास कितनी अंगूठियाँ हैं?' उसने बताया, 'मेरे पास बहुत सी हैं।' क्या तुम परमात्मा को बाज़ार से खरीद सकते हो? वह तस्कर है, सभी कुछ करता है, परन्तु गुरुजी को कोई एतराज़ नहीं, गुरुजी स्वयं उसे अपने चरण स्पर्श करने के लिए बुलाते हैं। जब वह दो-तीन बोतलें विदेशी शराब गुरुजी को भेंट करता है तो गुरुजी बुरा नहीं मानते। और फिर वह माताजी के पास आता है। माताजी पूछती हैं, 'श्रीमन अब मेरे पास क्यों आए? मैं क्या करू!' उसने कहा, 'श्रीमाताजी, मेरी एक समस्या है!' मैंने कहा, 'क्या समस्या है?' 'मेरे बहुत से रत्न गायब हो रहे हैं!' 'तुम्हारी पत्नी कैसी है?' 'वह उसके प्रति पूरी तरह समर्पित है और जाकर वहाँ महीनों ठहरती है। उसे अपने पति की, बच्चों की या किसी और चीज़ की कोई चिंता नहीं है, पूरी तरह से गुरुजी के प्रति समर्पित है!' तो पत्नी को मेरे पास लाया गया। यह महिला तो पूरी तरह भूतबाधित है, 'हे परमात्मा:' मैंने कहा, 'अब मैं इसका क्या करूं? इससे क्या पूछूं?' तब मैंने उसका भूत निकाला, बहुत कुछ करके भूत निकाला। वह महिला-चिकित्सक है। मैंने उससे पूछा, 'तुम महिला डॉक्टर हो, तुम क्या पाने चली थी?' उसने कहा, 'मैं नहीं जानती, मेरे अन्दर छिपी हुई कोई आत्मा कहती है कि ये सारे रत्न पत्थर हैं, ये गुरुजी को दे दो, तुम्हारे लिए ये पत्थर है।' मैंने कहा, 'पागल औरत, ये यदि तुम्हारे लिए पत्थर हैं, विवाहित महिला के लिए ये रत्न यदि पत्थर हैं, तो स्वयं को सन्यासी कहने वाले गुरुजी के लिए तो धूलसम होने चाहिएं। उसे तुम ये रत्न पत्थर क्यों दे रही हो।' क्या तुमने इसके विषय में अपने पति को बताया है?' उसने कहा, 'नहीं, मैंने उसे कभी नहीं बताया। इसकी रिपोर्ट वह पुलिस में करने ही वाला था, जिससे वह गुरुजी कठिनाई में पड़ जाता। इस सब के बावजूद भी वह उसके पास जाती रही। पति को जब दो बार दिल का दौरा पड़ा तो उसके ईलाज के लिए वे मेरे पास आए। पति के रत्न गायब होते रहे परन्तु पत्नी गुरु के चंगुल से मुक्त नहीं हो पाई। लोग इतने भयंकर भूतबाधित हो जाते हैं और हज़ारों लोग ऐसे गुरुओं के पीछे दौड़ने लगते हैं, क्योंकि सम्मोहित करना अत्यन्त सुगम कार्य है।'

एक अन्य गुरु, जिसकी अब मृत्यु हो चुकी है, ने एक आन्दोलन आरम्भ किया था जो बहुत बढ़ा। उसने पतियों द्वारा उपेक्षित बहुत सी महिलाओं को एकत्रित करके अपने आश्रम (या हरम) में डाल लिया था। उसके शिष्य अविवाहित रहते थे परन्तु उनके समाज में स्वच्छन्द यौन सम्बन्धों को प्रोत्साहन दिया जाता था। एक अन्य पाखण्डी! तपस्या के नाम पर पुस्तक में लिखे सारे अपराध किए जा रहे हैं। आज हम लोग जितने पढ़े लिखे और बुद्धिमान हैं, हमारे लिए सच्चे गुरुओं और कुगुरुओं में अन्तर करना कठिन नहीं होना चाहिए। ये राक्षस अत्यन्त सूक्ष्म हैं और अंगूठियों, गले के हारों और तावीज़ों जैसी भौतिक वस्तुओं में वे अपना (नकारात्मक) चैतन्य डाल सकते हैं। इनमें से बहुत से गुरु अपने अनुयायिओं को खाने के लिए भभूत देते हैं या अपने फोटो से भभूत निकालते हैं। जहाँ तक मैं जानती हूँ ऐसा एक भी गुरु पावन भस्म नहीं देता। इसकी अपेक्षा श्मशान से एकत्र की हुई राख बाँटते हैं। जो शिष्य इस राख को खाता है वह राख के साथ उसके शरीर में प्रवेश करने वाली मृत आत्माओं से भूतबाधित हो जाता है, ये आत्माएं उसके पेट में घर बना लेती हैं। अतः इनके फलस्वरूप वह कैन्सर या गम्भीर मानसिक व्याधियों का शिकार हो जाता है।

ऐसे बहुत से चमत्कार करने वाले लोग हैं, मन्दबुद्धि होते हुए भी जिनमें बिना किसी गणना के गणित की समीकरणों को हल करने की योग्यता होती है। ये भी भूतबाधित लोग होते हैं। जीवन में असन्तुष्ट बहुत से प्रतिभाशाली लोग मृत्यु को प्राप्त होते हैं। उनकी मृतात्मा उस प्रतिभा का प्रदर्शन करना चाहती है। अतः यह किसी बच्चे में प्रवेश कर जाती है, प्रायः अपने ही परिवार के किसी बच्चे में। ऐसे बच्चे आरम्भ में मानसिक रूप से चाहे अत्यन्त सामान्य दिखाई दें, परन्तु आयु बढ़ने के साथ-साथ पता चलता है कि वे अविकसित मस्तिष्क हैं। ऐसे चमत्कार करने वाले लोगों को यदि अपनी प्रतिभा का खुला प्रदर्शन करने से रोक लिया जाए तो वे बच सकते हैं। वे यदि

प्रदर्शन बंद कर देते हैं तो उनमें घुसी भूत आत्मा की उनमें कोई रुचि नहीं रह जाएगी।

इस प्रकार के चमत्कार करने वाले कुछ बच्चों के माता-पिता उत्सुकतापूर्वक अपने बच्चों को आत्मासाक्षात्कार दिलवाने के लिए मेरे पास आते हैं। मैंने पाया कि वे भी मृत आत्माओं के समूहों से घिरे हुए हैं और समझ गई कि इनकी कुण्डलिनी उठाना कठिन होगा। ऐसा ही एक मामला एक महाबुद्धिमान व्यक्ति का था, मुझसे मिलने के बाद जिसने मेरे विषय में सुन्दर कविताएं लिखनी आरम्भ कर दी थीं। वह भी समान रूप से भूतबाधित था। उसके अन्दर घुसी हुई कविआत्मा को मैंने समझाया कि वह उस व्यक्ति को छोड़ दे, परन्तु उसने इसका विरोध किया। वह तर्क करने लगा कि पुनः जन्म लेकर पुरुष अवस्था तक विकसित होने में उसे बहुत समय लगेगा और तब तक वह मेरे (श्रीमाताजी) पूर्वजीवन के विषय में पद्य (कविता) में नहीं बना पाएगा। ये भी भय था कि स्वयं जन्म लेने तक कहीं वह मेरे पूर्वजीवन के विषय में भूल ही न जाए और ऐसी अवस्था में आत्मारूप सूक्ष्म अवस्था में रहते हुए जो कुछ भी वह जानता है वह समाप्त हो जाएगा। सहजयोग की कार्यशैली के माध्यम से, जैसे कैसे, कवि आत्मा को जाना पड़ा और उसके प्रस्थान के साथ-साथ ही उसके मेज़बान की सुन्दर कविता लिखने की प्रतिभा भी समाप्त हो गई। इस बात से वह आश्चर्यचकित था।

भारतीय दर्शनशास्त्र की प्राचीन पुस्तकों में अवचेतन की शक्तियों का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। इन्हें परलोक विद्या सिद्धि के नाम से जाना जाता है। बहुत सी भारतीय महान आत्माओं (गुरुओं) द्वारा सत्य साधकों को इन सिद्धियों के पीछे न दौड़ने की चेतावनियों के बावजूद भी, दुर्भाग्यवश, उनके अनुयायी अवचेतन स्वामित्व के जंगल में भटक गये हैं।

जंगलों तथा अगम्य पर्वतों की सुदूर गुफ़ाओं में रहने वाले कई महान सन्तों ने मुझे बताया कि अवचेतन की शक्तियों (सिद्धियों) ने उन्हें भी

प्रलोभित किया था। एक साधक तो एक दिन जब ध्यान में बैठा हुआ था, तो उसके ऊपर सौ-सौ और हज़ार-हज़ार के नोटों की वर्षा होने लगी। बाद में जब ये नोट अशर्फियों में बदल गये और उसके आस-पास इनका ढेर लग गया तब उसे समझ आई कि आसुरी शक्तियाँ उसे लुभाने का प्रयत्न कर रही हैं। ईसामसीह भी जब रेगिस्तान में तप कर रहे थे तो विश्व के साम्राज्य का प्रलोभन देकर शैतान ने उन्हें भी प्रलोभित करने का प्रयत्न किया था।

सभी परमेश्वरी अवतरणों ने कालीविद्या और इसकी आसुरी शक्तियों के खतरों के विषय में बार-बार स्पष्ट रूप से बताया है। आदिगुरु के अवतरण सिख मत के संस्थापक गुरुनानक ने मृत आत्माओं के खतरों के विषय में स्पष्ट बताया है। ये समझना अत्यन्त कठिन है कि पढ़े लिखे बुद्धिमान लोग भी इस मामले में सत्य-असत्य में अन्तर करने के लिए मस्तिष्क का उपयोग क्यों नहीं करते! धूर्त और पतित कुगुरु अबोध पाश्चात्य साधकों से उनका धन लूट कर ऐशोआराम से परिपूर्ण जीवन जीते हैं। ये गुरु पक्के चरित्रहीन हैं, फिर भी पश्चिमी साधक इनसे इतने मन्त्रमुग्ध और सम्मोहित हैं कि इनके कहने पर वे व्यभिचार के लिए भी तैयार रहते हैं। इन गुरुओं और गुरविओं को प्रसन्न करने के लिए दिन के उजाले में वे सभी प्रकार के अपराध करते हैं। मैं व्यक्तिगत रूप से एक उन्नीस वर्ष के लड़के को जानती हूँ जिसे ऐसे एक गुरु ने एक साठ वर्षीय वृद्ध महिला के साथ सोने का आदेश दिया था और उसने ऐसा किया। अत्यन्त रुग्ण और दुर्बल अवस्था में वह लड़का मेरे पास आया। एक अन्य व्यक्ति, जिसे मैं व्यक्तिगत रूप से जानती हूँ, एक युवा अमरीकन था जो मुझे खोजने के लिए भारत गया था। वहाँ तो वह मुझे न खोज पाया परन्तु बाद में मुझे लंदन में मिला। वह अत्यन्त बुद्धिमान युवा पुरुष था, जो एक प्रतिष्ठित अमरीकन विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर उपाधि के लिए पढ़ाई कर रहा था। उसने मुझे बताया कि किसप्रकार उसने ऐसे ही एक गुरु की ध्यान-कक्षाओं में प्रवेश लेकर आत्मविस्मृति (भाव-समाधि) (Trance)

की कला सीखी थी। अपने अत्यन्त धार्मिक पालन-पोषण के कारण उसे लगा कि ध्यानधारणा की उस विधि के माध्यम से उसका मस्तिष्क शांत होता है। मैंने उसे बताया कि ये शान्ति आत्मविस्मृत अवस्था में उसमें डाली गई आत्मा पर सारी ज़िम्मेदारिओं को परिवर्तित करने के कारण आती है। आत्मविस्मृति (भाव-समाधि) की अवस्था में स्थित किसी व्यक्ति का परीक्षण यदि कोई डॉक्टर करे तो वो जान जाएगा कि अनुकम्पी क्रियाशीलता की गति धीमी पड़ गई है क्योंकि उस व्यक्ति के अहम् को किसी अन्य आत्मा ने सम्भाल लिया है। यह पूर्ण दासत्व के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। आत्मविस्मृति से जब वह युवा बाहर आया तो अपने अन्दर उसे अपने माता-पिता, निकट सम्बन्धियों या जो भी उसके सामने आए, की हत्या करने की प्रेरणा प्राप्त हुई। इस भावना ने, स्वाभाविक रूप से, उसे बहुत अधिक अशांत कर दिया और वह आश्चर्य करने लगा कि वह किस प्रकार की ध्यानधारणा करने लगा है। उसने इस प्रकार के सभी भयानक विचारों से मस्तिष्क को हटाने का प्रयत्न किया, परन्तु इनके स्थान पर उसे लगा कि उसमें आत्महत्या के विचार आने लगे हैं। सोचने लगा कि वह वास्तव में कितना अधम व्यक्ति है, कि उसे इतने भयंकर विचार आने लगे हैं। इस प्रकार के विचारों के फलस्वरूप होने वाली कुण्ठा इतनी भयंकर थी कि उसने वास्तव में चार बार आत्महत्या करने का प्रयत्न किया, परन्तु हर बार उसके माता-पिता ने उसे बचा लिया। जब मैंने उससे बातचीत की तो पाया, कि भाव-समाधि में जाने के लिए इस गुरु ने उसे एकशब्द का मन्त्र दिया था। ये शब्द था 'श्रिंग', जिसका अर्थ होता है 'पर्वत शिखर'। ये शब्द एक अत्यन्त प्राचीन गुरु का नाम भी था।

पहले तो मैं इस बात को नहीं समझ सकी कि इतना महान गुरु, आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति, अवचेतन की शक्तियों, भूतविद्या में क्यों रुचि रखेगा? मैंने उस युवा व्यक्ति से कहा कि वह मेरे सामने भाव-समाधि में उतरे

और तुरन्त देख पाई कि वह एक डरावनी शक्ल सूरत वाली आत्मा से भूतबाधित था। इस का आकार एकश्रिंगीय अश्व जैसा था जिसके सिर के मध्य में एक मुड़ा हुआ सींग था। यह अत्यन्त शैतानी आत्मा थी। तब मुझे याद आया कि संस्कृत शब्द 'श्रींग' का अर्थ सींग होता है। इस आत्मा को उस लड़के से अलग करना कठिन कार्य था। मैंने उस आत्मा को धमकाया और पूछा कि वह कौन था। उसने मुझे बताया कि वह उस गुरु का एक मुख्य दास था, उस ध्यान गुरु का, जो वास्तव में एक शैतानी अवतरण था। आगे उसने मुझे बताया कि उसका स्वामी एक राक्षस था और उसके पूर्वजन्म में साक्षात श्रीआदिशक्ति ने उसका वध किया था। इस श्रिंग-आत्मा ने बताया कि इस सुन्दर देश अमरीका में यह लड़का और इस जैसे बहुत से अन्य लोग इसी प्रकार भूतबाधित हैं। उनकी भर्ती का उद्देश्य उत्क्रान्ति प्राप्त करने के लिए जन्म ले रहे संतों को नष्ट करना था। उस आत्मा ने मुझे ये भी बताया कि सभी शैतानी आत्माओं का मानव मनस में प्रवेश कर पाना सम्भव नहीं है। सभी राक्षसों ने यह परिवर्तन शक्ति प्राप्त नहीं की है, अत: उन्हें अपने नियन्त्रण में अधिक मानव आत्माओं की आवश्यकता है। इस गुरु द्वारा नियन्त्रित की गई अधिकतर आत्माएं शैतानी शक्तियाँ थी। उसका लक्ष्य जीवित मनुष्यों को नियन्त्रित करने का था ताकि मृत्यु होने पर वे भी दास आत्माएं बन जाएं। उसने ये भी कहा कि राज्य की सहायता के माध्यम से यह अवचेतन आक्रमण अधिक प्रभावशाली ढंग से लाया जाएगा तथा भविष्यवाणी की कि पूरे पाश्चात्य संसार में अपराधीकरण महामारी का रूप धारण कर लेगा। बहुत शक्तिशाली शैतानी शक्तियाँ जन्म ले चुकी हैं और अन्य लोगों को इसी मार्ग पर प्रलोभित करने के लिए कार्य कर रही हैं।

बाद में धीरे-धीरे मैंने उस युवा व्यक्ति को बताया कि मैंने क्या आविष्कार किया है। उसे गहरा आघात लगा। इस गुरु ने अपने सभी शिष्यों को एकमन्त्र दिया था जिसे गुप्त रखा जाना था। लोगों को बताया गया था कि

किसी अन्य को बताए जाने पर ये मन्त्र प्रभावहीन हो जाएगा। उस युवा पुरुष ने पता लगाया था कि सिद्धान्त रूप से चार नाम मन्त्रों के रूप में दिए जाते थे : 'ऐं', 'रीं', 'क्लीं' और 'श्रिंग'। अपने मन्त्र का वास्तविक अर्थ जानकर उसने अपने आप को छला हुआ पाया। उसने बताया कि कैसे हज़ारों युवा अमरीकन इस कुगुरु के अनुयायी हैं जो ध्यान की इस तकनीक की दीक्षा देने के लिए उनसे सैंकड़ों डालर बटोरता है और इसके उच्च पाठ्यक्रम के लिए उनसे हज़ारों डालर लेता है। पश्चिम में वैभवशाली युवाओं के अहम् को बढ़ावा देकर उन्हें आकर्षित करना इस सुप्रसिद्ध गुरु की कार्यशैली है। सहज, भोले-भाले पुरुष और महिलाएं वैज्ञानिक शब्दों और शोध शब्दावली से परिपूर्ण उसके प्रवचनों से आकर्षित होते और बहुत ऊँची कीमत पर भूत आत्माएं खरीद कर पतन को प्राप्त होते। दुर्भाग्यवश केवल सत्यसाधक ही काली विद्या के गुरुओं के जाल में फँसते हैं। जिन लोगों की उत्क्रान्ति में रुचि ही नहीं है वो इन दुष्ट प्रतिभाशाली गुरुओं के चंगुल से बच जाते हैं।

अत: इस आधुनिक युग में सुपात्र सत्यसाधकों को ही अवचेतन स्वामित्व की भ्रामक विधियों से हानि पहुँचती है। इन असत्य सौदों को बेचने वाले लोगों से, जो स्वयं को धार्मिक बताते हैं परन्तु वास्तव में राक्षसी व्यापार करते हैं, सावधान रहना चाहिए। केवल आत्मसाक्षात्कार की अनुभूति प्राप्त करने के बाद, चैतन्य चेतना के माध्यम से सामूहिक चेतना के साम्राज्य में ही आप अन्य लोगों से समग्र होने (सामूहिक समग्रता) की शक्ति को महसूस कर सकते हैं। विवेकशून्य खोज पर अपनी बुद्धि और ऊर्जा को नष्ट न करें। इस प्रकार के अनुभवों में फँसकर आप अपने व्यक्तित्व का अंत कर लेते हैं और न केवल इसी जीवन में परन्तु आगामी बहुत से जीवनों में भी इन आत्माओं के नियन्त्रण में फँस जाते हैं।

ये लोग (आत्माएं) आप को तब तक नहीं छोड़ेंगे जब तक आपको नरक लोक में नहीं फेंक दिया जाता। जैन धर्मग्रन्थों में नरक का स्पष्ट वर्णन

किया गया है। इसके बहुत से भिन्न स्तर हैं और प्रथम स्तर व्यक्ति के अवचेतन मस्तिष्क में डाली गई शैतानी आत्मा पर निर्भर करता है। आत्महत्या के बारे में सोचने वाले लोगों को भी ये समझ लेना होगा कि जीवन से दूर भागने से व्यक्ति इससे छुटकारा नहीं पा सकता। मृत्यु का कोई अस्तित्व नहीं है। किसी शैतानी भूतआत्मा के सम्मोहन में आत्महत्या करने से ये आत्माएं आपको अपने उद्देश्य के लिए उपयोग करेंगी और आगामी जीवन में आप पापोन्मुख व्यक्ति के रूप में पुनः जन्म लेंगे।

सहजयोग की कार्यशैली से बहुत से भूतबाधित और मानसिक समस्याओं के रोगियों का ईलाज हुआ है। ऐसा ही एक उदाहरण एक पूर्णतः चक्षुहीन महिला का है जो दिल्ली में मुझसे मिलने आई और मेरे पाँच मिनट के ईलाज के बाद उसे सभी कुछ दिखाई देने लगा। उसका पुलिस अधिकारी भाई हैरान था कि इतने लम्बे समय तक दृष्टिहीन रहने के बाद भी किस प्रकार मैं उस महिला की दृष्टि वापिस लाने में सहायता कर पाई। वास्तव में उसके आज्ञा चक्र, दृष्टि नाड़ियों और अन्ततः आँखों का नियन्त्रण करने वाले दृक स्वस्तिक (Optic Chiasma) पर स्थित सूक्ष्म चक्र पर एक आत्मा बैठी हुई थी। उस आत्मा के वहाँ से हटते ही वह महिला पुनः देखने लगी थी। बहुत से लोग जो आत्मसाक्षात्कारी नहीं होते वो भी झाड़-फूंक की शक्तियों-भूत भगाने की कला का दावा करते हैं। मेरे अनुभव के अनुसार ये लोग प्रायः एक आत्मा को भगाते हैं और उसके स्थान पर दूसरी डाल देते हैं। ऐसा शायद स्वतः हो जाता है। ये लोग अवचेतन स्तर से जुड़े होते हैं जहाँ ये एक आत्मा को निकलने के लिए तैयार या विवश करते हैं और उसके स्थान पर भूतबाधित व्यक्ति में दूसरी आत्मा डाल देते हैं। इस प्रकार वे उस व्यक्ति पर नियन्त्रण कर लेते हैं और वो सोचता है कि वह बाधा मुक्त हो गया है। ये लोग स्वयं को तान्त्रिक अर्थात् (रहस्यात्मक विधियों के ज्ञाता) और मान्त्रिक (आत्माओं का आह्वान करने के लिए उच्चारण किए जाने वाले मन्त्रों के

ज्ञाता) कहते हैं। वास्तविक रहस्यात्मक यन्त्रावली (तन्त्र) तो कुण्डलिनी है, जो इन स्वप्रमाणित गुरुओं के इस पर कार्य करने से जम जाती है, सुप्त अवस्था में चली जाती है। साधक के शरीर में विराजमान देवी-देवता सुप्त अवस्था में चले जाते हैं और बेचारा व्यक्ति शैतानी आत्माओं का शिकार बन जाता है। मान्त्रिक लोग मन्त्रों का उच्चारण करते हैं जिसके कारण भी देवी-देवता निद्रावस्था में चले जाते हैं। असुरक्षित अवस्था में ये मान्त्रिक लोग ऐसे लोगों में दुष्ट आत्माएं डाल सकते हैं। सभी तान्त्रिक और मान्त्रिक झूठे तर्क दे कर इन लोगों से धन एंठते हैं, अपने रोगियों को असाध्य हानि पहुँचाते हैं और अपनी पाप की कमाई से अत्यन्त पापमय जीवन व्यतीत करते हैं।

एक महिला मेरे पास आई। उसका पति उसमें किसी महिला गुरु द्वारा डाली गई आत्मा के कारण कष्ट उठा रहा था। महिला ने मुझे बताया कि वह इस गुरु के पास इसलिये गई थी क्योंकि उसका पति भयंकर शराबी हो गया था। गुरु ने उसके अन्दर से शराब पीने वाली आत्मा तो निकाल ली परन्तु एक और आत्मा उस पुरुष में डाल दी। इस आत्मा को शराब के स्थान पर जुए का बहुत आकर्षण था। वह महिला पुनः उस गुरु के पास गई और उसकी बहुत मोटी फ़ीस चुकाई। इस बार जुआ खेलने वाली आत्मा को निकाल कर एक ऐसी आत्मा उस पुरुष में डाल दी गई जिसे हिंसा और क्रूरता में आनन्द आता था। एक दिन उस आत्मा के कारण उस व्यक्ति ने चाकू लेकर उस महिला तथा अपनी माँ पर आक्रमण कर दिया। इससे वह बहुत घबरा गई और उस गुरु की सेवाओं के लिए उसे पैसा देना बन्द कर दिया। शीघ्र ही सारी आत्माएं उसके पति में लौट आईं और वह व्यक्ति बहुत बीमार हो गया। इन कष्ट देने वाली सभी आत्माओं से मैंने उसे मुक्त किया और जैसा मेरा स्वभाव है, इस कार्य के लिए, उससे कुछ भी नहीं लिया। वह महिला हैरान हो गई कि अपनी पति को रोगमुक्त कराने के लिए उसे कोई पैसा खर्च नहीं करना पड़ा था, जब कि उसे रोगी बनाने के लिए उसने हज़ारों रुपये खर्च किए थे। महिला गुरु

अत्यन्त धनवंती थी और अन्य लोगों के मूल्य पर वह जीवन के ऐशोआराम का आनन्द लेती थी। वह स्वच्छन्द, संभोगी जीवन बिताती थी तथा अत्यन्त चरित्रहीन व्यक्ति थी। उसके दुष्कर्मों के कारण बाद में पुलिस ने गिरफ्तार करके उसे जेल भेज दिया।

मानव विवेक से हमें समझ लेना चाहिए कि कोई भी वास्तविक धार्मिक व्यक्ति चरित्रहीन जीवन नहीं बिता सकता। पावनता, धर्म की अभिव्यक्ति है और अबोधिता, धर्म का सारतत्व। धूर्तता, स्वार्थपरता, क्रूरता, कामुकता और लालच जीवन की ऐसी अधम प्रवृत्तियाँ हैं जो किसी भी ईश्वरीय व्यक्ति (संत) को स्पर्श नहीं कर सकतीं। पावन हृदय में इन दुर्गुणों के लिए कोई स्थान नहीं होता। सच्चे संत झूठमूठ के गुरुओं से अत्यन्त भिन्न होते हैं और एक नैसर्गिक, प्रेममय और धार्मिक जीवन व्यतीत करते हैं। अपने ऐशोआराम के लिए कोई यदि धर्म के नाम पर पैसा बनाता है तो ऐसे व्यक्ति को पक्का शैतान मान लेना चाहिए।

बम्बई का एक धनी व्यक्ति अपने गुरु से मिल कर घर की ओर लौटते हुए कार दुर्घटना में मृत्यु को प्राप्त हो गया था। ये गुरु भी इन्हीं कपटी गुरुओं में से एक था, जो उस व्यक्ति का पूरा धन हरने में सफ़ल हो गया था। धनी व्यक्ति का कार ड्राइवर इस गुरु का अनुयायी था और बड़ी सावधानी से धूर्ततापूर्वक वह अपने स्वामी की मृत्यु का सूत्रधार बना। उस व्यक्ति की पत्नी भी उसी गुरु की समर्पित शिष्या थी। पति की मृत्यु पर उसे गहन आघात पहुँचा परन्तु समर्पित शिष्या होने के कारण वह इस धोखे को न देख पाई। इतनी सावधानी से उस व्यक्ति का कत्ल किया गया था कि पुलिस को भी कोई संदेह नहीं हुआ। विधवा महिला को बाद में पता चला कि उसके पति की सारी सम्पत्ति गिरवी पड़ी थी परन्तु उससे आए धन का कोई भी निशान न था। उस धन की एक-एक कौड़ी उस गुरु को पहुँच गई थी। ईसामसीह के हाथ में हंटर पकड़ कर महाजनों को मन्दिर से खदेड़ने का यही कारण था।

परमात्मा और साहूकार परस्पर विरोधी हैं। इस तथ्य को यदि ध्यान में रखें तो ये समझ लेना कठिन नहीं होगा कि अधिकतर धर्म समाज-अर्थशास्त्र-सभाओं (Socio-Economic Clubs) में परिवर्तित हो गये हैं और शैतान, पापी और कपटी लोग अधिकतर मतों तथा पन्थों का नेतृत्व कर रहे हैं। अपनी उद्देश्य पूर्ति के लिए वे तस्करी, व्यभिचार और सीधे हत्याओं के तरीके अपनाते हैं

मस्तिष्क के अत्यधिक बन्धन प्रतिअहं को बढ़ावा देने वाली ईड़ानाड़ी को उत्तेजित करते हैं। इसी प्रकार पिंगला नाड़ी को अति उत्तेजित करने से अहंकार को बढ़ावा मिलता है। अत्यधिक बन्धनग्रस्त अहं और प्रतिअहं तब टुकड़ों में चटक जाते हैं और चटकन से बनी रिक्ति सामूहिक अवचेतन या सामूहिक अतिचेतन क्षेत्र से अभिव्यक्त होने को उत्सुक आत्माओं को आकर्षित करती है।

तीसरी आँख कहलाने वाले आज्ञा चक्र के माध्यम से इन आत्माओं का प्रवेश होता है। भारतीय पारम्परिक महिलाएं इस केन्द्र को कुमकुम तिलक या बिंदी से ढके रखती हैं। बहुत से अंग्रेज बिंदी पर हँसते हैं और कई मूर्ख तो कुमकुम लगाने वाली भारतीय महिलाओं का मज़ाक भी उड़ाते हैं। कुमकुम तिलक आत्माओं के प्रवेश को रोकता है और आदिशक्ति का चिह्न भी है। यह कुँआरी मेरी का चिह्न भी है जिन्होंने अपना रक्त, अपना केवल बच्चा, मानव मात्र की रक्षा के लिए बलिदान कर दिया था। उन्होंने अपने पुत्र ईसामसीह के शरीर से बहते हुए अमूल्य रक्त का तिलक लगाया था। ईसामसीह ही इस सूक्ष्म केन्द्र, 'आज्ञा चक्र', के पहरेदार हैं और आत्माओं के आज्ञा चक्र में प्रवेश से रक्षा करते हैं।

आत्माएं नाभि केन्द्र, नाभि चक्र के माध्यम से भी प्रवेश कर सकती हैं। आज्ञा चक्र के अतिरिक्त अन्य सभी सूक्ष्म चक्र ढके हुए होते हैं। खाने के माध्यम से ईड़ा नाड़ी के रास्ते भी आत्माएं प्रवेश कर सकती हैं और व्यक्ति के

मस्तिष्क को नियन्त्रित करने के लिए प्रति-अहम् में स्थापित हो सकती हैं। खाना बनाने वाले व्यक्ति के शैतानी विचारों द्वारा भी खाना संदूषित हो सकता है। कुछ दुष्ट लोग ऐसे खाने का शत्रुओं को वश करने के लिए उपयोग करते हैं।

मेरी जान पहचान के एक प्रभावशाली व्यक्ति ने धमका कर वसूली करने वाले एक व्यक्ति के विषय में मुझे बताया। वह इतना सताया गया था कि उसने मान्त्रिक के पास जाकर वसूली करने वाले इस व्यक्ति पर जादू करने के लिए कहा। जबरदस्ती वसूली करने वाले उस व्यक्ति को हिचकी रोग हो गया और कुछ ही दिनों में उसकी मृत्यु हो गई। परन्तु उस प्रभावशाली व्यक्ति का भी सारा प्रभाव समाप्त हो गया और स्नायुरोग के कारण उसका शरीर निरन्तर काँपने लगा। जबरदस्ती वसूली करने वाला वह व्यक्ति अब भी उसे सता रहा था, कब्र के अन्दर से भी।

ईरान में इसफाहन (Isfahan) नामक स्थान के मेरे एक डॉक्टर शिष्य ने मुझे बताया कि उसने, अपने परिवार द्वारा चुनी एक महिला से विवाह करने से इन्कार कर दिया था। उस लड़की की माँ उस पर कुछ जादू करती थी जिसके कारण वह भूतबाधित हो गया। पक्षाघात हो जाने के कारण उसका शल्यचिकित्सा का कार्य समाप्त हो गया। जब वह मेरे पास आया तो अपना कम्पन न रोक पाया। परन्तु कुण्डलिनी जागृति और सहजयोग ध्यान-धारणा के माध्यम से अब वह पूर्णतः रोगमुक्त है।

अहम् या प्रतिअहम् में आत्माओं की ये बाधाएं स्थायी हो सकती हैं या अस्थाई। कई बार वे अपने मेज़बान में थोड़े समय के लिए प्रवेश करती हैं। अन्य आक्रामक आत्माओं के साथ वे स्थान परिवर्तित करती रहती हैं या अवचेतन संस्तर से और आत्माओं को निमन्त्रित करती हैं। किसी डॉक्टर की आत्मा, उदाहरण के रूप में, जो भूत आत्मा बनकर लोगों का ईलाज करती है, वह अन्य डॉक्टरों और नर्सों की आत्माओं को अपने कार्य में सहायता

करने के लिए निमन्त्रित कर सकती है। कई बार तो वे नियमित तिथियों और विशेष समय पर प्रकट होती हैं और प्रस्थान से पूर्व थोड़ा समय ही रुकती हैं।

आत्मा न केवल किसी ठोस पदार्थ में प्रवेश कर सकती है, सम्मोहन के माध्यम से वह स्वयं को किसी पारदर्शी वस्तु के पीछे भी छुपा सकती है। इस प्रकार कोई अपारदर्शी पदार्थ भी उनके हाथ में पारदर्शी दिखाई पड़ सकता है।

आत्माओं के भिन्न रंग होते हैं-गहरे काले रंग से लेकर धुएं सम या, यदि वो अहंकारी हैं तो, सुनहरी छींटों के रंग की। इनकी तुलना में आत्मासाक्षात्कारी आत्माएं कभी स्वच्छ स्फ़ाटक जैसी और कभी सितारों की तरह चमकती हुई दिखाई देती हैं। उनकी शक्ल और शरीर वैसा ही दिखाई देता है जैसा उनकी जीवित अवस्था में था। यदि वे परलोक में रहती हैं तो इन आत्माओं का शरीर सूक्ष्म से सूक्ष्मतर हो जाता है। मानव भ्रूण के रूप में जब वो जन्म लेती हैं तो दो भिन्न व्यक्तित्वों में बंट जाती है, 'नर' और 'मादा' घटकों के रूप में। तब भोजन, वातावरण की धूल या शरीर के किसी अंग के माध्यम से वे अपने माता-पिता के शरीरों में प्रवेश करती हैं। अपने माता-पिता चुन लेने के बाद, पिता में वे शुक्राणु के रूप में और माता में अण्डाणु के रूप में विकसित होती हैं। इसीलिए कहा जाता है कि जोड़े स्वर्ग में बनते हैं।

कोई व्यक्ति यदि किसी व्यक्ति विशेष से विवाह करने के लिए अत्यन्त उत्सुक है, तो ये समझ लेना चाहिए, कि परमात्मा ने उस जोड़े को पति-पत्नी बनने के लिए चुना है। यह निर्णय अन्तिम है और इसमें हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। माता-पिता और अन्य लोग जब ऐसे विवाह के निर्णय को स्वीकार करते हैं तो सामूहिक स्वीकृति का ये कार्य वे मुख्यत: इस युग्म से भविष्य में उत्पन्न होने वाले बच्चों के जन्म लेने के लिए करते हैं। भारत में दुल्हा-दुल्हनों के जोड़े बनाने के लिए लोग जन्म कुण्डलियाँ मिलाते हैं। ज्योतिषी यदि आत्मसाक्षात्कारी हो तो यह मिलन सर्वोत्तम होता है। प्रेम का पूर्ण सम्मान करने वाले समाज द्वारा स्वीकृत, बहुत से लोगों की उपस्थिति में घटित होने

वाले विवाह के लिए ब्रह्माण्डीय अचेतन (सर्वव्याप्त परम चैतन्य) ज़िम्मेदार होता है। ऐसे विवाहों पर इतना अद्वितीय आमोद-प्रमोद और आनन्द होता है कि लोगों के मन में उनकी मधुर स्मृतियाँ बहुत लम्बे समय तक बनी रहती हैं।

विवाह करने को इच्छुक लोगों को ही बच्चे होने चाहिए। आसक्ति, अल्पकालिक वासना, या सौन्दर्य, वैभव और पद आदि जीवनसाथी चुनने के तुच्छतम कारण हैं। इन कारणों से हुए विवाह अन्ततः असफल हो जाते हैं और समस्याओं से परिपूर्ण बच्चों के जन्म का कारण बनते हैं। पाश्चात्य जोड़ों में स्वच्छन्द सम्भोग का बाहुल्य एवं पारस्परिक अविश्वास परमेश्वरी योजना में हस्तक्षेप करता है। माता-पिता के अन्दर प्रवेश करने वाले मूल नर और मादा अर्धभाग अन्य जीवात्माओं के अर्धभागों में मिश्रित हो जाते हैं और पूर्वयोजना के अनुसार पुनः अपने मूल अर्धभाग से नहीं मिल पाते। ऐसे मिलन से जन्में बच्चे विघटित व्यक्तित्व (disintegrated personalities) और हमेशा अशान्त होते हैं। वे स्वयं से भी समझौता नहीं कर पाते और कई बार दोहरा जीवन व्यतीत करते हैं। यह सब इतना तेज़ी से होता है कि प्रायः अधिकतर को ये ज्ञान ही नहीं होता कि, उनका दूसरा अर्धभाग क्या कर रहा है। वे बहुत अच्छे पति तो बन सकते हैं परन्तु अत्यन्त बुरे नागरिक होते हैं या इसके विपरीत।

भारत में भी कुण्डलिनी विहीन मृत आत्माओं....और दिव्य आत्माओं का उपयोग किया जाता है। ये लगभग एक ही समय भ्रूण में प्रवेश करती हैं। उनके प्रवेश होने पर भ्रूण की धड़कन को महसूस किया जा सकता है। आत्मसाक्षात्कारी लोग इन्हें (मृत आत्माओं) वातावरण में भी देख सकते हैं। इनके मानव आकार या रंग में नहीं, परन्तु केवल कुण्डलिनी और जीवात्मा से घिरी आत्मा के रूप में। कई बार कुण्डलिनी के गुच्छों और छल्लों के आकार में। ये जीवात्माएं (souls) आत्मा (spirit) को और कुण्डलिनी के शरीर को छोटे कुण्डलाकार ढांचे के रूप में वहन करती हैं। ये

चक्र हैं और कई लोगों को विविध प्रकार के प्रकाश की तरह दिखाई देते हैं। केवल आत्मा ही कुण्डलिनी से समग्र है और यही हृदय का प्रकाश है।

जीवात्मा (soul) के अर्थ के विषय में भलिभान्ति समझ लेना आवश्यक है। जीवात्मा (soul) सूक्ष्म शरीर है - मृत व्यक्ति का जल और पृथ्वी तत्व विहीन सूक्ष्म शरीर-जीवात्मा (पंचतत्वों) पाँच आवरणों से आच्छादित होता है। मृत्यु के समय इन पाँच आवरणों से दो विघटित हो जाते हैं। ये गुणसूत्र (Chromosomes) बनाते हैं। बाकी का शरीर सामूहिक अवचेतन में चला जाता है। जीवात्मा के कई रंग हो सकते हैं - काला, बैंगनी काला, हरा, हल्का नीला और पारदर्शी सुनहरा से सफ़ेद रंग तक। व्यक्ति की अतृप्त इच्छाओं के अनुसार ये शरीर (सूक्ष्म) उसके आसपास वातावरण में छितरा जाता है। जिन आत्माओं ने सभी भौतिक इच्छाओं को स्वत: त्याग दिया हो, वे बिना किसी प्रयत्न के (स्वत:) वायुमण्डल क्षेत्र तथा मानवीय दृष्टिक्षेत्र से परे महान ऊँचाईयों तक उठ सकती हैं। वे कुछ विशेष रहस्यों के विषय में सूचित करने के लिए कभी-कभी पृथ्वी पर उतर सकती हैं, यद्यपि ये अलौकिक छाया (दिव्य शरीर) के आकार में ही प्रकट होती हैं।

साधनापथ से भटके हुए सत्यसाधकों की देखभाल देवदूत या चिरंजीवी करते हैं। वे इनकी बच्चों की तरह रक्षा करते हैं। ये महागुरु 'अवधूत' कहलाते हैं और रक्षक देवदूत (Guardian Angels) के नाम से प्रसिद्ध हैं। अपने बच्चों की तरह ये हमारी रक्षा करते हैं। आत्मसाक्षात्कारियों की दुर्घटनाओं तथा दुष्ट लोगों से ये विशेषरूप से रक्षा करते हैं।

स्थूल भौतिक स्तर पर बायाँ अनुकम्पी नाड़ी तन्त्र ईड़ा नाड़ी की अभिव्यक्ति है। जब मस्तिष्क का कोई भी बन्धन हो तो उत्तेजित हो कर ईड़ा नाड़ी धड़कने लगती है तथा अवचेतन के माध्यम से इसे ग्रहण करती है। वास्तव में ईड़ा नाड़ी के माध्यम से यह ईश्वरी शक्ति का कार्य है, जो बन्धन (conditioning) को निष्प्रभावित करने के लिए विद्युतचुम्बकीय लहरियों

का सृजन करती है। बन्धन यदि बहुत गहन (भारी) हों तो विद्युत चुम्बकीय शक्तियाँ इन्हें पूरी तरह निष्प्रभावित नहीं कर पातीं।

बहुत अधिक पढ़ने वाले लोगों की तरह से भूतकाल में रहने वाले लोग भी गहन बन्धनग्रस्त हो सकते हैं। आत्मसाक्षात्कार प्राप्त किए बिना परमात्मा की पूजा करने वाले मूर्खों की तरह चापलूस लोग भी बहुत अधिक बन्धनग्रस्त होते हैं। स्वयं को जबरदस्ती नियन्त्रित करने वालों की तरह, बिना आत्मसाक्षात्कार प्राप्त किए, निरन्तर जप द्वारा बुद्धि या अहं को समर्पित करने वाले लोग भी गहन बन्धनों में फँस जाते हैं। बन्धन हमारे अवचेतन में एकत्र होते हैं और बचपन के आरम्भ से ही ऐसा घटित होने लगता है।

जीवन भर हम अपने भूतकाल के अनुभवों को अवचेतन में एकत्र करते रहते हैं। पिंगला और ईड़ानाड़ियाँ सूक्ष्म चक्रों पर परस्पर जुड़ी हुई हैं (आकृति ६)। दोनों वाहिकाओं के माध्यम से देवी-देवता अहं और प्रतिअहं के बन्धनों की अन्त:प्रेरणा प्राप्त करते हैं और उत्तर में चैतन्य लहरियाँ या सृजनात्मक शक्ति प्रदान कर के प्रतिक्रिया करते हैं। ये लहरियाँ प्रणव के रूप में प्रवाहित की जाती हैं, जो पूर्वग्रन्थि तन्तु (शक्ति केन्द्र) (pre-ganglionic fibers) के माध्यम से हर ग्रन्थिका (ganglion) को जाता है और बाद में अवयव (अंग) में आधारित (स्थित) पश्चाद्-ग्रन्थि-तन्तुओं (post-ganglionic fibers) में। अत: जहाँ भी शक्ति की आवश्यकता होती है वहाँ अधिक विद्युत चुम्बकीय शक्ति प्रवाहित होती हैं। दायाँ और बायाँ अनुकम्पी नाड़ी तन्त्र क्रमश: अहं और प्रति अहं द्वारा उत्तेजित होते हैं। ये पिंगला और ईड़ा नाड़ी की शक्तियों पर कार्य करते हैं। आपात अवस्था में, अशक्त पिंगला और ईड़ा वाहिकाओं को शक्ति प्रदान करने के लिए देवी-देवता अधिक प्रणव प्रवाहित करते हैं। निम्न आकृति ६ में इन दोनों नाड़ियों की कार्यशैली को दर्शाया गया है :-

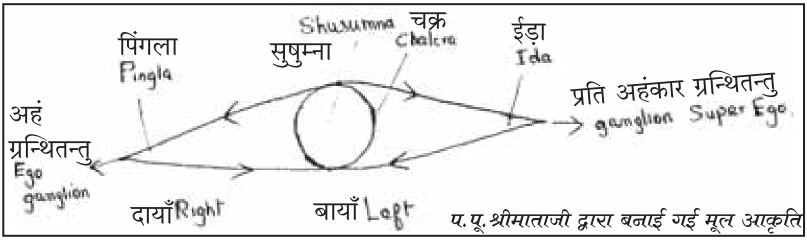

आकृति ६

कार्य विधि के विषय में तथा एड्रीनॅलिन (गुर्दाग्रन्थि के लिए आवश्यक हार्मोन) सृजन के लिए ग्रन्थि तन्तु (ganglion fibers) में विद्युत चुम्बकीय प्रेरणा उत्पन्न करने का आदेश चक्र के शासक देवी-देवताओं से लेने के लिए ईड़ा और पिंगला नाड़ियाँ सूक्ष्म चक्रों के पास से गुजरती हैं। ये दोनों वाहिकाएं परस्पर इतनी निर्भर हैं और एक-दूसरे को इतना प्रभावित करती हैं कि ऐसा प्रतीत होता है मानो दोनों मिल कर शारीरिक और मानसिक उत्तेजना के लिए कार्य कर रही हों। बहुत अधिक क्रियाशीलता ईश्वरी शक्ति को थका कर दीवालिएपन की स्थिति उत्पन्न कर देती है।

बाईं ओर, चेतना को कुण्ठित करने वाली कोई भी गतिविधि आलसी वृत्ति, नशा सेवन या बन्धनों के कारण होती है या फिर काली विद्या द्वारा ईड़ानाड़ी को उत्तेजित करने की कला में कुशल दुष्टों द्वारा जानबूझ कर किसी व्यक्ति में नकारात्मक शक्तियाँ डाल देने के कारण। मृत आत्माएं डाल कर बनावटी रूप से उत्तेजित किए जाने पर पिंगला नाड़ी की दिव्य शक्ति अत्यन्त तेज़ी से क्षीण होने लगती है। आकृति में हम देख सकते हैं कि पिंगला और ईड़ा, दोनों नाड़ियाँ चक्रों के पास से गुज़रती हैं।

श्रोणीय केन्द्र का नियन्त्रण करने वाला मूलाधार चक्र यौन गतिविधियों का भी नियन्त्रण करता है। दोनों वाहिकाएं, इस प्रकार, कामभावना (sex) से दृढ़ता पूर्वक जुड़ी हुई है। प्राचीन हठयोग या किसी अन्य ऐसे मार्ग का जो अनैसर्गिक ब्रह्मचर्य के मार्ग का दृष्टिकोण स्वीकार करने पर विवश करता हो,

का अनुसरण करने वाले बनावटी उदासीनता और सन्यास के नाम पर नैसर्गिक यौन जीवन से भागने का प्रयत्न करते हैं। तापस (उदासीन) दृष्टिकोण उनकी पिंगला नाड़ी को उत्तेजित करता है। ऐसे लोग प्रेम के प्रति जड़ और सम्वेदनहीन हो जाते हैं।

दूसरी ओर यौन गतिविधियों में बहुत अधिक लिप्त लोगों की ईड़ा नाड़ी उत्तेजित हो जाती है। यौन जीवन 'से' या 'की ओर' भागना एक जैसा है। इस प्रकार के कार्य कामवृत्ति को अनावश्यक महत्व देते हैं। कामभाव किसी भी प्रकार से ऊर्जा नहीं है। यह तो परमेश्वरी शक्ति 'प्रणव' की अभिव्यक्ति है, जो पलभर के लिए पिंगला या ईड़ा नाड़ी से या स्वयं कुण्डलिनी से स्पन्दित होती है-रिसती है। अन्य प्रकार की गतिविधियों में लिप्त हो जाने वाले लोगों की रुचि, स्वतः काम-भावना में समाप्त हो जाती है। हम कह सकते हैं कि वे परिष्कृत कामक्रियाशील हैं क्योंकि उनकी (गतिविधियों की) अभिव्यक्ति उच्च चक्रों पर होती है। उच्च लक्ष्यों का ये उलझाव सूक्ष्म अहं एवं शुष्क स्वभाव को जन्म देता है। इन सीधे या परिष्कृत उलझावों से मुक्ति पाना मूल समस्या है।

सहजयोग ही इसका समाधान है क्योंकि यह चित् को मध्य में, वर्तमान क्षण में रखता है। इस बिन्दु से व्यक्ति यौन गतिविधि को साक्षीरूप से देखता है, न इसमें उलझता है और न इससे भागता है। यौन आसक्ति यदि चित् को ईड़ा नाड़ी की ओर ले जाए तो व्यक्ति आँखों या वक्षस्थल (छातियों) के माध्यम से ही यौनानन्द उठाने लगता है। आँखों से प्रेम खिलवाड़ (flirting), हमने देखा है, आजकल आम बात है। कामुक साहित्य और पुस्तकें पढ़ कर भी व्यक्ति इसकी सुखानुभूति कर सकता है, परन्तु इस प्रकार की गतिविधियाँ विकृतियाँ हैं जो यौन-सम्बन्धों के वास्तविक सुख का महत्व कम करती हैं और अन्ततः व्यक्ति को नपुंसकता के कगार पर ला खड़ा करती हैं।

अध्याय 6

तन्त्रवाद

तन्त्र का अर्थ यदि यन्त्रावली को सम्भालना है और यन्त्र स्वयं कलपुर्जों का ढांचा है, तो तन्त्रवाद का वास्तविक अर्थ कुण्डलिनी योग होना चाहिए। कुण्डलिनी मानव चित्त का एकाकार परमात्मा से करवाने की कला (क्रियाविधि) है। सहज क्रिया द्वारा यह जागृत की जाती है और उठाई जाती है।

अवशिष्ट (residual) चेतना होने के कारण कुण्डलिनी जागृति बीज के अंकुरण सम है। इसे पावन अस्थि (sacral bone) में स्थापित किया गया है। बीज का अंकुरण केवल तभी घटित हो सकता है जब यह अंकुरित होने के लिए तैयार हो। केवल कोई सद्‌गुरु या सहजयोगी ही कुण्डलिनी को सुप्तावस्था से जगा सकता है-योगी स्वयं ज्योतित होता है या आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति और सहजयोगी ऐसा योगी है जिसे कुण्डलिनी जागृति की कला का ज्ञान है। अंकुरित करने और पोषण के लिए जिस प्रकार माली सिंचाई करता है, एक सद्‌गुरु या सहजयोगी भी अपने दिव्य व्यक्तित्व से प्रवाहित होने वाली चैतन्य लहरियों के जल से साधक को सींचता है।

हर मनुष्य की अपनी व्यक्तिगत कुण्डलिनी होती है, जो उसकी माँ है और वह उसका एकमात्र बेटा। सर्वव्यापी परमेश्वरी प्रेम का एक अंश होने के कारण, परमात्मा से अधिकृत केवल कोई सद्‌गुरु या आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति ही कुण्डलिनी का संचालन कर सकता है। उसे चलाने के लिए उस व्यक्ति का धर्मपरायण और दिव्य व्यक्तित्व होना आवश्यक है क्योंकि वह उस व्यक्ति के आध्यात्मिक गुणों को अन्तर्बोध द्वारा पहचानती है। केवल ऐसा ही व्यक्ति सभी लोगों की कुण्डलिनी को अच्छी तरह जानता है। वह एकदम से बता सकता है कि कुण्डलिनी पथ पर कहाँ बाधा है और अंगुलियों

से इसे उठा कर वह आत्मसाक्षात्कार दे सकता है। यह बात अच्छी तरह समझ ली जानी चाहिए कि ऐसे व्यक्ति का नैतिकता की मूर्ति होना आवश्यक है। ये तथाकथित तान्त्रिक इसके बिल्कुल विपरीत हैं।

जब कोई सद्गुरु या सहजयोगी कुण्डलिनी जागृत करता है तो साधक पर शरीर के अंगो का कम्पन या कोई अन्य पीड़ा की अनुभूति आदि, कोई बाह्य प्रभाव नहीं पड़ता। कुण्डलिनी जब उठती हैं तो साधक की रीढ़ पर इसे उठते हुए अपने चक्षुओं से देखा जा सकता है। किसी सूक्ष्म चक्र पर जब कुण्डलिनी रुकती है तब भी पावन अस्थि में, जहाँ यह निवास करती है, धड़कते हुए इसे स्पष्ट देखा जा सकता है। सारे चक्रों में से उठने के बाद ये सिर के शिखर पर ब्रह्मरन्ध्र का भेदन करती है और परमात्मा के प्रेम की सर्वव्यापी शक्ति से एकाकारिता स्थापित करती है। पनुर्जन्म देने की योग्यता वाला कोई भी व्यक्ति सच्चा तान्त्रिक है, क्योंकि वह यन्त्र (कुण्डलिनी) को अपने पावन दिव्य प्रेम की तकनीक (तन्त्र) से सम्भालता है।

आरम्भ से ही ये स्पष्ट रूप से समझ लिया जाना आवश्यक है कि तन्त्रवाद शब्द कुण्डलिनी जागृति के बिल्कुल विपरीत अर्थ को व्यक्त करने के लिए उपयोग हुआ है। इस शब्द ने उस विधि को प्रकट किया है जिसके द्वारा कुण्डलिनी से दुर्व्यवहार किया जाता है और अब इस दुष्ट विचारधारा को जनता के एक विशाल समूह ने स्वीकार कर लिया है। इस विधि के उपयोग से कुण्डलिनी जागृति के सारे सम्भव अवसरों को समाप्त कर दिया जाता है। फलस्वरूप बहुत से साधकों की आध्यात्मिक विकास प्रक्रिया का अन्त इसके आरम्भ में ही हो जाता है।

सात चक्रों में सबसे नीचे मूलाधार चक्र है। अबोधिता के प्रतीक भगवान गणेश वहाँ शासकदेवता के रूप में विराजमान हैं। सबसे नीचे का चक्र होने के कारण इसे कुण्डलिनी से भी काफ़ी नीचे और इसके ठीक सामने प्रोस्टेट ग्रन्थि में स्थापित किया गया है। यह महत्वपूर्ण चक्र रीढ़ की हड्डी से

बाहर स्थित है और यह श्रोणीय चक्र के चार उपचक्रों (पक्षों) को नियन्त्रित करता है। अतः यह मनुष्य में कामभावना का भी नियन्त्रण करता है। मूलाधार चक्र से श्रीगणेश अपनी माँ कुण्डलिनी की मर्यादाओं की रक्षा करते हैं। ये समझ लेना अत्यन्त महत्वपूर्ण होगा कि यौन बिंदु से कुण्डलिनी में कोई प्रवेश मार्ग नहीं है, क्योंकि इसे श्रीगणेश से काफ़ी उपर, मूलाधार नामक त्रिकोणाकार अस्थि में स्थापित किया गया है। अतः कुण्डलिनी जागृति और यौनगतिविधियों का परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है।

कोई व्यक्ति कुण्डलिनी जागृति के लिए यदि यौन गतिविधियों का पापमय तरीका अपनाता है तो श्रीगणेश क्रोधित हो जाते हैं और साधक के शरीर के अन्दर अपने क्रोध को भयानक गर्मी के रूप में प्रवाहित करते हैं। वास्तव में उनका क्रोध या तो बाएं या दाएं या एक साथ दोनों अनुकम्पी नाड़ी प्रणालियों को उत्तेजित करता है। ये दोनों प्रणालियाँ रीढ़ के बाहर स्थित हैं और रीढ़ के अन्दर गुज़रने वाली ईड़ा और पिंगला नाड़ियों की स्थूल अभिव्यक्ति हैं। अन्तिम चक्र-मूलाधार चक्र से जुड़े होने के कारण, जब श्रीगणेश क्रोधित होते हैं तो परा अनुकम्पी नाड़ी तन्त्र उत्तेजित हो जाता है और अतिगतिशीलता (overactivity) को व्यक्त करता है। पराअनुकम्पी नाड़ी तन्त्र मध्यसूक्ष्म वाहिका (सुषुम्ना नाड़ी) की स्थूल अभिव्यक्ति है और इसे साधक अपने प्रयत्नों से गतिशील नहीं कर सकता। साधक जब जब भी इसके लिए प्रयत्न करता है तो उसका चित् तुरन्त अनुकम्पी नाड़ीतन्त्र की ओर चला जाता है, पराअनुकम्पी की ओर कभी नहीं जाता।

इस प्रकार गलत ढंग से उत्तेजित किए गए साधकों पर श्रीगणेश के क्रोध का प्रभाव पड़ने के कारण उनमें से कुछ तो आत्मविस्मृति की अवस्था में चले जाते हैं, अनियन्त्रित रूप से उछलने या चिल्लाने लगते हैं या उन्हें भयानक तपन की अनुभूति होती है। कई साधकों के शरीर पर तो छाले पड़ जाते हैं, कुछ को इतना कष्ट होता है कि उन्हें लगता है, मानो ततैये डंक मार

रहे हों, या अत्यन्त पीड़ा के साथ आग उनके शरीर को निगल रही हो। ये सारे लक्षण ऐसे हैं जिनकी अनुभूति भयंकर कर्करोगी (कैन्सर) करते हैं, क्योंकि कर्करोग भी अनुकम्पी नाड़ी तन्त्र की अतिक्रियाशीलता के कारण होता है। ये सारे कष्ट केवल तभी होते हैं जब नौसिखिए या अनधिकृत लोग कुण्डलिनी जगाने का प्रयत्न करते हैं। ये पीड़ाएं श्रीगणेश के क्रोध को व्यक्त करती हैं, ये सच्ची कुण्डलिनी जागृति नहीं है। साधक की माँ होने के नाते कुण्डलिनी जन्म-जन्मांतरों से शांतिपूर्वक उसके स्वतः उत्क्रान्ति के इस शुभक्षण की प्रतीक्षा कर रही होती हैं। वास्तव में कुण्डलिनी कभी भी अपने बच्चे को कष्ट नहीं देंगी और जब तक उसे कोई सच्चा सद्गुरु या योगी नहीं मिल जाता ये कभी उठेंगी ही नहीं। केवल परमात्मा द्वारा चुने गये अधिकृत यन्त्र (व्यक्ति) ही परमात्मा की कृपा का शक्तिपात साधक पार करके उसे वास्तव में आशीर्वादित कर सकते हैं। रीढ़ में मध्य सूक्ष्मवाहिका, सुषुम्ना नाड़ी के माध्यम से कुण्डलिनी स्वतः उठती है और साधक को आत्मसाक्षात्कार प्रदान करती हैं।

भारत और पश्चिम में मेरे सहजयोग कार्य में लाखों लोगों ने कुण्डलिनी को उठते हुए देखा है और बिना किसी प्रयास के आत्मसाक्षात्कार प्राप्त किया है। अब तक किसी भी प्रकार के अनिष्ट या ऊपर वर्णित पीड़ा की कोई भी घटना घटित नहीं हुई है। इसके विपरीत कुण्डलिनी जागृति से कैन्सर, शक्कर रोग, श्वेतरक्तता (Leukemia) और एड्स जैसे असाध्य रोगों से पीड़ित हज़ारों लोग रोगमुक्त हुए हैं।

आत्मसाक्षात्कार के बाद लोग निर्विचार समाधि (निर्विचारिता) की अनुभूति करते हैं और उन्हें परमेश्वरी प्रेम के शीतल, सुखद अनुभव का आनन्द प्राप्त होता है। सामूहिक चेतना हो जाने के कारण सहजयोगी शनैः-शनैः चैतन्य लहरियों का कूटानुवाद (Decoding) करने लगते हैं और अपनी कुण्डलिनी का स्वामित्व प्राप्त करते हैं। बाद में उनमें कुण्डलिनी जागृति द्वारा

अन्य लोगों को आत्मसाक्षात्कार प्रदान करने की योग्यता विकसित हो जाती है। बहुत से सहजयोगियों ने स्वयं कैन्सर जैसे असाध्य रोग के हज़ारों पीड़ितों को ठीक किया है। रोगनिवारण सहजयोग का उपफल है, अन्तिम लक्ष्य नहीं। इसकी तुलना अनात्मसाक्षात्कारी लोगों की रोग ठीक करने वाली आध्यात्मिक चिकित्सा से नहीं की जानी चाहिए।

बहुत से लोग कुण्डलिनी जागृति के माध्यम से आत्मसाक्षात्कार देने का दावा करते हैं। मैं ऐसे बहुत से लोगों से मिली हूँ और उनके शिष्यों को भी अच्छी तरह समझा है। वे अपनी तकनीक को 'शक्तिपात भाव-समाधि' कहते हैं, यहाँ तक कि वे इसे सहजयोग भी कहते हैं, परन्तु वास्तव में उनसे कुण्डलिनी की जागृति नहीं होती। इसके विपरीत साधक का पूरा शरीर तप जाता है और वे उछलने और चिल्लाने लगते हैं। ऐसे कुछ ठग तो मूलाधार चक्र द्वारा यौनबिन्दु को उत्तेजित करके या आज्ञा चक्र पर कार्य करके दृक अन्त:स्थल (Optic Thalamus) के मध्य में स्थित तीसरी आँख को खोलने का दावा भी करते हैं। इस सूक्ष्म चक्र की खिड़की मस्तक के मध्य में स्थित है और ये तथाकथित तान्त्रिक इस चक्र के माध्यम से साधक के अहम् या प्रतिअहम् में मृत आत्माएं भी डाल सकते हैं।

जब वे ऐसा करते हैं तो साधक को थोड़ी देर के लिए चमक या प्रकाश बिंदु दिखाई देता है। इस प्रकार साधक के चित्त की ऊर्जा के धारा प्रवाह को तोड़कर (short circuiting) उसे अवचेतन क्षेत्र में डाल दिया जाता है और हो सकता है कि उसे भी किसी शराबी या नशेड़ी की तरह शान्ति की अनुभूति हो। वह सोचता है कि वह अपने आप में प्रसन्न है परन्तु इस प्रसन्नता का संचार वह किसी अन्य में नहीं कर सकता। उसकी मानवीय चेतना पशुचेतना के स्तर तक पतित हो जाती है और उसकी ज़िम्मेदारियाँ चेतन से अवचेतन मस्तिष्क पर चले जाने के कारण वह वास्तविकता से दूर भागता है। इस बिंदु पर आकर वह सोचना बंद कर देता है, परन्तु स्वयं में कोई अन्तर्परिवर्तन नहीं

ला पाता। ऐसे लोगों में से एक भी अपने अन्तर्निहित सुप्त आत्मा की वास्तविकता को नहीं जान पाता।

जागृत होने पर सच्ची आत्मभिव्यक्ति होती है और व्यक्ति आत्मसाक्षात्कार की शीतल चैतन्य लहरियों की अनुभूति करता है। चैतन्य लहरियाँ प्रवाहित होने लगती हैं, विशेष रूप से साधक की अंगुलियों से। ये परमेश्वरी प्रेम की शक्ति है, जो सोचती है, योजनाएं बनाती हैं, आयोजित करती हैं और प्रेम करती है। इस सर्वव्यापी शक्ति में प्रवेश करने के बाद साधक निर्विचार चेतना (समाधि) के क्षेत्र में प्रवेश करता है। चैतन्य लहरियों के कूटानुवाद (decoding) द्वारा व्यक्ति का पुनर्जन्म और विकास होता है।

साधक को आत्म-वास्तवीकरण (Self-actualization) की अवस्था को वास्तव में महसूस करना है और उसे आत्मसाक्षात्कार की व्यक्तिगत अनुभूति होना भी आवश्यक है।

सहजयोगी शान्त, स्वस्थ और विवेकशील हो जाता है। वह पूर्णतः विश्वस्त हो जाता है कि उसे वास्तविकता (सत्य) का ज्ञान है। इसका अर्थ ये है कि वह अपनी तथा अन्य साधकों की कुण्डलिनी की समस्याओं को समझाता है। अपनी अंगुलियों के सिरों पर शीतल या गर्म सम्वेदना द्वारा वह इन समस्याओं को स्वतः महसूस करता है। इस प्रकार अपनी अंगुलियों से वह बीमारियों, भावनात्मक समस्याओं या आध्यात्मिक बाधाओं तथा नौसिखिए गुरुओं और दुष्ट तान्त्रिकों द्वारा उत्पन्न की गई बाधाओं को पहचान सकता है। सहजयोग की मेरी शिक्षाओं के अनुसार उसे भिन्न परमेश्वरी संकेतों को समझने और बाधाओं को दूर करने का ज्ञान भी प्राप्त हो जाता है। ज्यों ज्यों वह अपनी आन्तरिक शान्ति की अवस्था को पहचानता है उसे आत्मतत्व और सर्वशक्तिमान परमात्मा के सिद्धांतों का ज्ञान भी उसकी चेतना में होने लगता है। शनैः-शनैः वह सर्वशक्तिमान परमात्मा की उपस्थिति को परमेश्वरी प्रेम की सर्वव्यापी शक्ति के निराकार रूप में वास्तव

में महसूस करने लगता है। वह चैतन्य लहरियों के प्रवाह को महसूस करता है और साक्षी भाव से उनकी कार्यशैली को देखता है। सहजयोग में व्यक्ति साक्षीस्वरूप रहते हुए मंच पर खेले जाने वाले नाटक के दर्शक की तरह संसार को देखता है।

आत्मसाक्षात्कार के मार्ग में गहन बाधाएं धूर्त तान्त्रिकों या स्वयंसाधक द्वारा मूर्ख विधियों को अपनाकर कुण्डलिनी और सूक्ष्म केन्द्रों को गलत ढंग से चलाने के प्रयास से आती हैं। किसी की कुण्डलिनी को हानि पहुँचाकर उनकी उत्क्रान्ति को खतरे में डालना सर्वशक्तिमान परमात्मा की दृष्टि में अधमतम अपराध है। इन अनधिकृत व्यक्तियों के सामने सिर झुकाने वाला व्यक्ति बाद में यदि सहयोग में आता है, तो उसे आत्मसाक्षात्कार देना अत्यन्त कठिन कार्य है। एक पाप के सिवाय परमात्मा सभी पापों को आसानी से क्षमा कर सकते हैं: परमात्मा की सृष्टि के सार के रूप में सृजित मानव होने के नाते हमें परमात्मा की योजनाओं का विरोध करने वाले परमात्मा विरोधी लोगों के सामने कभी सिर नहीं झुकाना चाहिए। अनजाने में भी यदि हम ऐसा करते हैं तब भी परमात्मा हमारे इस अपराध को आसानी से क्षमा नहीं करते। ऐसे लोग जब मेरे सामने आते हैं तो अनियन्त्रित ढंग से काँपने लगते हैं और उनसे इतनी तेज़ गर्मी निकलती है कि कोई भी आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति उसे महसूस कर सकता है। दिलचस्प बात तो ये है कि पागलखाने से आए पागल लोग भी मेरे सामने बिल्कुल इसी प्रकार का व्यवहार करते हैं, परन्तु आश्चर्य की बात है, तुलना में, उनसे कम गर्मी निकलती है।

तान्त्रिक और मान्त्रिक असंख्य साधकों को हानि पहुँचाने के लिए ज़िम्मेदार बने हैं। अधिकतर अपनी पूरी चेतना में उन्होंने ऐसा किया है। तन्त्रवाद युगों पुरानी शैली है जिसे बहुत से राक्षसों और तान्त्रिकों ने पुनर्अवतरित हो कर दुबारा प्रचलित कर दिया है। रावण, महिषासुर, मधु,

कैटभ और कोलासुर जैसे राक्षसों ने इस कलियुग में जन्म ले लिया है। ताड़का, हिडिम्बा, पूतना और शूर्पणखा ने भी इस युग में जन्म ले लिया है। ऐसे व्यक्तियों में आत्मा, सद्-सद्विवेक और भावना का पूर्ण अभाव होता है। इनमें से कुछ तो अत्यन्त अधम जीवन व्यतीत करते हैं, निजी (गुप्त) जीवन में ये अपने अनुयायिओं पर यौनोत्तेजना के ऐसे-ऐसे रहस्यमय तरीके अपनाते हैं कि मर्यादा मुझे इनका वर्णन करने की आज्ञा नहीं देती। वे धन, यौनसुख और मदिरा के पीछे पागल हैं और अत्यन्त बेशर्मी से अन्य लोगों की कुण्डलिनी को नष्ट करते हैं।

आइए देखते हैं कि किस प्रकार तान्त्रिक साधकों के मस्तिष्क का नियन्त्रण करने में सफल होते हैं। ऐसा करने के लिए सर्वप्रथम हमें मानव के ज्ञात और अज्ञात क्षेत्रों के विषय में स्पष्ट समझना होगा।

रेखाचित्र (आकृति ७) में मानव व्यक्तित्व का चित्रण उससे सम्बन्धित सूक्ष्म वातावरण के साथ किया गया है। मानव तन्त्र के बाईं ओर, ईड़ा नाड़ी के आगे सामूहिक अवचेतन क्षेत्र है जिसमें वह सभी कुछ एकत्र होता है जो मृत है। स्थूल स्तर पर इस सूक्ष्म वाहिका की अभिव्यक्ति बाएं अनुकम्पी नाड़ी तन्त्र के रूप में होती है और प्रतिअहम् के माध्यम से बनने वाले मस्तिष्क के सभी बन्धन इसमें एकत्र होते हैं। बहुत अधिक बन्धन ग्रस्त हो कर मरने वाले लोग मृत्यु के बाद इस क्षेत्र में बने रहते हैं। मानव व्यक्तित्व के दाईं ओर पिंगला नाड़ी के आगे सामूहिक अवचेतन क्षेत्र है, जिसमें भविष्य संचित होता है। भविष्य के विषय में बहुत ज़्यादा चिंतित रहने वाले तथा अत्यधिक महत्वाकांक्षी लोगों की आत्माएं मृत्यु के बाद इस क्षेत्र में संचित हो जाती है। इन दोनों सामूहिक क्षेत्रों के सात-सात संस्तर होते हैं, जो भिन्न प्रकार के मृत लोगों की आत्माओं से घिरे रहते हैं।

मृत्यु के बाद बाईं ओर के सबसे नीचे के संस्तर में भ्रष्ट, शैतानी मृत व्यक्तियों (पिशाचों) की आत्माओं को स्थान मिलता है, जब कि दाईं ओर

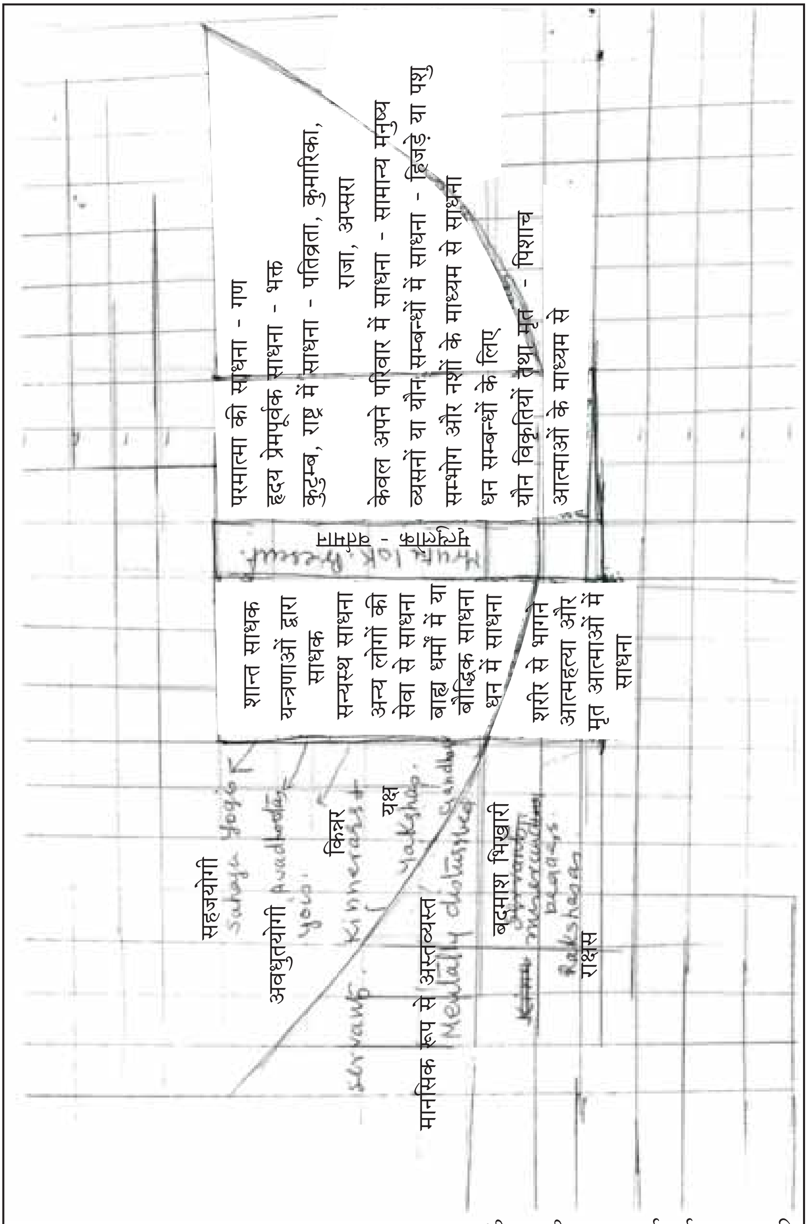

प.पू.श्रीमाताजी द्वारा बनाई गई मूल आकृति

आकृति ७

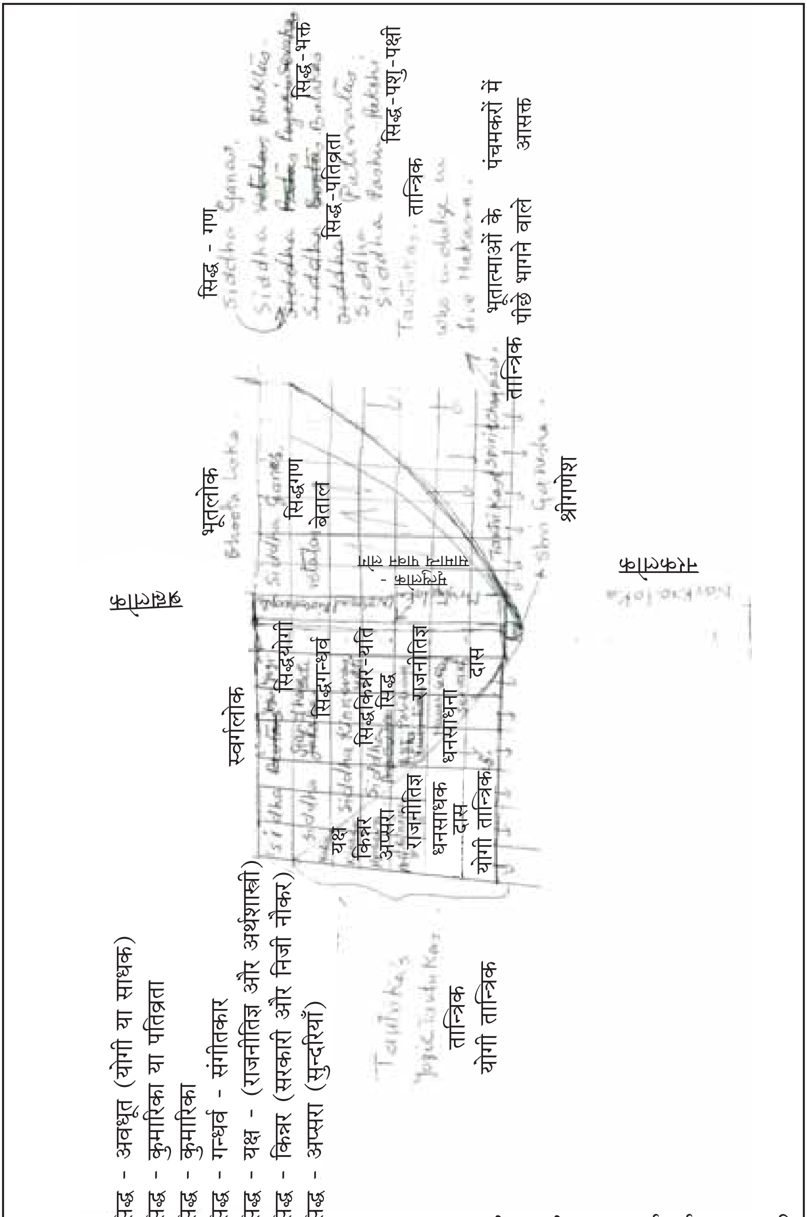

प.पू.श्रीमाताजी द्वारा बनाई गई मूल आकृति

आकृति ७

के सबसे नीचे के संस्तर में असन्तुष्ट राक्षसों की आत्माओं का स्थान होता है। आत्मसाक्षात्कारी आत्मा को आदि-पुरुष (विराट) के शिखर पर स्थित पराचेतन क्षेत्र में स्थान दिया जाता है। सामान्य लोग सुषुम्ना के मध्य मार्ग के समीप के उच्च संस्तर पर रहते हैं, जब कि मानव व्यक्तित्व के नीचे क्षेत्र के लिए बहुसंस्तरीय नरक का खतरा हमेशा बना रहता है। मानव में पवित्रता जब पूरी तरह समाप्त हो जाती है तो श्रीगणेश उसे नरक में फेंक देते हैं।

साधक जब पहली बार ध्यान-धारणा के लिए यौन-केन्द्रों का उपयोग करने का प्रयत्न करता है तो उसकी इस भयानक गलती के लिए उसे चेतावनी देने के लिए श्रीगणेश मूलाधार चक्र में प्रकट होते हैं। वे साधक के अनुकम्पी नाड़ी तन्त्र पर गर्म लहरियाँ प्रसारित करते हैं, जो भिन्न प्रकार से साधक को उत्तेजित (पीड़ित) करती हैं। ध्यान में उसे श्रीगणेश का प्रतीक (स्वस्तिक) वास्तव में दिखाई पड़ता है। ये प्रतीक उसे सुझाव देता है कि साधक के रूप में यौन-भावों के प्रति उसे शिशुसम अबोध बने रहना चाहिए। इस चेतावनी की ओर यदि साधक ध्यान नहीं देता तो उसके आचरण के माध्यम से श्रीगणेश अपने क्रोध का प्रदर्शन करते हैं। कई बार ऐसे साधक को आज्ञा चक्र पर प्रकाश दिखाई दे सकता है और आज्ञा चक्र के मध्य में एक आँख भी दिखाई पड़ सकती है। प्रकाश ऊर्जा प्रवाह की छिन्न स्थिति (short circuit) की ओर संकेत करता है और दिखाई पड़ने वाली आँख इस चक्र के शासक देवता भगवान ईसामसीह की होती है। आरम्भ में वे साधक का उत्क्रान्ति पथ पर मार्गदर्शन करते हैं परन्तु बाद में, साधक यदि अपनी उत्क्रान्ति के लिए यौनोत्तेजना का उपयोग करना चालू रखता है, तो वे अदृश्य हो जाते हैं।

मानव व्यक्तित्व का ऊपरी क्षेत्र अचेतन मस्तिष्क है, जो परमेश्वरी प्रेम की शक्ति से परिपूर्ण है। कुण्डलिनी इसी ईश्वरी शक्ति का अवशिष्ट भाग है। किसी सद्गुरु या सहजयोगी की कृपा से जागृत कुण्डलिनी के माध्यम से मानव चित्त का तालु-अस्थि की ओर मार्गदर्शन होता है। यहाँ (तालु अस्थि)

मानव चित्त की एकाकारिता सर्वव्यापी शक्ति से होती है। ये सर्वव्यापी शक्ति पावन चेतना है (सत्‌चित्‌ आनन्द)। यही सच्चा योग है।

पतांजली शास्त्रों में वर्णित हठयोग में सद्‌गुरु अपने शिष्यों को सामाजिक प्रदूषण से दूर जंगलों में रखा करते थे। स्वयं को उत्क्रान्ति के लिए तैयार करने के लिए शिष्यों को छः कठोर क्रियाओं का अभ्यास करना पड़ता था। गृहस्थों को, विशेष रूप से, इस मार्ग से परे रखा जाता था, केवल ब्रह्मचारियों को ही स्वीकार किया जाता था। इस प्रकार के व्यक्तिगत योग की शैली में परमेश्वरी चैतन्य लहरियों का अनुभव प्राप्त करने के लिए कई जीवन लगते थे और सामूहिक चेतना की स्थिति प्राप्त करने के लिए बहुत से और जीवन। परन्तु सहजयोग में दोनों अवस्थाएं प्राप्त करने के लिए बहुत थोड़ा समय लगता है, क्योंकि सहजयोग में हठयोग के विपरीत विधि अपनाई जाती है: सबसे पहले परम शिखर बनाया जाता है और बाद में साधक के स्वयं को शुद्ध करने के प्रयासों द्वारा नींव डाली जाती है। मैं हमेशा एक प्रश्न पूछती हूँ कि बिना आत्मसाक्षात्कार प्राप्त किए आप अपने अहम्‌ और प्रतिअहम्‌ को स्वच्छ कैसे कर सकते हैं? बिना आत्मसाक्षात्कार पाये व्यक्ति यदि उत्क्रान्ति प्राप्त करने का प्रयत्न करता है तो वह या तो बाएं या दाएं अनुकम्पी नाड़ी-तन्त्र पर चला जाता है। ये नाड़ियाँ क्रमशः अहम्‌ और प्रतिअहम्‌ पर समाप्त होती हैं। सीमित मस्तिष्क से असीम तक पहुँचने के लिए व्यक्ति को आत्मसाक्षात्कार के माध्यम से ज्योतिर्मय तो होना ही पड़ेगा, और तब स्वयं को परमेश्वरी चैतन्य लहरियों से परिपूर्ण करना होगा।

जैसा मैं पहले बता चुकी हूँ, तन्त्रवाद अपने वास्तविक अर्थ से बिल्कुल विपरीत अर्थ को व्यक्त कर रहा है : कुण्डलिनी योग को व्यक्त करने के स्थान पर इसका अर्थ कुण्डलिनी को हानि पहुँचाना समझा गया। आज तक कभी भी जीवन में इस प्रकार के अन्तर्विरोध को इतनी आसानी से स्वीकार नहीं किया गया था। आधुनिक स्वीकृत अर्थों में तन्त्रवाद अपने सभी अभ्यासों

तथा नियमादेशों में आसुरी विद्या है, राक्षसी विद्या। इसे परमात्मा, धर्म या ईश्वरत्व से कुछ लेना-देना नहीं है। यह उत्क्रान्ति से सम्बन्धित हर चीज़ के विरुद्ध है और यहाँ तक कि विकास प्रक्रिया से होने वाली उत्क्रान्ति को विफ़ल करने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। स्वप्रमाणित तान्त्रिक न तो धार्मिक जीवन व्यतीत करते हैं और न ही अपने अनुयायियों को कोई सद्‌गुण सिखाते हैं। इसके विपरीत उनकी रुचि केवल धन बटोरने तथा अपने अनुयायियों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति पर होती है। अत्यन्त सूक्ष्म और धूर्त विधियों से धार्मिक आकांक्षाओं को बाधित करने पर तन्त्रवाद का पूरा भवन खड़ा हुआ है।

कुण्डलिनी को नष्ट करने के लिए तान्त्रिकों ने जिस सबसे अधिक धूर्त और अधम विधि को अपनाया है, वह है कुण्डलिनी का अपमान करना। उन्होंने पता लगा लिया कि किसी देवता के समक्ष जब कोई अभद्र, अपवित्र और पापमय कार्य किया जाए तो क्रोधित होकर सम्बन्धित देवता वहाँ से अदृश्य हो जाते हैं। ये घिनौने कार्य यदि किसी मन्दिर में किए जाएं या मनुष्य की रीढ़ पर स्थित सूक्ष्म चक्रों में निवास करने वाले देवी-देवताओं की उपस्थिति में किए जाएं तो देवी-देवताओं के माध्यम से साक्षी सर्वशक्तिमान परमात्मा का चित्त अन्तत: वहाँ से हट जाता है। सर्वप्रथम तो देवी-देवता इन मूर्ख साधकों की मूर्खता पर क्रोधित हो जाते हैं और भिन्न विधियों से अपने क्रोध की अभिव्यक्ति करते हैं। प्राय: व्यक्ति को हल्की गर्म लहरियों की अनुभूति होती है, जो कई-कई दिनों और कभी-कभी वर्षों तक चलती है। परमात्मा के नाम पर या पावन मन्दिरों में उनके समक्ष यदि यौन क्रीड़ाएं की जाएं तो श्रीगणेश ऐसे व्यक्तियों को अन्दर से निकलने वाली गर्मी से जलने के लिए विवश करते हैं, और कभी-कभी तो उनके शरीर पर फ़फोले पड़ जाते हैं। प्रतिक्रिया स्वरूप ऐसे कुछ लोग तो मेंढकों की तरह ऊपर नीचे उछलने लगते हैं और कुछ आत्मविस्मृति (भाव-समाधि) की अवस्था में चले जाते

हैं। ये लोग अत्यन्त भूतबाधित प्रतीत होते हैं और अनियन्त्रित ढंग से गीत गाते हैं और नाचते हैं।

ऐसी परिस्थितियों में कुण्डलिनी गतिशील नहीं होती। ऐसे लोगों में तो ये जम जाती है और अन्ततः श्रीगणेश के साथ वहाँ से अदृश्य हो जाती है। ये बिल्कुल वैसा ही है जैसे दर्पण में दिखाई देने वाला स्पष्ट प्रतिबिम्ब दर्पण के गंदा होने पर या ढका होने पर गायब हो जाता है। कुछ साधकों को तो आरम्भ में कम्पन हो जाता है। मानव स्वभाव ऐसा है, कि मार्ग परिवर्तन के स्पष्ट संकेत मिलने के बावजूद भी बहुत से लोग धोखा देने वाले और पथ भ्रष्ट करने वाले कुशल गुरुओं की शिक्षा को यह सोचकर स्वीकार कर लेते हैं कि यह सब चुनौती का ही एक भाग है। मूर्ख बन कर वे अपने भ्रान्तिपूर्ण पथ पर चलते रहते हैं। इसका परिणाम ये होता है कि वे परमात्मा का अपमान करने के लिए और अधिक प्रयास करने को प्रेरित हो जाते हैं और अन्ततः उनके अन्दर ईश्वरत्व और पावनता बिल्कुल समाप्त हो जाती है। आज्ञा चक्र पर भगवान ईसामसीह और मूलाधार चक्र पर नरक के द्वार-प्रहरी श्रीगणेश ऐसे लोगों को छोड़ देते हैं। नरक के द्वार खुल जाते हैं और उनका चित्त उन्हें नीचे की ओर विनाश तक पहुँचा देता है। साथ ही साथ ईड़ा और पिंगला नाड़ी से मृत आत्माओं का प्रवेश उनके चेतन मस्तिष्क में होने लगता है और ये आत्माएं उनके चेतन मस्तिष्क को अपने नियन्त्रण में ले लेती हैं। अब पूरी तरह भूतबाधित ऐसे व्यक्ति अत्यन्त अजीब आचरण करने लगते हैं।

कई तान्त्रिक पूरी भीड़ के सामने निर्वस्त्र होने के लिए कुछ लोगों को किराये पर ले लेते हैं। अपने बीच एक निर्वस्त्र व्यक्ति को देख कर, भेड़ों की तरह व्यवहार करते हुए, वहाँ उपस्थित अन्य लोग भी वैसा ही करने लगते हैं। सारा मर्यादाविवेक समाप्त हो जाता है और यहाँ तक कि तर्कबुद्धि भी कुन्द हो जाती है। मानसिक तौर पर इन आत्माओं से नियन्त्रित साधक अब कोई प्रश्न भी नहीं करता। किसी अभिभूत व्यक्ति की तरह आँखें बन्द करके वह

ऐसे गुरु के आदेशों को मानने लगता है जिसने उसे पूर्णत: सम्मोहित किया हुआ है। मनोवैज्ञानिक भी अपने प्रयोगों के लिए सम्मोहन शैली को अपनाते हैं, लेकिन वो ये नहीं बता सकते कि यह किस प्रकार कार्य करती है! मैं पहले ही बता चुकी हूँ कि यह वास्तव में अस्थायी भूतबाधा है, जैसे अतिसंवेदी ज्ञानबोध (ESP) में मृत आत्माएं किसी की सहायता करती है, ये व्यस्तव्यक्तित्व (Busy bodies) होती हैं जो माध्यम के रास्ते भविष्य की घटनाओं की सूचना देती हैं। भारत में इन्हें कर्णपिशाच कहते हैं जो आकर सम्मोहक के कान में बुदबुदाते हैं।

हो सकता है मानव की सत्य की खोज के आरम्भ में ही साधकों ने एक नैसर्गिक गलती कर दी हो। शायद अपना चित्त भविष्यदर्शक (clairvoyant) पर केन्द्रित करने के कारण वे उस अवस्था में चले गए हों। अवश्य अपने सूक्ष्म शरीरों में प्रवेश करके, अपने मूलाधार चक्र में झाँक कर उन्होंने श्रीगणेश की कुण्डलाकार (मुड़ी हुई) सूँड को देखा होगा। गलती से क्योंकि ये मान्यता रही है कि मूलाधार चक्र ही कुण्डलिनी का स्थान (पीठ) है, अवश्य उन्होंने श्रीगणेश की मुड़ी हुई सूंड को ही कुण्डलिनी मान लिया होगा। इस प्रकार गलती से काम-वासना से कुण्डलिनी का सम्बन्ध जोड़ा गया होगा। यह अत्यन्त गम्भीर गलती थी। छ: अन्धों और हाथी की कहानी से जैसे हमने सीखा है, ज्योतिविहीन साधक गलत निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

उत्क्रान्ति के लिए मानव को इस प्रकार बनाया गया था कि विकास प्रक्रिया में कामुकता की कोई भूमिका न हो। अपनी मूर्खताओं और दुर्बलताओं को न्यायोचित ठहराने के लिए धर्म को दूषित करने वाले कुछ साधक इसे मानवीय स्तर पर ले आए तथा अपने और अन्य लोगों के लिए तान्त्रिक विधियों का उपयोग किया। अबोध साधकों की उन्नती से इर्ष्या करने वाले कुछ दुष्ट लोगों ने इन गलत विधियों को प्रोत्साहित करके इनका दुरुपयोग किया होगा। इन परपीड़क कामुक (sadistic) राक्षसों ने अपनी

तान्त्रिक क्रियाओं से, इस प्रकार, पावन ग्रह (पृथ्वी) पर नरक के द्वार खोल दिए। लेखकों द्वारा चाहे जो भी कारण और व्याख्याएं तन्त्रवाद और आध्यात्मिक साधना की अनियमित समीपता के लिए दी गई हों, इसे स्वीकार करने वालों को पहले तो ये ज्ञान ही न था कि वे क्या खोज रहे हैं। बाद में जब वे शैतान (दुष्प्रवृत्ति) बन गए तो उन्होंने मृत्यु और पाप के रहस्यों का ज्ञान सीख कर इस में कुशलता (स्वामित्व) पा ली और अब यही उनके व्यवसाय के औज़ार है।

पशुओं की तरह मनुष्य भी कामेच्छा के साथ जन्म लेते हैं, परन्तु उनसे कहीं अधिक विकसित होने के कारण मनुष्य उच्च जीव हैं। अतः मानव के यौन सम्बन्धों में भी आत्मसंयम और पावनता विवेक होना चाहिए। मनुष्य को पशुअवस्था में नहीं लौटना चाहिए और अपने यौन स्वभाव का उपयोग आध्यात्मिक उन्नती के लिए तो निश्चित रूप से नहीं करना चाहिए। प्राचीन सन्तों ने ध्यान की अवस्था में विवाह की संस्था और माँ, बहन, भाई, पिता के पावन सम्बन्धों की खोज की थी। केवल मानव अवस्था में ही ये परिष्कृत (ऊँची) भावनाएं विद्यमान होती हैं और समाज को सौन्दर्य प्रदान करती हैं। अवतरणों ने हमेशा पावनता और निष्ठा के महत्व पर बल दिया है। पशु चेतना में ये गुण नहीं होते। ऐसे गुण प्रमाणित करते हैं कि अपने पशु प्रतिरूपों (counterparts) की अपेक्षा मानव कहीं अधिक विकसित है।

तन्त्रवाद का आरम्भ

तन्त्रवाद की जड़ें उतनी ही प्राचीन हैं जितनी धर्म की चेतना, परन्तु सन ९००-१४०० ई. के बीच यह पूरी शक्ति से आ गया। महान सुधारक हिन्दु सन्त श्री आदिशंकराचार्य के अवतरण के बाद, या इससे भी पूर्व सम्राट अशोक के राज्य में, अतित्यागवृत्ति के विरोध में अधार्मिक शक्तियाँ खड़ी हो गई थीं। थोड़े से अनुयायियों के माध्यम से जैनमत अपनी आध्यात्मिक बुलंदियों पर पहुँच चुका था और बहुत से सरकारी मन्त्रियों ने इस धर्म को

अपना लिया था। उन्होंने एक बनावटी और बाह्य कठोर त्याग की भावना को जन्म दिया। अत्यन्त अनैसर्गिक जीवनशैली से तंग आ चुकने के कारण शासकों ने तन्त्रवाद को राजकीय आश्रय प्रदान किया। बाद में बहुत से अन्य दरबारी अधिकारियों ने भी तन्त्रवाद को तेज़ी से फैलाने के लिए आवश्यक वातावरण तैयार करने के कार्य में अहं भूमिका निभाई। छठी शताब्दि तक तीन राजधर्मो-हिन्दूधर्म, बुद्धधर्म और जैनधर्म - के पूर्वप्रमाण ने लोगों को नीरस और रूढ़िवादी बना दिया था। विडम्बना ये थी कि ये सभी धर्म धर्मपरायणता के मध्यमार्ग को मानते थे।

राजाओं की रुचि भोगविलास में थी और उनके मन्त्रीगण सत्तालोलुप थे। वे उन अतिचेतन आत्माओं से सहायता लेने को तैयार थे जो विचार करने, योजना बनाने और राजनीतिक रचनात्मकता में उनकी सहायता कर सकें। इसी कारण से इन दरबारी सलाहकारों (मन्त्रियों) ने उन यौन-योगिक (sex-yogic) तान्त्रिक गुरुओं को स्वीकार किया जिनका अतिचेतन क्षेत्र (supraconscious realm) की आत्माओं पर नियन्त्रण था। अपने शिष्यों को (आरम्भिक) दीक्षा देने के लिए ये भोग विधि का उपयोग नहीं करते थे, वे केवल उन्हें कोई मन्त्र देते थे या उनके कान में किसी (मृत व्यक्ति) आत्मा का नाम बुदबुदाते थे। शिष्य के मस्तक पर अंगुली से कोई चिन्ह बनाना या केवल उपयुक्त नाम बोलना, एक अन्य तरीका था। गुरु जो भी तरीका अपनाते, शिष्य का सम्बन्ध भूतात्मा से करा देते और वह आत्मा आरम्भ में उसके गुलाम (दास) की तरह कार्य करती। दीक्षित शिष्य गतिशील और शान्त हो जाता तथा उसकी सेहत भी सुधर जाती। वह एक नया व्यक्ति बन जाता, परन्तु शीघ्र ही वह बदतर व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करने लगता। यदि वह शराब पीने वाला होता तो नशेड़ी बन जाता, अपने या अन्य लोगों के प्रति हिंसात्मक हो जाता, अपनी रुचि के अनुरूप वह अत्यन्त सफल चोर या तस्कर बन जाता। अचानक वह यौन-उन्मादी या डॉन-जुआन (Don-Juon)

(ईश्कमिजाज) बन जाता। मेज़बान (Host) की कामुकता, धन या सत्ता की दुर्बलताओं का आनन्द लेने के लिए भूतात्मा सारी सूक्ष्म विधियों तथा धूर्तता का उपयोग करती है। खेद की बात है, अधिक से अधिक दस वर्षों में उस दीक्षित व्यक्ति का स्वस्थ चौपट हो जाता, किसी वयोवृद्ध की तरह उसके जीर्ण शरीर की हड्डियों से आवाज़ आने लगती और उसका जीवन दयनीय बन जाता।

यद्यपि विवाह को पावन संस्कार के रूप में मनाया जाता था परन्तु सामान्य धार्मिक रीतिरिवाज़ों के कारण सामान्य परिवारों का यौनजीवन अत्यन्त दबा हुआ था। इसके काफ़ी बाद में जैन धर्म और विशेष तौर पर बुद्ध धर्म ने धार्मिक जीवन में पूर्ण त्याग (सन्यास) की शिक्षा दी और मठवासी और सन्यासी सामान्य गृहस्थों को तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगे। बाद में ये सन्यासी जंगल की अपनी कुटियाओं को त्याग कर सामाजिक परजीवी (Parasites) बन कर जीवनयापन के लिए भिक्षा याचना करने लगे। स्वयं को पापों से ऊपर बताते हुए वे गृहस्थ लोगों के कठोर परिश्रम की कमाई का आनन्द उठाने लगे। उनमें से कुछ सन्यासी राजाओं के मन्त्री और सलाहकार बन गये। स्वभाव से वे किसी प्रकार भी सन्यासी नहीं थे, सन्यासियों की वेशभूषा में वे राजाओं तथा प्रजा को भयभीत करने वाले पाखण्डी थे। हिन्दुओं में भी ब्रह्मचर्य को परमात्मा को प्राप्त करने का एकमात्र वैध मार्ग मान लिया गया। प्रतिक्रिया स्वरूप सामान्य मनुष्यों की दबाई गई इच्छा तन्त्रवाद की सहज जनस्वीकृति के माध्यम से व्यक्त हुई। तन्त्रवाद, चाहे कुछ भी रहा हो, ब्रह्मचर्य तो नहीं है। जनता द्वारा तन्त्रवाद को स्वीकार किए जाने के फलस्वरूप सभी मन्दिरों में गर्भाधान पंथ (प्रथा) स्थापित कर दिया गया। यह धर्म के नाम पर एक अमिट धब्बा है। तन्त्रवाद भारत के बहुत से साम्राज्यों में छा गया तथा नये विचारों से सुगमता से प्रभावित हो जानेवाले बहुत से कलाकार और बुद्धिवादी लोगों ने तन्त्रवाद को सांस्कृतिक जीवन के भाग के रूप में स्वीकार कर लिया। कलाकारों ने तान्त्रिक कला पर पुस्तके

लिख दीं। कुछ अन्य पुस्तकें विशेष रूप से शिल्पकारिता विज्ञान पर लिखी गई जिनमें रतिक्रिया की भिन्न मुद्राओं का वर्णन किया गया। इन पुस्तकों में यौन विज्ञान की भिन्न शैलियों की पूर्ण रूप से विवरणात्मक व्याख्या की गई।

विश्वसनीय व्याख्याओं तथा तर्कों द्वारा सहज, अबोध और मूलरूप से धार्मिक शिल्पकारों को भ्रमित कर के कामोद्दीपक कला का सृजन करने के लिए मना लिया गया। तान्त्रिकों के इस विषय पर दिए गये तर्क इस प्रकार थे : कुदृष्टि (Evil Eye, बुरी नज़र) को दूर करने के लिए हर कलाकृति में एक धब्बा अवश्य होना चाहिए। उन दिनों बुरी नजर को दूर करने के अन्धविश्वास की प्रथा थी। जैन मन्दिरों में पापमय अश्लील कला सृजन करने के लिए जो जैन धार्मिक शिल्पकार तैयार नहीं थे, उनके लिए ये तर्क न्यायसंगत था। इस कारण से दाग या धब्बे डालने के सुझाव दिये गये। एक और तर्क दिया गया कि कला की अभिव्यक्ति यदि पूर्णतः सम्पन्न होगी तो लोग कलाकृति से और इसका सृजन करने वाले शिल्पकार से ईर्ष्या करने लगेंगे। इस प्रकार की ईर्ष्या से कला को नज़र लगती है, अतः दुर्भाग्य से बचाने के लिए कलाकृति को पूर्ण रूप से परिष्कृत नहीं होना चाहिए।

तान्त्रिकों ने बताया कि दुष्ट आत्माएं अश्लील भित्तिचित्रों के समीप नहीं आएंगी तथा मन्दिरों को वास्तव में पावन बनाने का यही तरीका है। नेपाल में कलाकारों को बताया गया कि वज्रपात की देवी कुंआरी (Virgin) थीं और मन्दिर को वर्षा, आँधी और बिजली के प्रकोप से बचाने के लिए मन्दिर की दीवारों पर अश्लील कलाकारी की जानी आवश्यक थी। एक अन्य सीधा-साधा तर्क दिया गया कि मनुष्यों को अपनी वासना और मनोवेग मन्दिर के बाहर छोड़ने आवश्यक हैं। अतः मनुष्य की सारी बुराइओं की मूर्तियां मन्दिर की बाहरी दीवारों पर बना दी जानी चाहिएं। फिर भी होने ये लगा कि बाहर की सभी बुराइयाँ रेंग कर मन्दिर के गर्भ में आने लगीं और बहुत से देवी-देवताओं की पूजा उनके अश्लील रूपों में होने लगी।

कोणार्क, खजुराहो और नेपाल जैसे स्थानों पर मूर्तिकारों की अश्लील कला को सुस्पष्ट दर्शाया गया है। कहा जाता है कि खजुराहो में रानी हेमावती ने अवैध सम्बन्ध बनाकर पाप किया था। प्रायश्चित के रूप में रानी को अपना पाप सारी जनता के सामने बताने को विवश किया गया और सर्वशक्तिमान परमात्मा के समक्ष अपने प्रायश्चित की अभिव्यक्ति करने के लिए उन्हें भंडदेवल मन्दिर बनाना पड़ा। मर्यादा मुझे तान्त्रिकों द्वारा बुलाई गई शैतानी शक्तियों के विषय में लिखने से रोकती है। विश्वास करना कठिन है कि किस प्रकार मनुष्य धर्म की अपेक्षा पाप को अपनाता है। मानव समाज में धर्म को पीछे धकेल कर तन्त्रवाद की आग फैलने का श्रेय केवल मनुष्य की दुर्बलता को जाता है।

पूरी तरह वासना-लोलुप तान्त्रिक बहुत लोकप्रिय हुए। मानवता के तुच्छ नमूने, वासना-पीड़ित राजाओं को उन्होंने अपना दास बना लिया। अपनी कुशलता के प्रति पूरी तरह से जागरूक इन तान्त्रिकों ने जीवन के सभी पक्षों में मानवीय दुर्बलताओं का दुरुपयोग करने का प्रयत्न किया। मानवीय चेतना को मात्र यौन-बिंदु के स्तर तक पतित कर देने के प्रयास में उन्होंने सभी मानवीय कार्यकलापों को वासना से जोड़ देने का प्रयत्न किया :

* ईश्वरत्व का अपमान इस सीमा तक पहुँच गया कि उन्होंने रेत पर देवी दुर्गा की छवि बनाकर उसे वैश्याओं के पैरों से रौंदवाया।
* अपने दुष्कृत्यों को न्यायोचित ठहराने के लिए उन्होंने प्राचीन धर्मग्रन्थों को परिवर्तित करके उनमें अश्लील श्लोक डाल दिए। वे कामुक राजाओं के स्वामी बन बैठे। तान्त्रिक बुद्धिवादियों द्वारा धर्मग्रन्थों पर किए गये अतिक्रमण इतने भयंकर थे कि आज भी कई बार इन पुस्तकों में लिखे गये सत्य को असत्य से अलग कर पाना असम्भव प्रतीत होता है।
* पावन अश्वमेध यज्ञ का वर्णन उन्होंने गर्भाधान पन्थ समारोह के

रूप में किया।

* अश्वमेध यज्ञ को यौन समारोह कहते हुए उन्होंने वेदों को भ्रष्ट करने का प्रयत्न किया। इस समारोह में राजा सम्भोग द्वारा अपने शत्रु पर स्वामित्व स्थापित करने का प्रयत्न करते थे।

* कामक्रीड़ा द्वारा उन्होंने भगवान शिव और उनकी शक्ति के सहसम्बन्धों को दर्शाया। निःसन्देह वे गलत थे, क्योंकि देवी-देवता कामभाव से परे होते हैं।

* श्रीकृष्ण, श्रीराधा और गोपियों के विषय में उन्होंने बहुत सी अश्लील कहानियाँ गढ़ीं।

* उन्होंने 'कामसूत्र' और 'कामकला यन्त्र' जैसी कई मूल पुस्तकें लिखीं जिनसे राजाओं के पुस्तकालय भर गए। कुछ अन्य ग्रन्थों में ये वर्णन किया गया कि रतिक्रिया के माध्यम से परमात्मा तक किस प्रकार पहुँचें। इस प्रकार के अश्लील साहित्य का सृजन करने के लिए इन लेखकों को ज़मीन और सम्पत्तियाँ इनाम में दी जाती थीं। इनमें से कुछ लेखकों ने पृथ्वी पर होने वाले हर कार्य का सम्बन्ध रति-क्रिया से जोड़ने का प्रयत्न किया।

लकड़ी या पत्थर पर सर्वोत्कृष्ट अश्लील मुद्राएं बनाने वाले कलाकारों की प्रति स्पर्धाएं करायी जाती थीं। धूर्त तान्त्रिकों के इन बुद्धिवादी करतबों द्वारा तान्त्रिकों का अनुसरण करने वाले भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक के साम्राज्यों के लोगों की बुद्धि भ्रष्ट कर दी गई। अंधविश्वास के कारण उनके अनुयायी इस तथाकथित पवित्र और रहस्यमय धर्म के प्रति वचनबद्ध हो गये।

अश्लील साहित्य के अतिरिक्त इन लोगों ने वासनालोलुप समाज का सृजन किया। इस समाज में आम जनता भी बहुत से अश्लील त्योहार मनाया करती थी। वे अश्लील भाषा का उपयोग करते और भद्दी अश्लील

विषयवस्तु वाले गीत गाते। अत्यन्त अभद्र भाषा में ये लोग अपने समीपतम सम्बन्धी से हंसी-दिल्लगी किया करते थे, सभी पावन और पवित्र प्रथाओं को मलिन करने के लिए इन तान्त्रिकों ने बहन-भाई पावन सम्बन्धों को भी नहीं बख्शा। सीधे-साधे ग्रामीणों को भी अभद्र बनने के लिए प्रोत्साहित किया गया और इस प्रकार वे मानव समाज को मात्र एक यौन-बिंदु बना देने के अपने लक्ष्य में सफल हुए। उन्होंने ऐसे समाज का सृजन किया जिसमें 'सुर' 'सुरा' और 'सुन्दरी' ही केवल मूल्य थे।

इस प्रकार उन्होंने पहले धार्मिक, सामान्य लोगों के जीवन आदर्शों को नियन्त्रित कर लिया। जीवन के प्रति कामुक और अनुमतिसूचक (permissive) दृष्टिकोण ने एक ऐसे समाज का सृजन किया जिसमें वैश्यावृत्ति करने वाली महिलाएं सामाजिक रूप से महत्वपूर्ण बन गईं और समर्पित गृहलक्ष्मियों के स्थान पर वास्तव में उनकी पूजा होने लगी।

उन दिनों के अधम बुद्धिवादियों की मौनसहमति से तान्त्रिकों ने प्रमाणित कर दिया कि भोगविलास ही आध्यात्मिक एकाकारिता या योग का एकमात्र लक्ष्य है। उन्होंने इस धारणा का प्रचार किया कि पुरुष का परमात्मा तथा महिला का 'शक्ति' की छवि में सृजन किया गया है। अतः परम योग प्राप्ति के लिए आदर्श वातावरण का सृजन करने के लिए उन्हें मिलना चाहिएं और मिल कर सम्भोग की अधिक से अधिक विधियाँ खोजनी चाहिएं। ये राक्षसी धारणा थी क्योंकि इसने बहुत लोगों को आकर्षित किया।

सत्य तो ये है कि मानव में आत्मा के प्रतीक, शिव और उनकी शक्ति कुण्डलिनी को सभी मनुष्यों में स्थापित किया गया है। अतः मानव चित्त या चेतना (अर्थात् कुण्डलिनी) और आत्मा के योग के लिए, सम्पूरक की भूमिका निभाने हेतु, किसी दूसरे व्यक्ति की आवश्यकता नहीं है। जैसे पहले बताया गया है, कुण्डलिनी माँ गौरी हैं। शिव से विवाह के बाद कुँआरी अवस्था में ही उन्होंने अपने शरीर के मल से श्रीगणेश का सृजन किया। जब

वे अकेली स्नानागार में स्नान कर रही थीं तो अपनी लज्जा (पावनता) की रक्षा के लिए उन्होंने श्रीगणेश को स्नानागार के द्वार पर बिठा दिया। अतः श्रीगणेश किसी को भी पिछले द्वार से प्रवेश नहीं करने देते। यह रूपक (कहानी) कुण्डलिनी (श्रीगौरी) और मूलाधार चक्र (श्रीगणेश) के सम्बन्धों को स्पष्ट करती है तथा इस तथ्य को भी स्पष्ट करती है कि सम्भोग (पीछे का दरवाज़ा) के माध्यम से कुण्डलिनी (जागृति) तक पहुँचना असम्भव है।

समर्थ लोगों ने, अत्यन्त चतुराई पूर्वक युगों पुरानी सांस्कृतिक मर्यादाओं (अवरोधों) को तोड़ दिया। पावनता विवेक की धारणाओं का उपहास करते हुए इन्होंने दावे किए कि वे श्रीकृष्ण के अवतरण हैं जिन्होंने स्वयं गोपियों को निर्वस्त्र करने का प्रयत्न किया था। बचपन में श्रीकृष्ण को यौन-भावों का क्या ज्ञान था? बाद में जब दुर्योधन ने द्रौपदी की पावनता खण्डित करनी चाही तो द्वारिका के महाराज कृष्ण उसके सम्मान की रक्षा करने के लिए उड़ कर हस्तिनापुर पहुँच गए।

अपने व्यवहार को न्यायोचित ठहराने वाले सिद्धान्तों से विकसित तान्त्रिक दो प्रकार के थे :

१. पहले प्रकार के तान्त्रिक 'वाममार्गी' कहलाते थे। ये सभी तरह के भोगविलास के पक्षघर थे। इन्होंने पाँच विलासिताओं के भोगविलास का आरम्भ किया और शराब, सम्भोग और विशाल पशुओं के माँसाहार द्वारा शरीर उत्तेजित करने की शिक्षा दी।

२. दूसरा प्रकार 'हठयोगियों' का था। ये बाह्य त्याग को मानते थे और इन्होंने यौनयोग (Sexo-yogic) विचारधारा विकसित की। रतिक्रिया के लिए ये योगिक मुद्राओं का उपयोग करते थे और इनका दृढ़ विश्वास था कि रतिक्रिया के बीच यदि यौनगतिविधि को नियन्त्रित कर लिया जाए तो इससे कुण्डलिनी जागृत हो जाएगी। बाद में सम्भोग का मज़ा उठाने के लिए इन्होंने सिखाया कि स्वयं

गुरु का शिष्य को सम्भोग के माध्यम से दीक्षित करना आवश्यक है। अपने आचरण को उचित ठहराने के लिए इन्होंने समझाया कि रतिक्रिया के बीच गुरु यदि वीर्य प्रवाह को नियन्त्रित कर ले तो यह गतिविधि गुरु की भोगविलासिता नहीं होती। इन निर्लज्ज लोगों ने समलैंगिक सम्भोग को बढ़ावा दिया और इसी के साथ-साथ अन्य सभी प्रकार की अनैसर्गिक गतिविधियों को भी प्रोत्साहित किया। पुस्तकें लिख कर इनके माध्यम से तथाकथित 'महान सत्यों' की व्याख्या द्वारा तान्त्रिकों ने इस जीवन शैली का खुल्लमखुल्ला प्रचार किया।

पहली प्रकार के, वाममार्गी तान्त्रिक जब इस प्रकार की गतिविधियों में बहुत अधिक लिप्त हो गए तो उनका चित् ईड़ा नाड़ी तथा अन्य बहुत सी समानान्तर नाड़ियों पर चला गया। वे मानव शरीर के बाईं ओर की अति में लुढ़क गए और नरक में जा गिरे। यौन-योगिक मुद्राओं वाली दूसरी विचारधारा के लोग पिंगला नाड़ी से परे, मानव शरीर के दायें भाग की अति में लुढ़कते चले गए और अन्तत: श्रीगणेश ने (मल की तरह) उनका उत्सर्जन नरक में कर दिया।

वाम-मार्गी मन्त्र-जाप भी किया करते थे और कुण्डलिनी यन्त्र के प्रतीक का उपयोग भी। ऐसे यन्त्र या तो कागज़ पर बनाये जाते या पत्थरों पर खोद कर इनकी पूजा की जाती। ये पूजा अनधिकृत कार्य था। किसी देवी-देवता विशेष के मन्दिर में इस प्रकार के घिनौने कृत्य वर्षों तक करते रहने के कारण उस देवी-देवता का चित् उनकी गतिविधियों और मन्दिर से हट जाता था। इस प्रकार परमेश्वरी चित्, जीवन्त आत्मा, ऐसे मन्दिरों और पावन स्थानों के देवताओं से चली जाती थी। देवताविहीन उन मन्दिरों में तान्त्रिक सामूहिक अवचेतन और अतिचेतन क्षेत्र से मृत-आत्माओं को बुलाते और इन दुष्ट मृत आत्माओं का उपयोग करके तबाही मचाते। पहले तो वे इन

आत्माओं को वश में करते परन्तु बाद में, अपनी अनैसर्गिक आदतों के कारण असाध्य दर्दनाक बीमारियों के शिकार हो जाते। बीमार पड़ जाते पर ये मृत आत्माएं इन तान्त्रिकों पर हावी हो जातीं और अत्यन्त सूने पड़े स्थानों पर गहनकष्ट में ये भयानक मृत्यु को प्राप्त होते। कुछ को तो अजीब रहस्यमय मृत्यु का कष्ट झेलना पड़ता और कुछ को पत्थरों से मार दिया जाता।

तन्त्रवाद बड़ी तेज़ी से फैला क्योंकि यौन-योगियों ने बड़ी चतुराई से इसे छद्म आलौकिक (Pseudo supernatural) आवरण में छिपाया हुआ था। उनमें से अधिक चालाक तान्त्रिक-सिद्धान्त बनाते और बड़ी चालाकी से इनका प्रतिपादन करते। इन सिद्धान्तों द्वारा सिखाया जाता कि सम्भोग ही आत्मसाक्षात्कार प्राप्ति का एकमेव मार्ग है। भ्रान्तिमय सम्मिश्रण के लक्ष्य से इन तान्त्रिकों ने योग को तन्त्र (वाद) से दूषित कर दिया। अपने राक्षसी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए देवी-देवताओं की शक्तियाँ और कुण्डलिनी जागृत करने में सक्षम मन्त्रों का जाप, इनकी एक अन्य तकनीक थी। गन्दी और अश्लील विधियों से पूजा करने वाले विकृत लोग इन मन्त्रों का जाप किया करते। यह परमेश्वरी नियमों से पूर्णतः विपरीत, पापमय कार्य था। एक ही मन्त्र का देवी-देवताओं पर भिन्न प्रभाव होता है। ऐसी पूजा के स्थानों को देवी-देवताओं ने त्याग दिया।

तान्त्रिकों ने अपने अनुयायियों की आत्माओं पर व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से नियन्त्रण कर लिया और गुप्त नामों के रूप में उन्हें मन्त्र दिए। जैसे एक मन्त्र, 'ॐ, ऐं, ऱ्हीं, क्लीम् चामुण्डाय विचै नमः' का उपयोग अदिशक्ति को जगदम्बा या चामुण्डा के रूप में जागृत करने के लिए किया जाता है। यह सुन्दर और शक्तिशाली मन्त्र केवल आत्मसाक्षात्कारी लोगों द्वारा किसी विकसित गुरु की देखरेख में उपयोग किया जाना चाहिए। परन्तु इसी मन्त्र के एक-एक अक्षर का तान्त्रिकों ने इस प्रकार उपयोग किया कि ये मृतआत्माओं के एक-एक समूह का आह्वान करने तथा उनका वशीकरण और उपयोग

करने का साधन बना। ये सिद्धान्त अपने किसी नौकर को नाम देने जैसा है, जैसे 'राम'। भारत में इस नाम का बहुत उपयोग होता है। नौकर को बुलाने के लिए आप उसका नाम पुकारते हैं और आपकी आवाज़ और इशारे से नौकर हाज़िर हो जाता है। परन्तु परमात्मा हर ऐरे गैरे नत्थु खैरे के बुलाने से नहीं आ जाते। आत्मसाक्षात्कारी बन कर परमात्मा को बुलाने का अधिकार प्राप्त करना आवश्यक होता है। अनधिकार परमात्मा का आह्वान करने वाले लोग दासों के रूप में मृत-आत्माओं की सेवाएं प्राप्त करने में सफल हो सकते हैं। राम का नाम बुलाने पर वो मृत आत्माएं अनुक्रिया करती हैं पूर्वजन्म में जिनका नाम 'राम' था। परन्तु परमात्मा को ऐसे दासों के सम्मान की कोई आवश्यकता नहीं है।

ईड़ा और पिंगला नाड़ियों से परे मृत आत्माओं का क्षेत्र है जो मानवीय गतिविधियों के लिए वर्जित है। परमात्मा के विरुद्ध अपराधों की दल-दल में साधक को यदि एक बार फँसा लिया जाए तो नवदीक्षित साधक के लिए इन तान्त्रिकों के चंगुल से मुक्ति पाना असम्भव है। इस तथा इसके बाद के काल में तन्त्रवाद के अनुयायी राजाओं ने बहुत से मन्दिर बनवाए। आश्चर्य की बात है कि इन राजाओं के वाममार्गी गुरु थे, जब कि उनके सलाहकार यौन-योगी तान्त्रिकों को मानते थे। मन्दिरों का निर्माण इन विकृत तान्त्रिक गुरुओं के पथ-प्रदर्शन में किया गया तथा मन्दिरों की विषयवस्तु, स्वाभाविक रूप से, वासनालोलुप इन राजाओं के सौन्दर्यबोध के अनुरूप थी।

परिष्कृत कला को अपने आकर्षण का विज्ञापन करने के लिए अश्लीलता की आवश्यकता नहीं होती। पूर्वी देशों में, विशेष रूप से, लोग कभी भी नंगेपन से आकर्षित नहीं हुए। उनका विश्वास मानव की कला के साथ परमात्मा की कला के सृजन में था। नग्नता और अश्लीलता का वर्णन तो एक आसुरी प्रतिभावान लेखक ने वास्तुशिल्प की अपनी एक पुस्तक में किया था और इसके बाद बहुत सी सदियों के लिए यह वास्तुशिल्प का

आदर्श बन गई। पन्द्रहवीं सदी के अन्त तक भी भारतीय आध्यात्मिक पटल पर इस अश्लील कला के दाग देखे जा सकते थे। पावनता विहीन सम्भोग अपना सारा आनन्दप्रदायी आकर्षण खो देता हैं। इसे यदि सार्वजनिक कर दिया जाए तो यह मानव के अन्तर्निहित दिव्यता के लिए अरुचिकर हो जाता है। ये मात्र व्यक्तिगत राय नहीं है, पूर्ण सत्य है। जो मनुष्य अभी तक अपने पशु स्वभाव से ऊपर नहीं उठे हैं वे इसका आनन्द ले सकते है, परन्तु इन अभद्र प्रदर्शनों से किसी भी आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति को मिचली हो सकती है। परमेश्वरी चैतन्य लहरियों से जाँच कर इसका सत्यापन किया जा सकता है। इन अश्लील मूर्तियों पर चित्त जाने से अंगुलियों पर जलन होने लगती है, जो दिव्य केन्द्रों (सूक्ष्म चक्रों) के बिगड़ने की ओर संकेत करती है। कुछ भित्ति चित्र तो वास्तव में कुण्डलिनी के जम जाने का कारण बनते हैं। भित्ति चित्र के एक भाग में तो देवी गौरी और उनके पुत्र श्रीगणेश के बीच रतिक्रिया को चित्रित किया गया है। इस घृणात्मकता को देख कर सहजयोगियों का एक समूह तो शरीरिक रूप से बीमार पड़ गया। ये सत्य है कि तुलना में (सम्बन्धित रूप से) क्योंकि सहजयोगी कम हैं, उनकी प्रतिक्रिया को विशिष्ट नहीं कहा जा सकता, परन्तु वे पूर्ण (परमात्मा) से जुड़े हुए हैं। अच्छाई और बुराई में अन्तर न समझ सकने वाले इस भ्रमित विश्व में उनकी प्रतिक्रिया को मार्गदर्शक के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

आरम्भ होने के दो या तीन सौ वर्षों के बाद ही इन साम्राज्यों का अन्त होने लगा। कुछ मन्दिर तो पूर्ण जीर्ण अवस्था में पहुँच गये और पृथ्वी के गर्भ में चले गये, मानो पृथ्वी माँ लज्जा से बचाने के लिए उन्हें ढक लेना चाहती हों। इन मन्दिरों का जब उत्खनन हुआ तो अंग्रेज लेखकों ने वास्तुशिल्प के स्थान पर इनकी अश्लील मूर्तियों और चित्रकारियों में अधिक रुचि ली। दुर्भाग्यवश पश्चिमी लेखकों ने इन मन्दिरों के निर्माण के पापमय कार्य को करने के लिए विवश इन कलाकारों की पीड़ा, अशान्ति एवं आन्तरिक संघर्ष

को न तो देखा है और न समझा है। भारी दबाव में आकर इन राजाओं तथा उनके सलाहकारों के विचारों को स्वीकार करने के लिए ये कलाकार विवश हो गये। भारतीय सौन्दर्यबोध एवं संस्कृति को बिगाड़ने के लिए किए गये सारे प्रयासों के बावजूद भी इन कलाकारों ने अश्लीलता को छुपाकर रखने का भरसक प्रयत्न किया।

कोणार्क को छोड़ कर अन्य सभी मन्दिरों में कलाकारों ने अश्लीलता को कम करके दिखाने का प्रयत्न किया है। देवी-देवताओं की सुस्पष्ट और शालीन मूर्तियाँ मुख्य स्थानों पर तराशी गई हैं और अश्लील मूर्तियों को ऐसे स्थानों पर बनाया गया है जहाँ वे स्पष्ट न दिखाई दे सकें। तान्त्रिकों के विरोध के बावजूद भी शिल्पकारों ने स्वयं इन में से अधिकतर मन्दिरों में गौरी और गणेश (माँ और बच्चे) की मूर्तियाँ बनाई हैं। आज भी उन क्षेत्रों के ग्रामीण लोगों को कुमारिका मन्दिर कहे जाने वाले इन मन्दिरों की अश्लीलता का बोध नहीं है। 'कुमारिका' का अर्थ है 'कुँवारी'। ये शब्द सुझाव देता है कि कुँवारियों को इन स्थानों पर नहीं आना चाहिए। सूर्यदेव का कोणार्क मन्दिर वास्तव में एक ऐसे राजा ने बनवाया था जो स्वयं तान्त्रिक था और मन्दिर को बनाने वाला मुख्य वास्तुकार भी गहन तान्त्रिक था जिसने अपनी पत्नी और पुत्र का त्याग कर दिया था। उसके मन्दिर में अभद्रतापूर्ण नग्न नृत्यों की मूर्तियाँ सुस्पष्ट बनाई गई हैं।

तान्त्रिकों के प्रभाव में मनुष्यों ने अपने आदिमाता-पिता-परम पिता परमात्मा और माँ आदिशक्ति को श्रद्धांजली आर्पित की। वास्तव में उन्होंने पावनता के सद्गुण के विरुद्ध अपराध किया। पावनता आदि माँ, आदिशक्ति की शक्ति है, परन्तु जहाँ-जहाँ भी तान्त्रिकों का राज्य था वहाँ महिलाओं का अपमान किया गया, उन्हें पुरुषों के क्रूर आनन्द का खिलौना और उनकी सम्पत्ति माना गया। इन सुन्दर मन्दिरों के सौन्दर्य को नष्ट करने वाली अश्लील मूर्तियों को देख कर इसे (तत्कालीन) जनता की स्वीकृति के रूप

में स्वीकार नहीं कर लिया जाना चाहिए। ये तो थोड़े से उन लोगों की राय थी जो सम्मोहन के वशीभूत होकर शासन करते थे और जिनका ये विश्वास था कि अश्लील मन्दिर बनवा कर उन्होंने यौन स्वच्छन्दता प्राप्त कर ली है। बहुत से सन्तों ने उस समय अश्लील साहित्य का और भय दिखाकर कार्य करवाने की विधियों का विरोध किया है। परमात्मा को लज्जित करने का प्रयत्न करने वाले ऐसे राजाओं के विरुद्ध विद्रोह के ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध हैं। बाद के समय में कबीर और गुरुनानक जैसे साहसिक कवियों ने इन तान्त्रिकों की निंदा करने के लिए अपनी लेखक प्रतिभा का उपयोग किया।

एक सुप्रसिद्ध पुराण के लेखक तथा प्राचीन आध्यात्मिक गुण सम्पन्न अवतरण श्री मार्कण्डेय के अनुसार इन आसुरी शक्तियों का बहुत बार वध करके इन्हें अवर्णनीय दण्डों का कष्ट उठाने के लिए नरक में डाला गया। नरक में सारे कष्ट भुगतने के बावजूद भी ये परमात्मा के सच्चे साधकों की मानीवय नैतिकता को बर्बाद करने के सूक्ष्म और धूर्त मार्ग खोजने से कभी बाज़ नहीं आते। जैसे कैदी जेल से छूट कर आते हैं, ये भी मनुष्य में धर्म-विवेक उत्पन्न करने वाली नैतिकता के विरुद्ध अश्लीलता का प्रक्षेपण करने के लिए बार-बार पृथ्वी पर लौट आते हैं। धर्म मनुष्य का आधार है। सृजन की गई हर वस्तु का अपना धर्म है और इसी धर्म के आधार पर यह जीवित रहती है। उदाहरण के रूप में स्वर्ण का अपना एक धर्म है कि इस पर धब्बे नहीं पड़ते। मानव के दस धर्म हैं, जो दस धर्मादेशों के नाम से जाने जाते हैं। ये मानव जीवन को पोषण प्रदान करते हैं। पवित्रता इनमें से महत्वपूर्ण है। कुण्डलिनी जागृति के माध्यम से मैंने सीखा है कि विकृत-यौन-सम्बन्ध धर्म नामक मानव पवित्रता के व्यासीय (सीधे) रूप से विरुद्ध है। यह मानव की विकास प्रक्रिया के विरोध में जाते हैं। समाज और धर्म के गुणों से ऊपर उठ कर (गुणातीत और धर्मातीत) बनने तथा विकसित होने और उत्क्रान्ति प्राप्त करने के लिए अपनी पवित्रता और धार्मिकता का पूर्णत: सम्मान करना आवश्यक है।

तान्त्रिक शैतान के वंशज होते हैं और ये निरंकुश शासकों, मनोवैज्ञानिकों या महान वैज्ञानिकों के रूप में जन्म ले सकते हैं। अपने प्रवचनों से ये हज़ारों लोगों को सम्मोहित कर सकते हैं और यहाँ तक कि नैतिकता एवं धार्मिक अध्यात्मिकता पर आधारित राष्ट्रों को ये अन्य देशों के विरुद्ध युद्ध करने के लिए विवश कर सकते हैं। वर्तमान काल में ऐसी बहुत सी हस्तियों ने भारत और पश्चिम में जन्म लिया है। ये भोले-भाले मनुष्यों को सम्मोहित कर रही हैं और अपने वश में लेकर धन बटोरने और यौनसन्तुष्टि के लिए अपनी तथाकथित आध्यात्मिक शक्तियों (सम्मोहन) द्वारा इनका दुरुपयोग कर रही हैं। परपीड़न कामुक लोगों की तरह से ये अपने वासनालोलुप अनुयायियों पर स्वामित्व स्थापित कर के उन्हें अपना दास बनाते हैं। आधुनिकीकरण के नाम पर नई विचारधारा के रूप में लाकर ये प्राचीन धर्म को घातक दिशा दे रहे हैं। जन स्वीकृति के नाम पर ये निर्लज्जता की शिक्षा देते हैं और इसने बहुत से समाजों, विशेष रूप से पाश्चात्य समाज, को सम्मोहित किया है। अपनी सृजनात्मक प्रतिभा, सूक्ष्म बुद्धि और विषय के पूर्ण ज्ञान से ये लोग श्रद्धापूर्वक अनुसरण की जाने वाली प्रथाओं को पूर्ण आसक्ति या पाखंडमय त्याग के प्राचीन दर्शन से चकनाचूर करने में सफल हो गये हैं। आजकल लोग प्राचीन स्वीकृत विचारों को चुनौती देने वाली हर विचारधारा को पढ़ते हैं। आज का मानव धर्म के प्राचीन आदेशों को नहीं मानता क्योंकि उसके पास इसके पूरे मापदण्ड मौजूद नहीं है और कोई इनकी वैधता को भी प्रमाणित नहीं कर सकता। मानवीय दुर्बलताओं को आश्रय और बढ़ावा देकर तान्त्रिकों के लिए मनुष्य की दुर्बलताओं पर अपने संक्रामक आक्रमण का प्रसार करने के लिए यह वातावरण बहुत अनुकूल है।

बाह्य त्याग के दिखावे में लिपटे हुए स्वच्छन्द यौन-सम्बन्धों के हास्यास्पद सिद्धान्तों की ये लोग शिक्षा देते हैं। इन स्वप्रमाणित धर्म समर्थकों ने धर्म विषय पर बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं, परन्तु यही वो लोग हैं जो धर्म को

नष्ट करने पर उतारू हैं। आधुनिक मानव की बुद्धि और शिक्षा के बाहुल्य के कारण सत्य को भी पुस्तकों के माध्यम से खोजा जाता है। अतः अपने दीक्षाकरण और पुस्तकों के माध्यम से ये आसुरी प्रतिभावान लोग मानव मनस (Psyche) में आसानी से चुपके से प्रवेश कर गये हैं। ये लेखक प्राचीन युग के वही तान्त्रिक हैं जो लोगों को चंगुल में फँसाने के नये तरीकों तथा अधिक ज्ञान के साथ लौट आए हैं। नये शिष्य बनाने और अपने सामान को बेचने के लिए ये लोग प्रसारण की आधुनिकतम तकनीक बनाते हैं। उनकी महान सफलता का श्रेय मुख्यतः आधुनिकतम तकनीक को जाता है जिसने विश्वभर में उनकी विधियों और शिक्षाओं को फैलाने में सीधे से सहायता की है। नियम क्योंकि देव-दूतों के लिए बने हैं, इन पुनर्जन्मित राक्षसों के लिए यह आसान कार्य है। अपने प्रवचनों या दीक्षित करने की पुरानी चालाकियों से अपने जाल में फँसाकर बिना किसी प्रयत्न के इन्होंने वर्तमान पीढ़ी को बेच दिया है। अपने नियन्त्रण में ली हुई आसुरी मृत-आत्माओं को अपने अनुयायियों में डालकर कुछ तान्त्रिकों ने तो अपनी युगों पुरानी कला का पुनर्क्रियान्वन कर लिया है।

दुष्टता की ओर मानव के झुकाव से आकर्षित होकर आज वातावरण में असंख्य आत्माएं मंडरा रही हैं। ऐसा लगता है जैसे इनकी आसुरी लहरियों से अभिभूत होकर पूरा विश्व इन भयानक शैतानी आत्माओं से भर गया हो। स्वयं को धार्मिक नेता या महान वैज्ञानिक कहने वाले ये तान्त्रिक ही पूरे विश्व की समस्याओं और हिंसा के लिए जिम्मेदार हैं। मृत आत्माओं की रहस्यमय शक्तियों से अनभिज्ञ सच्चे वैज्ञानिकों को मृत आत्माओं के दुरुपयोग से किए गये प्रयोगों के परिणाम दिखाकर उन्हें आसानी से मूर्ख बना दिया गया।

अपने और मानवीय चेतना की सीमाओं से परे के क्षेत्र के सत्य के प्रति जागरूक होने का यह अत्यन्त उपयुक्त समय है। परमेश्वरी चेतना के बिना

हम इन पुनर्अवतरित राक्षसों द्वारा रचित मनोवैज्ञानिक भ्रान्ति का अन्त नहीं कर सकते। जैसे हम ने देखा है, प्राचीन काल में तान्त्रिक लोग 'गर्भधारण पन्थ' (fertility cults) के माध्यम से अपनी शक्तियों को निर्देशित करते थे, आधुनिक काल में तन्त्रवाद को छुपाने के लिए ये भिन्न आवरणों का उपयोग करते हैं। बदनाम भारतीय कुगुरुओं के अतिरिक्त बहुत से तान्त्रिकों ने तिब्बती और नेपाली लामाओं के रूप में जन्म लिया है। प्राचीन काल के वाममार्गिओं की तरह से ये तन्त्ररचना करते हैं और अपने कर्मकाण्डों से इनकी पूजा करते हैं। ये अपने शिष्यों को गुप्तरूप से शिक्षा देने की प्रथा को दोहराते हैं, जहाँ ये उनके कामान्गों को उत्तेजित करते हैं। ये सारी प्रथाएं परमात्मा विरोधी हैं और इस प्रकार के तान्त्रिक दीक्षाकरण के शिकार लोगों की कुण्डलिनी को जागृत करना अत्यन्त कठिन है। उनकी कुण्डलिनी नहीं उठेगी और यदि उठ भी गई तो शीघ्र ही खिंच कर पावन अस्थि (मूलाधार) में लौट आएगी। ऐसे पीड़ित साधकों के लिए आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करना वास्तव में बहुत कठिन है। नरक के दृश्य की एक झलक देख लेना, चाहे वह स्वप्न में ही क्यों ना हो, उनके लिए सौभाग्य की बात होगी ताकि वो देख सकें कि वो किसका विरोध कर रहे हैं। इस युग के अन्त में, तान्त्रिक लोग यदि स्वयं को पूर्ण विनाश से बचाना चाहते हैं तो उन्हें चाहिए कि अपने भयानक अभ्यासों को पूरी तरह से त्याग दें। उन्हें आत्मसाक्षत्कार प्राप्त करने की आज्ञा तो नहीं दी जाएगी, परन्तु कम से कम वे स्थायी नरक से बच पाएंगे।

अध्याय 7

हठयोग और राजयोग

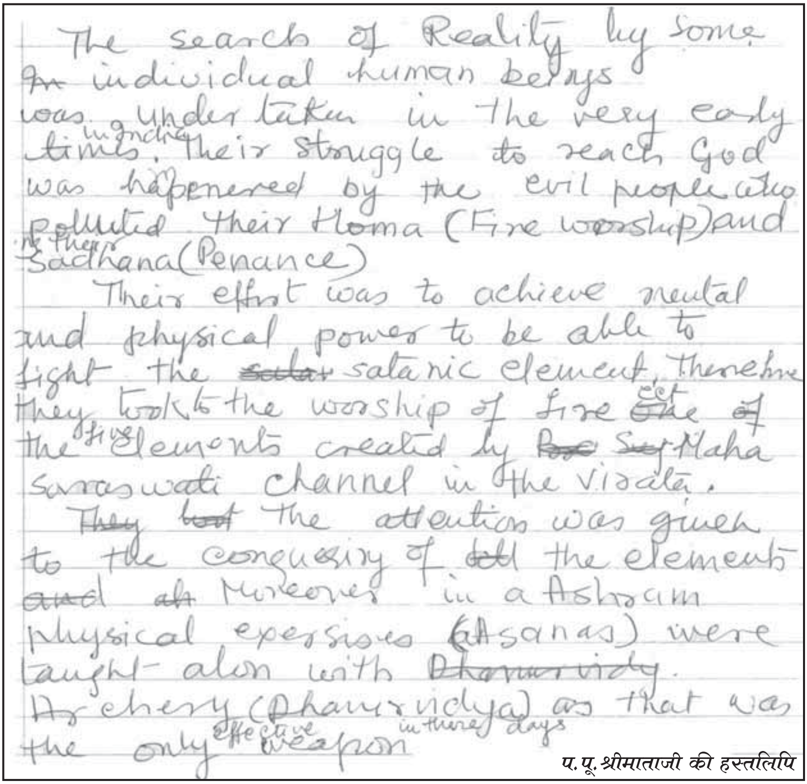
The search of Reality by some
individual human beings
was undertaken in the very early
times in India. Their struggle to reach God
was hampered by the evil people who
polluted their Homa (Fire worship) and
in their Sadhana (Penance)
Their effort was to achieve mental
and physical power to be able to
fight the satanic element, therefore
they took to the worship of fire etc of
the five Elements created by Maha
Saraswati channel in the Virata.
the attention was given
to the conquering of the elements
Moreover in a Ashram
physical exercises (Asanas) were
taught along with
Archery (Dhanurvidya) as that was
the only effective weapon in those days

प.पू.श्रीमाताजी की हस्तलिपि

भारत में मनुष्य के व्यक्तिगत स्वभाव के सत्य और वास्तविकता की खोज प्राचीनकाल से ही आरम्भ हो गई थी। दुष्ट लोग यज्ञों (होम) को दूषित कर के तपस्या (साधना) भंग कर देते और साधकों के परमात्मा प्राप्ति के संघर्ष में बाधा पड़ जाती। परन्तु उनके प्रयत्नों के कारण उन्हें इन आसुरी तत्वों का मुकाबला करने की मानसिक और शारीरिक शक्तियाँ प्राप्त हो जातीं और इन शक्तियों के प्रताप से उन्होंने विराट में स्थित महासरस्वती वाहिका पर

सृजित चार तत्वों तथा अग्नि की पूजा आरम्भ कर दी। इन तत्वों पर विजय प्राप्त करने पर उन्होंने अपना चित्त केन्द्रित कर लिया। इस के साथ-साथ आश्रमों में साधकों को आसन (व्यायाम) तथा धनुर्विद्या सिखाए जाते क्योंकि उन दिनों केवल तीर-कमान ही प्रभावशाली शस्त्र हुआ करते थे।

अच्छाई और दुष्टता की सेनाओं में पुरातन काल से ही संघर्ष चलता आ रहा है। अच्छाई को मानने वाले लोगों को जीवित रहने के लिए हमेशा अपनी रक्षा करनी पड़ती थी। राक्षसों के चंगुल से बचने के लिए सत्यसाधक (साधु) प्राय: जंगलों में पलायन कर जाया करते थे। इन सन्तों की रक्षा करने के लिए आदिशक्ति एक हज़ार बार अवतरित हुईं और इन पूर्ण अवतरणों के अतिरिक्त अंशावतारों में भी, पावन महिलाओं (सतियों) के रूप में भारत में अवतरित होकर उन्होंने अपनी शक्तियों की अभिव्यक्ति की। परशुराम के रूप में आदि-विष्णु के अवतरण ने शारीरिक और मानसिक शक्तियों की विधियों की चेतना का सृजन किया। इस प्रकार के आविष्कारों से साधकों ने ध्यान-धारणा की बहुत सी नई विधियाँ खोज निकालीं।

हठयोग

महासरस्वती वाहिका के सात मार्ग हैं जो किसी वाद्ययन्त्र की सात तारों की तरह स्थित हैं। सुषुम्ना की मध्य वाहिका के समीप पहला मार्ग गायत्री के नाम से जाना जाता है। तीनों लोकों को नमन करने से इस मार्ग पर उन्नति का आरम्भ हुआ : भूर् (पृथ्वी), यह ग्रह और वातावरण समेत इसके आस-पास का सभी कुछ। भुव: (स्वर्ग), अर्थात् स्वर्ग के आनन्द और वो सभी कुछ जो स्वर्गीय है। ब्रह्मा-जो सृजन की अमूर्त शक्ति हैं।

व्यक्तिगत रूप से बहुत से सन्तों ने कई-कई जीवन पर्यंत इस जोखिम भरे मार्ग का अनुसरण किया। इस मार्ग को केवल वही लोग अपना सकते हैं जो जीवन के अन्य सभी कार्यों को त्याग कर किसी आत्मसाक्षात्कारी गुरु के संरक्षण में पूर्ण ब्रह्मचारी जीवन व्यतीत करें। ऐसे साधकों की पूरी जीवन ऊर्जा

को उनका गुरु केन्द्रित एवं निर्देशित करता है, और इसके साथ-साथ इन्हें छः प्रकार के निम्नलिखित कठोर अभ्यास करने पड़ते हैं :

१) यम ....काम और लोभ का दमन

२) नियम ....पावन जीवन के नियम

३) प्रत्याहार ....गुरु की पूजा तथा मर्यादा (सम्मान) की विधियाँ

४) प्राणायाम ....श्वास साधन

५) आसन..........व्यायाम की शारीरिक मुद्राएं

६) मनन............ध्यान-धारणा

ये जान लेना आवश्यक होगा कि ये मार्ग परिवार और कर्तव्यों में बंधे गृहस्थों के लिए खुला नहीं था। वर्तमान समय में बहुत से गृहस्थों ने, विशेष रूप से पश्चिमी देशों के, शरीर के गठन और स्वस्थ सुधार के लिए हठयोग को अपना लिया है। योग सुन्दर और स्वस्थ शरीर का पर्याय बन गया है। इस प्रकार की एक-दिशा-आसक्ति अत्यन्त भयानक है क्योंकि अभ्यास करने वालों में असन्तुलन उत्पन्न करती है।

ऐसा व्यक्ति शारीरिक रूप से स्वस्थ और मानसिक रूप से चुस्त हो सकता है परन्तु वह भावनात्मक रूप से दिवालिया हो जाता है। ऐसे लोग शुष्क एवं झुलसे व्यक्तित्व के बन जाते हैं। इसके साथ-साथ चित्त का बहुत अधिक इस मार्ग (हठयोग) पर चलना साधक को अत्यन्त अहंकारी एवं क्रूर बना देता है।

प्राचीन काल में क्रूर और त्यागी हठयोगियों के बहुत से उदाहरण पाए जाते हैं। इनमें से एक विश्वामित्र थे, जो बहुत से सच्चे और सन्त स्वभाव गृहस्थों के पीछे पड़ गये। राजा हरिशचन्द्र, एक श्रेष्ठ राजा, को उन्होंने अत्यन्त क्रूरता से सताया। परशुराम के पुत्र से आरम्भ होकर क्रोधी स्वभाव सन्यासियों का निरन्तर प्रवाह बना रहा है। कल्पना करना भी कठिन है, कि परमेश्वरी-प्रेम-शून्य ऐसे लोग किस प्रकार मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

ये लोग कठोर संयम का पालन करते और भोग-विलास से दूर रहते। पारिवारिक सम्बन्धों या लिप्साओं को ये बिल्कुल नहीं मानते थे। इन्हें यदि कोई आत्मसाक्षात्कारी गुरु मिल जाता तो आवश्यक पितृप्रेम देकर वह इनकी उत्क्रान्ति को सन्तुलित करता। आदिगुरु दत्तात्रेय के अवतरण मछिन्द्रनाथ ने नाथ पन्थ का आरम्भ किया। दशकों बाद भी इस पन्थ के कुछ प्रचण्ड गुरु (अवधूत) हुए। इस पन्थ का पतन आरम्भ हो गया, यद्यपि तब जब तान्त्रिकों ने स्वयं को गुरुओं के रूप में थोंपना आरम्भ कर दिया और बहुत से स्थानों पर इस पन्थ पर कब्जा कर लिया। इन झूठ-मूठ के गुरुओं की महान सन्त कबीरदास ने अपनी कविताओं में बहुत आलोचना की है।

राजयोग

राजयोग का उद्‌भव हठयोग से है। इस प्रकार के अभ्यास की शैली में गुरु राजाओं की तरह रहते थे। वे राजाओं की तरह से वस्त्र धारण करते और प्रजा पर शासन किया करते। दत्तात्रेय के एक अन्य अवतरण, राजा जनक, एक ऐसे ही राजयोगी थे। अपने अन्तस में वे योगी थे परन्तु बाह्यरूप से वे राजाओं की तरह जीवन बिताते थे, यद्यपि उनमें इस प्रकार के जीवन के प्रति कोई लिप्सा न थी। किसी प्रकार के आसनों और प्राणायाम के अभ्यास के बिना परमात्मा की पूजा वे भिन्न प्रकार की नमन शैलियों के माध्यम से किया करते थे। पैगम्बर मोहम्मद भी आदिगुरु दत्तात्रेय के अवतरण थे। उनके चार विवाह हुए, परन्तु आन्तरिक जीवन में वे पूर्णत: निर्लिप्त थे। श्रीराम का अवतरण भी इसी वाहिका पर हुआ और उन्होंने दिव्य शासन का पथ प्रशस्त किया।

इस मार्ग का बारम्बार पतन होता रहा। उत्क्रान्ति के अपने प्रयासों से निराश होकर बहुत से, तथाकथित, राजयोगियों ने विकृत यौनाभ्यास का मार्ग अपना लिया। बिना अपने जीवन को परिशुद्ध किए, उन्होंने चक्रों को क्रियान्वित करने के लिए यौनोत्तेजना की सभी प्रकार की विधियों का उपयोग किया। बहुत से राजयोगियों ने तो नैतिकता की ओर ध्यान ही नहीं दिया और इनके स्थान पर शरीर की बहुत सी अनैतिक मुद्राएं खोज निकालीं।

अनात्मसाक्षात्कारी लोग यदि मशीनवत अंगुलियों की भिन्न मिश्रित मुद्राएं बनाएं तो इनका कोई महत्व नहीं है। वास्तव में तो आत्मसाक्षात्कार से पूर्व हाथों, पैरों या किसी अन्य प्रकार का शारीरिक नमन अर्थहीन है। परमेश्वरी शक्ति तो केवल आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति से ही प्रवाहित होती है। केवल तब व्यक्ति अपनी अंगुलियों के इशारे से दिव्य चैतन्य का निर्देशन कर सकता है। झूठ-मूठ के राजयोगियों ने बहुत सी मुद्राओं का अभ्यास किया और अपनी व्यग्र अवस्था में बहुत सी ऐसी मुद्राओं की शरण ले ली जो यौनोन्मुख थीं।

बहुत से ऐसे अधकचरे हठयोगी भी हुए हैं जो वास्तव में दुष्ट और भ्रष्ट, पाखण्डी थे। उन्होंने यौन-यौगिक मुद्राओं को आसनों के रूप में सिखाया और एक कुण्डलिनी पन्थ स्थापित किया और इसका वर्णन स्त्रीलिंग अवयव या योनि के रूप में किया। इन विकृत लोगों की भ्रष्टता का कोई अन्त न था। शालीनता मुझे उनके पतित अभ्यासों की अधिक व्याख्या करने से रोकती है, परन्तु 'तन्त्रवाद' नामक अध्याय में इन धूर्त लोगों के विषय में काफ़ी व्याख्या की गई है।

गायत्री मार्ग से उत्क्रान्ति की ओर बढ़ना अत्यन्त धीमी प्रक्रिया थी। गुरु बहुत धीमी गति से शिष्यों को कुण्डलिनी की स्वतः (सहज) जागृति की चेतना में उठने के लिए सहायता किया करते थे। गुरु क्योंकि मानव थे, अवतरण नहीं, वे कुण्डलिनी को खोपड़ी के शिखर पर स्थित ब्रह्मरन्ध्र भेदन के लिए आवश्यक गति से नहीं उठा सकते थे। उनके पास मात्र इतनी शक्ति थी कि कुण्डलिनी केवल धीमी गति से ही उठ सके।

ऐसे साधकों में उठने के लिए कुण्डलिनी को हज़ारों वर्ष लगते थे। वे बार-बार जन्म लेते और गुरुओं की खोज में निकल पड़ते, जो छः प्रकार के कठोर अभ्यासों के माध्यम से चक्र शुद्धिकरण में उनकी सहायता कर सकें। इनके इन अभ्यासों का वर्णन मैं पहले कर चुकी हूँ। इनके माध्यम से गुरु उनकी कुण्डलिनी उठाने का प्रयास किया करते थे। ये वास्तव में जोख़िम भरा कार्य था और इसमें सफलता प्राप्त करने के लिए उन्हें पूर्णतः समर्पित होना पड़ता था। गुरु गायत्रीमन्त्र की विधि अपनाते ताकि अपने शिष्यों को

मानसिक और शारीरिक रूप से शक्तिशाली बना सकें। सन्तुलन बनाने के लिए गुरु भावनात्मक पक्ष के शासक देव शिव की पूजा किया करते थे। यद्यपि आदिगुरु महासरस्वती वाहिका के सृष्टा हैं, परन्तु अपने जीवन में सन्तुलन के लिए हठयोगी महाकाली को पूजते थे। होम (हवन) के माध्यम से वे सर्वशक्तिमान परमात्मा के सृष्टा पक्ष, ब्रह्मदेव का आह्वान करते। इस पूजा से साधकों को ब्रह्मदेव का आशीर्वाद प्राप्त होता और परिणामस्वरूप आत्मसाक्षात्कार के पश्चात उन्हें तत्वों पर नियन्त्रण प्राप्त होता। जिन साधकों को महान गुरु प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता वे अपनी उत्क्रान्ति में पिछुड़ जाते।

बहुत से अन्य साधक सूर्य की पूजा किया करते थे। सूर्यनमन करके वे स्वर्णिम भूरे रंग की चमकदार त्वचा और डरावनी आँखें प्राप्त करते। ये लोग अत्यन्त क्रोधी स्वभाव के हो जाते और इन्हें शाप देने की शक्तियाँ प्राप्त हो जातीं। भस्मीसात करने के अभिशाप का आह्वान करके वे लोगों को भस्म कर सकते थे। कुछ ब्रह्मचारिणी और समर्पित महिलाएं अपने पतिओं की परमात्मा के रूप में पूजा करतीं। इनमें से कुछ पावनता की शक्ति से उन्नत होकर शाप देने की शक्तियाँ प्राप्त कर लेतीं।

किसी को भी अन्य लोगों के उद्धार में रुचि नहीं थी, वे तो केवल अपने पराक्रम का प्रदर्शन करते। इनमें निराश लोग विशेष रूप से हत्याओं और हिंसा का मार्ग अपना लेते। इन्होंने देवीकाली को मानव की बलि चढ़ानी शुरु कर दी। मृत्यु के बाद इन लोगों की आत्माएं विराट के दाएं पक्ष पर स्थित अतिचेतन क्षेत्र में प्रवेश कर जातीं।

भारत पावन भूमि (योग भूमि) है और यहाँ भूतकाल की तरह से वर्तमान समय में भी धर्म के समक्ष आई सभी चुनौतियाँ प्रभावहीन हो जाएंगी। भूतकाल में संचित पापों का वज़न यदि इस भूमि के पुण्यों से अधिक हो जाता है तो घटित होने वाले भयानक परिणामों के लिए भारत उत्तरदायी होगा।

अध्याय 8

सहजयोग

'सहजयोग' शब्द का यदि सन्धि-छेद कर लें तो इसके अर्थ को बेहतर समझा जा सकता है। 'सह' अर्थात् 'साथ', 'ज' अर्थात् 'जन्मा' और 'योग' अर्थात् 'मिलन' या 'तकनीक'। अत: सहजयोग का अर्थ हुआ, 'हम सब में उत्क्रान्ति की तकनीक'। हाथों, पैरों और मानवीय चेतना के साथ, बिना हमारे अपने किसी प्रयास के जैसे हमारा जन्म होता है, वैसे ही परमात्मा से स्वत: योग के लिए भी हमारा जन्म होता है, यह योग भी हमारे अन्दर बिना किसी प्रयास के घटित हो जाता है।

बहुत से लोगों को ये सत्य स्वीकार करना कठिन प्रतीत होता है कि स्वयं कोई प्रयास किए बिना उन्हें आत्मसाक्षात्कार मिल सकता है। परन्तु सहजयोग क्योंकि विकास प्रक्रिया है, इसे मानवीय प्रयास से प्राप्त नहीं किया जा सकता। यह तो जीवन की गतिविधि है। पृथ्वी में जब हम बीज डालते हैं, तो यह स्वयं अंकुरित होता है। छोटे से प्रथम अंकुर के रूप में पैदा होकर यह कोमल पौधा बनता है और फिर तना, डालियाँ, जड़ें और पत्तों वाले विशाल वृक्ष के रूप में विकसित होता है। इस स्वत: होने वाले विकास पर मानवीय प्रयासों का क्या प्रभाव होगा?

आत्मसाक्षात्कार का अर्थ यदि स्वयं से एकरूप होना है तो चाहे जितने मानवीय प्रयास किए जाएं यह अवस्था प्राप्त नहीं की जा सकती। धूल का एक कण यदि विद्यमान है तो है। हिमालय ने अपनी यह अवस्था प्राप्त करने के लिए क्या प्रयास किए थे? पशु इस तथ्य को स्वीकृत मान लेते हैं और अपने पशु अस्तित्व में बने रहने के लिए कोई प्रयत्न नहीं करते। विकास प्रक्रिया प्रकृति माँ का कार्य है और वे मानव प्रयास या मानव बुद्धि की सहायता के बिना ये कार्य करती हैं। मानव का अहं उसे इस सामान्य सत्य को

स्वीकार करने की आज्ञा नहीं देता।

पृथ्वी सूर्य के इर्द-गिर्द अत्यन्त तीव्र गति से घूमती है, फिर भी अत्यन्त प्रेम एवं सूझबूझ से वह हमें अंतरिक्ष में संभालती हैं। हमें जीवन प्रदान करने के लिए सूर्य चमकता है और रात को विश्व के दूसरी ओर चला जाता है ताकि हम सो सकें। यहाँ चाँद की भी अपनी भूमिका है और सितारों का भी स्थान है। सृजन कार्य में मानव के बिना किसी योगदान के, मनुष्य के लिए इतने सुन्दर व्यवस्थित मंच का सृजन किया गया है। सृजनात्मक तत्वों की सुव्यवस्थित कार्यशैली परमेश्वरी प्रेम के शाश्वत स्वरूप का स्पष्ट प्रदर्शन करती है। सृष्टि की इस एकता में ब्रह्माण्ड पूर्ण लय (मर्यादा) में घूमते हैं। पूरी सृष्टि संगीत की लय की तरह है और परमात्मा इस विकास के तथा इसमें मानव की भूमिका के शांत साक्षी हैं। अपनी स्वतन्त्रता और गरिमा में सृजन का आनन्द लेने की कुशलता प्राप्त करने के लिए मानव विकसित हुआ है। अपने निरंकुश संगीत के सम्वाहक के रूप में सृष्टा ने प्राणियों को अपनी भूमिका का चुनाव करने और अपने यन्त्र (शरीर तन्त्र) को परमेश्वरी पूर्णयन्त्र से लयबद्ध करने की स्वतन्त्रता प्रदान की।

आरम्भ में, जब सृष्टि का सृजन हुआ तो सर्वशक्तिमान परमात्मा (परब्रह्म) और उनकी शक्ति (आदिशक्ति) एक दूसरे से अलग हुए। परमेश्वरी शक्ति (आदिशक्ति) परमात्मा से अलग हुईं और परमात्मा की ओर अपनी वापिस यात्रा में उन्होंने एक के बाद एक ब्रह्माण्डों का सृजन किया। हमारे ब्रह्माण्ड में उन्होंने सौर परिवार का सृजन किया है और अन्त में विकास की भिन्न परिस्थितियों में जीवन को बनाए रखने के लिए उन्होंने मानव का सृजन किया। इस अवस्था में, पहली बार साक्षात सर्वशक्तिमान परमात्मा को प्रतिबिम्बित करने वाली आत्मा की एक झलक ने मनुष्य की चेतना में प्रवेश किया। इन दोनों व्यक्तित्वों (तत्वों), एक मानव और सीमित, दूसरा ईश्वरी और असीमित, का योग केवल मानव चेतना में ही सम्भव है।

अपनी सृजनात्मक और विध्वंसक शक्तियों के माध्यम से परमात्मा अपनी सृष्टि का सृजन और विनाश करते हैं। ये दोनों शक्तियाँ ऐसे ही हैं जैसे किसी कलाकार के हाथ में पैन्सिल और रबड़ होता है या हम परमात्मा की परिकल्पना उनकी अपनी मोटरकार के चालक के रूप में कर सकते हैं जो या तो गतिवर्धक को या गतिआरोधक (Accelerator and Brake) को दबाते रहते हैं। इन शक्तियों के उपयोग से अन्ततः वे मानव का सृजन करते हैं, जो समय के साथ-साथ सीखने वाला चालक बनता है। ऐसा होने पर परमात्मा कार की पिछली सीट पर चले जाते हैं और वह नौसिखिया उनके कड़े निर्देशन में कार चलाता है। नौसिखिया चालक आरम्भ में कई गलतियाँ करता है परन्तु अन्त में एक दिन वह मोटर चलाने की कला में निपुण हो जाता है। ऐसा होने पर शिक्षक सेवा-निवृत्त होकर मनुष्य को चालक का अपना स्थान ग्रहण करने देता है। इस उत्कर्ष अवस्था, आत्मसाक्षात्कारी की अवस्था, से नवशिक्षित चालक गतिवर्धक और अवरोधक के उपयोग को देखता है, जो वास्तव में उसके अपने अस्तित्व के अंग-प्रत्यंग है।

'सहज' का एक अन्य अर्थ है सुगम और स्वतः। सहजयोग की कार्य विधि अत्यन्त सुगम है, यद्यपि हमारे अन्दर इसके यन्त्र का संचालन बहुत जटिल है। आप यदि टेलीविज़न देखना चाहते हैं तो इसे चालू कर लेना अत्यन्त सुगम है, परन्तु इसके यन्त्र की कार्यशैली की व्याख्या करना अत्यन्त कठिन और जटिल है। इसकी कार्यशैली को समझने तथा उसकी व्याख्या करने के लिए योग्य इन्जीनियर की आवश्यकता है। सामान्य शब्दावली में इसकी व्याख्या कर पाना अत्यन्त कठिन है। टेलीविज़न का आनन्द उठाने का सबसे अच्छा तरीका ये है, कि उसे चालू करो, एक कार्यक्रम देखो और फिर उसकी यन्त्ररचना को समझने का प्रयत्न करो।

आत्मसाक्षात्कार के पीछे निहित जटिल यन्त्ररचना का भी यही सिद्धान्त है। मैं आपको यही देने के लिए आई हूँ। इसके लाभ का आनन्द

उठाने के लिए क्या आपको इसकी कार्यशैली को समझने की आवश्यकता है? अपने बच्चों के हित को सोचने वाली माँ की तरह मैं कहूँगी कि मैंने आपके लिए खाना बना दिया है। बिना इस बात की चिंता किए कि मैंने खाना किस प्रकार बनाया, क्यों न आप खाना खाकर इसका आनन्द उठा लें! आपको यदि वास्तव में भूख लगी है तो खाना खाना आरम्भ करें। परन्तु यदि वास्तव में आपको भूख नहीं है, आप केवल जिज्ञासु हैं, तो मैं क्या कर सकती हूँ? मैं आपको खाना खाने के लिए विवश नहीं कर सकती और न ही अपने बनाए भोजन के विषय में बातों या प्रवचनों से आपको भूख लगवा सकती हूँ। मैं ये आपके विवेक पर छोड़ती हूँ कि पहले खाना खाना है या भूख लगने तक इसकी बातें करनी है।

सर्वशक्तिमान परमात्मा और उनकी शक्ति के बीच पार्थक्य (अलग होना) की घटनाओं की श्रंखला इस प्रकार है :

* परमात्मा का निराकार पक्ष जो कभी प्रकट नहीं हुआ (अपरम्पार)
* मानव के अन्दर आत्मा रूप में प्रतिबिम्बित होने वाला परमात्मा का सर्वशक्तिमान पक्ष (परम्पार)
* परमात्मा का उनकी शक्ति, आदिशक्ति के रूप में अभिव्यक्त होने वाला पक्ष (अपार)
* आदिशक्ति अपने भिन्न अवतरणों की अभिव्यक्ति करती हैं (परम)

अपने तीन कार्य करने के लिए अपनी असीम ईश्वरी शक्ति (प्रणव) के माध्यम से आदिशक्ति तीन सीमित व्यक्तित्वों का सृजन करती हैं :

१. महाकाली के रूप में वे सृष्टि का सृजन और विनाश करती हैं।

२. महासरस्वती के रूप में वे ब्रह्माण्डों का सृजन करती हैं और अन्ततः पृथ्वी का सृजन।

३. महालक्ष्मी के रूप में वे इन दो शक्तियों को समग्र करती हैं और अपने प्रेम को प्रकट करने के लिए विकसित होती हैं।

अपनी तीन शक्तियों के सम्मिश्रण और क्रम-परिवर्तन के माध्यम से वे आयोजन करती हैं और अन्ततः मानव को अपने सृजन के सारतत्व (शिखर) के रूप में विकसित करती हैं। परस्पर प्रभावित करके ये शक्तियाँ मनुष्यों के शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक शरीरों की रचना करती हैं। पहले तीन शरीर सीमित (finite) हैं और अन्तिम शरीर का सृजन असीम (infinite) घटना है। विकास की ये शक्तियाँ सर्वप्रथम मानव को चुनाव की स्वतन्त्रता प्रदान करती हैं।

मानव के अन्दर सर्वशक्तिमान परमात्मा की सूक्ष्म रूप में अभिव्यक्ति होती है, उनका असीम स्वभाव दिव्य आत्मा के रूप में प्रतिबिम्बित होता है। दिव्य आत्मा के रूप में परमात्मा का ईश्वरी शक्ति (कुण्डलिनी) से योग मनुष्य के अन्तःस्थित कुण्डलिनी की सीमित स्वभाव वाली अवशिष्ट शक्ति के माध्यम से घटित होता है। मनुष्य के अन्दर इस ईश्वरी शक्ति की अभिव्यक्ति से मानव चित् का सृजन होता है, जो कुण्डलिनी जागृति द्वारा परिष्कृत होता है। आत्मसाक्षात्कार के समय ये चित् सामूहिक चेतना के असीम क्षेत्र को बेंधता है।

विकास प्रक्रिया में एक मछली को तो अन्य मछलियों में सबसे पहले भूमि की दहलीज़ पार करनी पड़ी होगी। सामूहिक आत्मसाक्षात्कार में भी यही सिद्धान्त लागू होता है। मानव विकास की हर मुख्य छलांग में कोई न कोई अवतरण जन्म लेकर विकास प्रक्रिया का नेतृत्व और पथ-प्रदर्शन करता है। जीवन की भिन्न अवस्थाओं के माध्यम से भिन्न युगों में पथ-प्रदर्शन के लिए जन्म लेने वाले अवतरण परमात्मा के भिन्न पक्षों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये सारी अवस्थाएं 'सहज' या 'स्वतः' घटित हुईं। अन्तिम और महत्वपूर्णतम अवस्था - 'सामूहिक आत्मसाक्षात्कार और सहजयोग की

अद्वितीय खोज' आधुनिक युग (कलियुग) का उपहार है। यह परमात्मा और मानव के बीच सम्पर्क की पराकाष्ठा है।

'अचेतन' सर्वशक्तिमान परमात्मा की चेतना है। यह दीपक की तरह है। एक दीपक जैसे दूसरे दीपक को ज्योतिर्मय कर सकता है वैसे ही एक आत्मसाक्षात्कारी को दूसरे व्यक्ति को ज्योतिर्मय करना है। सहजयोग के माध्यम से आरम्भ में व्यक्ति आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करता है और फिर अन्य लोगों को आत्मसाक्षात्कार देने की विधि सीखता है। केवल सहजयोग के माध्यम से ही कुण्डलिनी विज्ञान के पावन ज्ञान में कुशलता प्राप्त की जा सकती है।

सहजयोग के कुछ अत्यन्त सहज नियम हैं। इनकी तुलना किसी टेलीफ़ोन-सेवा के लिए अंशदान करने से की जा सकती है :

* यदि आपका सम्बन्ध नहीं जुड़ा है, तो आपको चाहिए कि सम्बन्ध जोड़ लें।
* यदि आपका सम्बन्ध नहीं जुड़ा है, तो सम्बन्ध जुड़े होने का दिखावा ना करें।
* यदि आपका तार नहीं जुड़ा और फिर भी बिना तार जुड़े टेलीफोन से यदि आप किसी को निरन्तर फोन मिलाते रहते हैं तो आपका टेलीफोन यन्त्र खराब हो सकता है।
* यदि आपका सम्बन्ध नहीं जुड़ा, या अतिमहत्वपूर्ण व्यक्ति (सर्वशक्तिमान परमात्मा) से भेंट की आज्ञा आपको नहीं मिली तो निरन्तर उनका नम्बर घुमाते रहने से आप उन्हें क्रोधित कर सकते हैं। सहजयोग में सच्चे और झूठ-मूठ के साधकों का भिन्न प्रकार से आकलन किया जाता है।

पुस्तकों में परमात्मा के विषय में पढ़ने वाले लोग पुस्तकों में लिखे

शब्दों से अभिभूत हो जाते हैं। वो ये नहीं महसूस करते कि शब्द तो 'मृत शब्द' हैं। परमात्मा को तो व्यक्तिगत अनुभूति से महसूस करना होगा। कोई यदि ये सोचता है कि उसे धर्मग्रन्थों का बहुत ज्ञान है तो ये इस बात का निश्चित चिन्ह है कि ऐसे व्यक्ति को बहुत जन्मों तक आत्मसाक्षात्कार प्राप्त नहीं होगा। इसके विपरीत जो लोग महसूस करते हैं कि वे बुद्धिवादी खोज के अन्त तक पहुँच गये हैं और जिन्हें परमात्मा के विषय में पढ़ने या अध्ययन करने में अब आनन्द नहीं आता, वही ऐसे लोग हैं जो बिना किसी प्रयास के सामूहिक चेतना के अज्ञात क्षेत्र में छलांग लगाते हैं।

आँखों में प्रेम के आँसू तथा प्रायश्चित का दिखावा करने वाले, विरह गीत गाने वाले भावनात्मक साधक अपने सामने खड़े हुए साक्षात् परमात्मा को नहीं पहचान पाते। रामायण के लेखक महाकवि तुलसीदास तीन बार अपने सामने खड़े साक्षात् श्रीराम को नहीं पहचान पाए!

महान अचेतन अवस्था, जिसमें हमने स्थापित होना है, का विवरण लिखना उस अवस्था को प्राप्त करने से कहीं भिन्न है। इसके विपरीत मंच (अवस्था) को बनाने वाले लोग आसानी से इस तक नहीं पहुँच सकते। मंच रचना में ही वे इतने व्यस्त हैं कि उनका चित् अचेतन क्षेत्र में, जिसकी रचना वे अपने विवरणों से करते हैं, छलांग लगा लेने के लिए स्वतन्त्र ही नहीं है।

जो लोग तथाकथित महत्वपूर्ण कार्यों में व्यस्त हैं वे भी अपने असीम अस्तित्व में प्रवेश करने में असमर्थ हैं। ये तो तभी घटित हो पाएगा जब मानव मस्तिष्क अपनी प्राथमिकताओं को ठीक कर लेगा। वास्तव में सारे महत्वपूर्ण कार्य सर्वशक्तिमान परमात्मा द्वारा किए जाते हैं, तो क्यों हम उनके कार्यों को करने का आग्रह करें? वायुयान या रेलगाड़ी में बैठकर क्या हम अपना सामान सिर पर उठा कर चलते हैं? निःसन्देह नहीं। जो लोग स्वयं को जिम्मेदार मानते हैं वे इस मूर्खता की अति में जा रहे हैं। ऐसे लोग दावा करेंगे कि परमात्मा उनके माध्यम से कार्य करते हैं और उन्हें परमात्मा के आदेशों

का पालन करना है। परन्तु वास्तव में क्या वे परमात्मा से जुड़े हुए हैं? क्या वे वास्तव में परमात्मा की इच्छाओं और उनके मस्तिष्क को समझते हैं? क्या अचेतन से उनकी घनिष्टता है और प्रतीकों के माध्यम से भेजे गए अचेतन के संदेशों का कूटानुवाद क्या वे कर सकते हैं?

बहुत से लोग परमात्मा को प्राप्त करने के लिए गहन प्रयास करते हैं। वे उसका नाम जपते हैं, परन्तु क्या उन्हें नाम जपने की आज्ञा परमात्मा ने प्रदान की है? लोगों के साथ समस्या ये है कि वे परमात्मा को स्वीकृत रूप से लेते हैं और उनके आशीर्वाद को अपना जन्मसिद्ध अधिकार मान बैठते हैं। क्या परमात्मा उनके इशारे और आवाज़ पर चलने के लिए हैं? जिस प्रकार ये धृष्ट साधक सर्वशक्तिमान परमात्मा से चित् (सम्मान) की माँग करते हैं, वह अत्यन्त आश्चर्यजनक है, मानो परमात्मा ने उनका कुछ लौटाना हो या वे किसी प्रकार से उनके ऋणी हों। वे एक प्रकार की 'श्रेष्ठता-मनोग्रन्थी' के शिकार होते हैं। परमात्मा के मानव अवतरणों को उनके जीवनकाल में मान्यता देने के अनिच्छुक ये लोग या तो उनकी हत्या कर देते हैं या उन्हें क्रूसारोपित कर देते हैं। अवतरण की मृत्यु के बाद यही लोग उनका मन्दिर या गिर्जा बनाने और उनका स्तुतिगान करने के लिए सबसे आगे खड़े होते हैं। ऐसे लोगों का अहं उन्हें मानव रूप में अवतरित किसी भी अवतरण को स्वयं से श्रेष्ठ मानने के लिए रोकता है। सम्भवत: अपनी हीन-भावना के कारण वे किसी अवतरण को स्वीकार करने से इन्कार करते हों। इस सत्य को वे स्वीकार ही नहीं कर पाते कि वे इतने अधम हैं कि किसी अवतरण के स्तर (ऊँचाई) पर पहुँच ही नहीं सकते।

अपनी अर्जित कृत्रिम धारणाओं के अनुसार ही लोगों की श्रद्धा होती है। उदाहरण के रूप में धनी व्यक्ति किसी निर्धन वातावरण में उत्पन्न अवतरण को स्वीकार नहीं कर पाता। बुद्धिवादियों की अवतरणों को स्वीकार कर लेने की सम्भावनाएं बहुत कम हैं। बुद्धि स्वीकार करने के मार्ग की बहुत बड़ी बाधा है

क्योंकि अपनी भौतिक खोज में मनुष्य जीवन-पर्यन्त बुद्धि पर ही निर्भर रहता है। वे बुद्धि के इस यन्त्र को छोड़ने के लिए तैयार नहीं है, जिसके साथ उन्होंने व्यापक प्रयोग किये हैं। केवल इतना ही नहीं आत्मसाक्षात्कार, परमात्मा और अवतरणों के विषय में साधकों के अपने दृढ़ विचार हैं, तो मानव द्वारा बनाए गये सांचे में परमात्मा किस प्रकार ठीक बैठ सकते हैं? वो जो हैं, हैं। मनुष्य की अस्पष्ट और विविध धारणाओं के अनुरूप बनने का आदेश परमात्मा को नहीं दिया जा सकता।

सबसे बड़े अपराधी तो वो लोग हैं, जो दुकान खोलकर 'परमात्मा बिकाऊ हैं' का विज्ञापन कर रहे हैं। उनकी ओर आकर्षित होने वाले लोग भी उनके सह-अपराधी बन जाते हैं। दोनों प्रकार के लोग अज्ञानता के शिकार हैं। स्वचेतना में अपने प्रयासों या अज्ञानता के माध्यम से जो सामूहिक अवचेतन या सामूहिक अतिचेतन क्षेत्र में प्रवेश कर गए हैं, उनकी कुण्डलिनी जागृत करना भी बहुत ही कठिन कार्य है। वो नहीं जानते कि जिन शक्तियों का उपयोग वो कर रहे हैं वे अन्य आत्माओं की हैं। ये मृत-आत्माएं सत्य स्वरूप पर हावी हो जाती हैं और वास्तविकता अज्ञान में छिपी रह जाती है। इन पर जब तक सामूहिक अवचेतन और अतिचेतन क्षेत्र के तथाकथित सहयोगियों का आक्रमण नहीं हो जाता तब तक अति-सम्वेदी व्यक्तित्वों (आत्माओं) का उपयोग करने वाले और स्वयं को शक्तिशाली समझने वाले इन लोगों को समझाना आसान नहीं है। ऐसे लोगों के अनुयायी भी उनके प्रभाव से नहीं बच सकते। अपनी दुर्दशा को महसूस करके इनमें से असंख्य लोग सहायता के लिए सहजयोग की तरफ़ बढ़े हैं। इनके मस्तिष्क में जब प्रकाश होता है केवल तब ये जान पाते हैं कि किस प्रकार इन्हें लूटा गया और धोखा दिया गया। ऐसे पीड़ित लोगों को सहजयोगियों की विशेष सहायता और चित् की आवश्यकता होती है। जैसा मैंने कहा है, इन लोगों को आत्मासाक्षात्कार देना कठिन कार्य है, आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करने में इन्हें बहुत समय लग सकता

है। ये लोग यदि पूरा सहयोग करें तभी सहजयोग इनका उद्धार कर सकता है। परन्तु यदि वे पूर्णत: समर्पित नहीं होते तो अचेतन (चैतन्य) को इनमें कोई रुचि नहीं रह जाती।

सभी प्रकार के शराबी और नशेड़ी लोगों को भी सहजयोग देना अत्यन्त कठिन होता है। वे अवचेतन संस्तर पर ही अटक जाते हैं तथा अपनी आदतों के दास होने के कारण उस दलदल से रेंगकर बाहर नहीं निकल सकते। सहजयोग ने निर्लिप्सा की शक्ति प्रदान की है। सहजयोग में आकर बहुत से लोगों ने अपनी स्थिति को पहचाना है और दासता की जंजीरों से मुक्ति पा ली है।

अपनी पावनता का सम्मान न करने वाले पुरुषों और महिलाओं का सहजयोग सम्मान नहीं करता। धर्म के नाम पर अपने शरीरों को कष्ट देने वाले और परिणाम स्वरूप दु:ख उठाने वाले या अहंकार की सन्तुष्टि के लिए कष्ट सह कर सुगठित और सुन्दर शरीर विकसित करने के प्रयास में सफ़ल होने वाले लोगों को भी सहजयोग में कोई विशेष महत्व नहीं दिया जाता। इनकी जीवन की गुणवत्ता में कोई अन्तर नहीं आता और वे उथले व्यक्तित्व ही बने रहते हैं। सहजयोग मानव शरीर को सर्वशक्तिमान परमात्मा का मन्दिर मान कर इससे प्रेम और सम्मान सिखाता है।

सहजयोग अचेतन (परम चैतन्य) का कार्य है, परन्तु कुछ मूर्ख लोग सोचते हैं कि वे परमात्मा को धोखा दे सकते हैं। बदले में उन्हें सहजयोग से धोखा मिलता है और स्वयं को पराजित पाकर वो हक्के-बक्के रह जाते हैं। सहजयोग का खेल अत्यन्त नटखट हो सकता है और बहुत सी चमत्कारी घटनाओं तथा बड़ी सीमा तक ठहाकेदार-परिहास का सृजन भी कर सकता है।

अध्याय 9

मानव में कुण्डलिनी का सृजन

कुण्डलिनी वो वीणा है जिस पर परमात्मा अपना प्रेम-संगीत बजाते हैं। यह वह सीढ़ी है जिस पर चढ़ कर साधक दहलीज़ को पार करके अगाध अचेतन में प्रवेश करता है। यह वह छलांग-पट्ट है, जो व्यक्ति को स्वतन्त्रता, शान्ति और आशिष के सागर में ऊँची उड़ान लेने में सहायता करता है। युगों पूर्व दिए गए वचन के अनुसार सर्वशक्तिमान परमात्मा के साम्राज्य में निवास तक पहुँचने के लिए कुण्डलिनी एक माध्यम है।

ध्यान-धारणा द्वारा चेतना की महान बुलंदियों पर पहुँचे प्राचीन सन्तों ने कुण्डलिनी के विषय में बहुत कुछ लिखा है। जनता से दूर जंगल की कुटियाओं में रहकर ध्यान-धारणा की स्थिति में उन्होंने अपने अन्दर कुण्डलिनी की कार्यशैली को देखा। भारतीय प्राचीन धर्मग्रन्थों में दिये गये विवरणों के अतिरिक्त तोराह (Torah), बाइबल और कुरान जैसी धार्मिक पुस्तकों में भी कुण्डलिनी का वर्णन 'अग्नि-वृक्ष' (The Fire Tree) के नाम से किया गया है। इन पुस्तकों में गुप्त भाषा के आवरण में लिपटे हुए बहुत से ऐसे संदर्भ हैं जिन्हें बहुत थोड़े लोगों ने समझा होगा। बाइबल में ईसामसीह के क्रूसारोपण के बाद उनके शिष्यों की 'माँ मेरी' से पहली भेंट के विषय में बताया गया है। बन्द कमरा, जिस में उनकी सभा हुई, तेज़ हवा (चैतन्य लहरियों) से भरा हुआ ता, उनके सिर के शिखर के ऊपर अलग-अलग प्रकाश ज्योतियाँ (अग्नि के शोले) दिखाई दे रही थीं और वे आदिशक्ति (चैतन्य) से अभिभूत थे। यह कुण्डलिनी के दृश्य का वर्णन है। बहुत से चीनी दार्शनिकों ने भी अपनी पुस्तकों में कुण्डलिनी का वर्णन किया है और यूनानी पुराणों में उन्हीं देवी-देवताओं को सूचीबद्ध किया गया है, जिनके नाम मैंने 'सृजन' नामक अध्याय में लिखे हैं। ज़ेन बौद्ध धर्म अत्यन्त स्पष्ट रूप से

सिखाता है, कि कुण्डलिनी विज्ञान ही बौद्ध ध्यान-धारणा का आधार है।

'कुण्डलिनी' शीर्षक भारतीय सन्तों ने प्रदान किया था। परमात्मा ने अपनी सृजित किसी भी चीज़ को कभी कोई नाम नहीं दिया। संस्कृत शब्द 'कुण्डल' का यह स्त्रीलिंग रूप है जिसका अर्थ होता है, 'मुद्रिकाएं' या छल्ले। प्राचीन धर्मग्रन्थों में यद्यपि इसके विषय में रहस्यमय भाषा में लिखा गया है, फिर भी सहजयोगी इसे आसानी से समझ सकते हैं। स्थूल वाक्यों के पीछे छुपे सूक्ष्म आशय और अर्थों को आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति देख और समझ सकते हैं। इन सभी महान धर्मग्रन्थों में बिखरे हुए कुण्डलिनी के विवरणों को संकलित और व्यवस्थित करने का यह उपयुक्त समय है। ये समझ लेना कि सभी धर्मों में सत्य की लौ कुण्डलिनी की बाती से ही जलती है, इन सभी पन्थों के धर्मानुयायिओं को ज्ञानबोध प्रदान करेगा। हर मनुष्य में वे (कुण्डलिनी) सर्व-सार्विक (युनिवर्सल) पहचान हैं।

कुण्डलिनी के ज्ञान का वर्णन अधिकतर संस्कृत धर्मग्रन्थों में किया गया है, परन्तु आधुनिक आवश्यकताओं के अनुरूप वैज्ञानिक शब्दावली का उपयोग करते हुए मैंने इसकी व्याख्या करने का प्रयत्न किया है। क्षणभर के लिए भी किसी को ये नहीं मान लेना चाहिए कि ज्ञान को किसी एक ही भाषा में सीमित या अभिव्यक्त किया जा सकता है। एक भाषा में की गई सत्य की अभिव्यक्ति किसी भी प्रकार से दूसरी भाषा को महत्वहीन नहीं बनाती। आगे चलकर मैं सूक्ष्म शक्ति कुण्डलिनी के विकास और अभिव्यक्ति का वर्णन लगभग चालीस वर्ष पूर्व सीखी हुई चिकित्सा शब्दावली (Medical Terminology) में करूंगी। इन वर्षों में पारिभाषिक शब्दावली में परिवर्तन के कारण नामों में यदि कोई अन्तर आ गया हो तो व्यक्ति को शब्दों के इस अन्तर की चिन्ता न करके इसके माध्यम से व्यक्त होने वाले ज्ञान पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

मानव भ्रूण में कुण्डलिनी का प्रवेश

माँ के गर्भ में मनुष्य जब भ्रूण अवस्था में होता है तो उसमें दो दिव्य घटनाएं घटित होती हैं :

१. आत्मा भ्रूण के हृदय में प्रवेश करती है और हृदय में धड़कन आरम्भ हो जाती है। इस धड़कन की लहरियाँ साढ़े-तीन कुण्डलों में गतिमान होती हैं, जैसा आकृति १ में दिखाया गया है।

२. इसी के साथ-साथ मस्तिष्क के रास्ते ईश्वरी शक्ति, 'प्रणव' भी भ्रूण में प्रवेश करता है।

खोपड़ी के आवरण से ढका हुआ मानव मस्तिष्क शंकुरूप (ऊपर से नोकीला) आकार का है। शिखर पर तालु अस्थि क्षेत्र में इसकी एक नोक (apex) है, एक आधार है और तीन सम-पार्श्वीय पक्ष हैं। मस्तिष्क की ये तीनों तहें भिन्न पदार्थों से बनी होती हैं और इनके भिन्न घनत्व होते हैं। अतः मस्तिष्क सम पार्श्व (त्रिपार्श्व) की तरह कार्य करता है। इसमें अपवर्तन (Refraction) का गुण है। ईश्वरी शक्ति जब मस्तिष्क में प्रवेश करती है तो यह तीन वाहिकाओं में विभाजित हो जाती है क्योंकि सूची-स्तम्भ (पिरामिड) की तरह से त्रिपार्श्वीय मस्तिष्क के भी तीन पक्ष होते हैं। इन तीन वाहिकाओं में से दो मस्तिष्क के दो पक्षों के माध्यम से प्रवेश करती हैं और एक वाहिका शिखर (Apex) से प्रवेश करती है। ये हृदय की धड़कन (ईश्वरी शक्ति) द्वारा सृजित मूलकुण्डल के पास से गुज़रती हैं और एक दूसरे को प्रभावित करके सात चक्रों का सृजन करती हैं। (देखिए आकृति १०)

आगे चलकर इन सूक्ष्म चक्रों की अभिव्यक्ति रीढ़ के बाहर की ओर स्थूल शारीरिक केन्द्रों के रूप में होती है। ये इस प्रकार हैं :

१. सहस्रार चक्र - मस्तिष्क में

२. आज्ञा चक्र - दृक तन्त्रिका (optic nerve) के कटाव बिन्दु (cross)

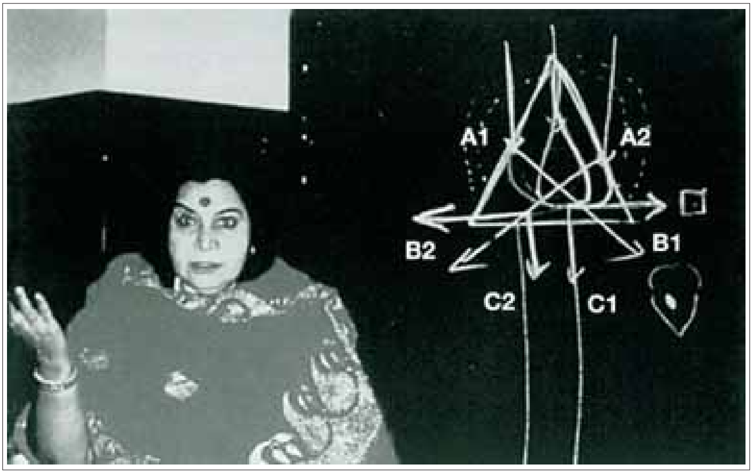

आकृति १०

पर

३. विशुद्धि चक्र - ग्रीवा केन्द्र को अभिव्यक्त करने वाला (cervical plexus)

४. अनाहत या हृदय चक्र - हृदय केन्द्र को अभिव्यक्त करने वाला (cardiac plexus)

५. नाभि या मणिपुर चक्र - सूर्य केन्द्र की अभिव्यक्ति करने वाला (solar plexus)

६. स्वाधिष्ठान चक्र - महाधमनी केन्द्र को अभिव्यक्त करने वाला (aortic plexus)

७. मूलाधार चक्र - श्रोणीय केन्द्र को अभिव्यक्त करने वाला (pelvic plexus)

ये शरीर के मुख्य केन्द्र हैं, जो स्वभाव से स्थूल हैं, परन्तु सभी के उपकेन्द्र हैं। भिन्न चक्रों के अध्यायों में मैंने इनका विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

कुण्डलिनी जब मस्तिष्क के शिखर में प्रवेश करती है, तालु अस्थि में

(ब्रह्मरन्ध्र ‘ब्रह्म’ अर्थात् - परमेश्वरी, ‘रन्ध्र’ अर्थात् छेद) तो मस्तिष्क के बीच से होती हुई ये सीधी रीढ़ में उतरती है।

मस्तिष्क के दो पक्षों से ईश्वरी शक्ति प्रवाहित होती है - जैसे आकृति १० में A1 और A2 के रूप में दिखाया गया है। ये दो मुख्य बिंदुओं पर अपवर्तित होती हैं और शक्तियों के समान्तर चतुर्भुज के अनुरूप ऊर्जा किरणे मस्तिष्क के ढालू पक्ष में पड़ती हुई दो घटकों में विभाजित हो जाती हैं। एक जोड़ा जो शरीर के बाहर जाता है उसे मैंने B1 और B2 कहा है तथा रीढ़ में प्रवेश करने वाले दूसरे जोड़े को मैंने C1 और C2 कहा है। ये बाद का जोड़ा रीढ़ के अन्दर ईड़ा और पिंगला नाड़ी के नाम से प्रसिद्ध बाईं और दाईं वाहिकाओं की रचना करते हैं। ये दोनों सूक्ष्म वाहिकाएं बाएं और दाएं अनुकम्पी नाड़ी तन्त्र की अभिव्यक्ति करती हैं।

ईश्वरी शक्ति मस्तिष्क के पीछे से प्रवेश करके रीढ़ में 'A' धारा के रूप में नीचे की ओर जाती है। भ्रूण में भी ईश्वरी शक्ति पीछे की ओर से 'B' धारा के रूप में प्रवेश करती है। ये दोनों ईश्वरी धाराएं मिलकर मध्य नाड़ी तन्त्र की रचना करती हैं। 'A' धारा मानव को स्वैच्छिक गतिविधियाँ करने की आज्ञा देती है, 'B धारा से वे अनैच्छिक गतिविधियाँ करते हैं।

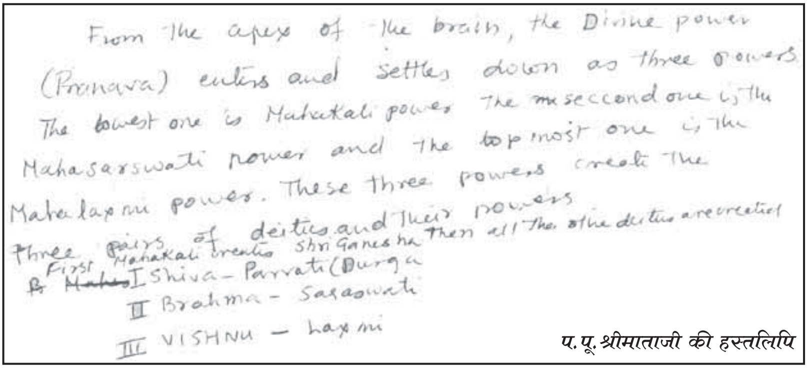
From the apex of the brain, the Divine power
(Pranava) enters and settles down as three powers
The lowest one is Mahakali power The ~~m~~ seccond one is the
Mahasarswati power and The top most one is the
Mahalaxmi power. These three powers create the
Three pairs of deities and Their powers then all the other deities are created
First Mahakali creates Shri Ganesha
I Shiva - Parvati (Durga)
II Brahma - Saraswati
III VISHNU - Laxmi

प.पू.श्रीमाताजी की हस्तलिपि

मस्तिष्क के शिखर से निकल कर मनुष्य के अन्दर प्रवेश करके परमेश्वरी शक्ति प्रणव तीन शक्तियों के रूप में स्थापित हो जाता है। सबसे

नीचे की शक्ति महाकाली हैं, दूसरी महा-सरस्वती शक्ति हैं और सबसे ऊपर की महालक्ष्मी शक्ति। ये तीन शक्तियाँ देवी-देवताओं के तीन जोड़े और उनकी सम्बन्धित शक्तियों का सृजन करती हैं। सर्वप्रथम महाकाली श्रीगणेश का सृजन करती हैं, तत्पश्चात अन्य सभी देवी-देवताओं का सृजन होता है। ये इस प्रकार है :

- शिव + पार्वती (दुर्गा)
- ब्रह्मा + सरस्वती
- विष्णु + लक्ष्मी

ये देवी-देवता श्रीकृष्ण और उनके साथ उनकी शक्ति राधा और भगवान ईसामसीह, जिनकी माँ मेरी (साक्षात् महालक्ष्मी) ही उनकी शक्ति हैं, की भी अभिव्यक्ति करते हैं। ये दोनों देवता क्रमशः श्रीविष्णु और श्रीगणेश के विकसित मानव अवतरण हैं। इस कार्य को करने के बाद प्रणव, जो तीन भागों में विभक्त है, मेरुरज्जु (रीढ़) में प्रवेश करता है। इसका सबसे नीचे का तन्तु (महाकाली या गौरी शक्ति) कुण्डलिनी रूप में त्रिकोणाकार अस्थि में लुप्त हो जाता है।

कुण्डलिनी के कुण्डल से श्रीगणेश को मूलाधार चक्र में स्थापित किया जाता है। मूलाधार चक्र कुण्डलिनी के निवास, मूलाधार से बाहर स्थित है। अपनी माँ कुण्डलिनी की पावनता की रक्षा करते हुए वे (श्रीगणेश) वहाँ विराजमान रहते हैं। हर मनुष्य की अपनी एक व्यक्तिगत कुण्डलिनी है, जो उसकी अपनी माँ है और वह उनका एकमेव पुत्र। वे गौरी हैं, जो सुप्त अवस्था में रहते हुए अपने एकमेव शिशु को 'पुनर्जन्म' (द्विज) या आत्मसाक्षात्कार प्रदान करने के लिए उपयुक्त क्षण की प्रतीक्षा करती हैं। अन्य देवी-देवता अपने-अपने भिन्न चक्रों पर विराजमान रहते हैं।

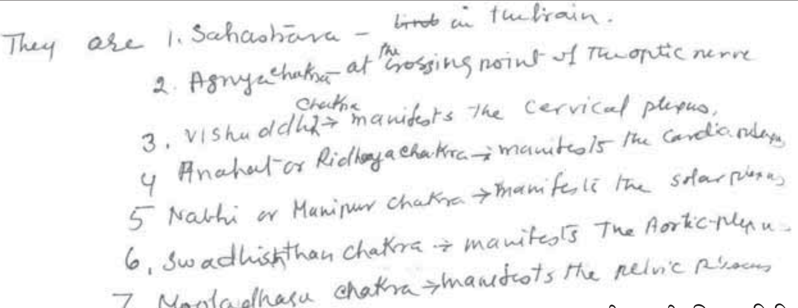
They are 1. Sahasrara - limb in the brain.
2. Agnyachakra - at the crossing point of the optic nerve
3. Vishuddhi chakra → manifests the cervical plexus,
4 Anahat or Ridhaya chakra → manifests the cardiac plexus
5 Nabhi or Manipur chakra → manifests the solar plexus
6. Swadhisthan chakra → manifests the Aortic plexus.
7. Mooladharu chakra → manifests the pelvic plexus

प.पू.श्रीमाताजी की हस्तलिपि

१. सहस्रार चक्र - साक्षात् श्रीआदिशक्ति

२. आज्ञा चक्र - ईसामसीह + उनकी माँ मेरी

३. विशुद्धि चक्र - श्रीकृष्ण + श्रीराधा

४. अनाहत चक्र - श्रीराम + श्रीसीता (दायाँ भाग), श्रीशिव + श्रीपार्वती (बायाँ भाग), श्रीजगदम्बा (दुर्गा) मध्य में

५. नाभि चक्र - श्रीविष्णु + श्रीलक्ष्मी

६. स्वाधिष्ठान चक्र - श्रीब्रह्मदेव + श्रीसरस्वती

७. मूलाधार चक्र - श्रीगणेश + श्रीगौरी

कुण्डलिनी के मूल कुण्डल के माध्यम से ये शक्तियाँ हृदय में हृदयाकाश नामक नई परिवर्तनशील यन्त्रावली का सृजन करती हैं। यह हृदय केन्द्र (cardiac centre) का प्रकाश है, जो पावन हृदय (sacred heart) के नाम से प्रसिद्ध है और हृदय के चहुँ ओर सात आभाओं (Auras) के रूप में प्रतिबिम्बित है। यह परमेश्वरी आत्मा की मनोदशा या मिजाज़ की सूचना प्राप्त करता है कि क्या आत्मा आदिशक्ति की लीला से प्रसन्न हैं या नहीं। यह परस्पर गुंथी हुई प्रणाली है जिसकी आगे चलकर विस्तारपूर्वक व्याख्या की जाएगी।

मध्य तंतु (महासरस्वती शक्ति) कुण्डलिनी के पावन अस्थि में लुप्त होने के फलस्वरूप सृजित रिक्त स्थान या भवसागर में रिसती (स्पन्दित)

होती है। सबसे ऊपर का तंतु (महालक्ष्मी शक्ति) सुषुम्ना नाड़ी के ऊपरी भाग के रूप में रहता है और पराअनुकम्पी नाड़ी प्रणाली के रूप में इसकी अभिव्यक्ति होती है, जब कि इस वाहिका का नीचे का भाग भवसागर के एक भाग के रूप में विद्यमान रहता है।

प्रणव के अवरोहण (नीचे उतरने) के साथ श्रीशिव के अतिरिक्त सभी देवी-देवता अपने सम्बन्धित चक्रों पर स्थापित हो जाते हैं। श्रीशिव आत्मारूप हैं और अनात्मसाक्षात्कारी लोगों में वे माँ के गर्भ में भ्रूण के साथ रहते हैं। उनकी शक्ति पार्वती का तादात्म्य आदिशक्ति की महाकाली शक्ति से है। आध्यात्मिक रूप रेखा (नक्शा) में मानव और आदिपुरुष के बीच यही मूल अन्तर है। इस प्रकार श्रीशिव और शक्ति (पार्वती) के परस्पर अलग होने की घटना घटित होती है और जब इनका पुनर्मिलन होता है तो यह घटना योग घटित होना कहलाती है।

भ्रूण हृदय में आत्मा का स्वागत करता है, हृदय क्षेत्र में प्रथम धड़कन को सुना जा सकता है। अनात्मसाक्षात्कारी लोगों के हृदय में शिव स्थापित हो जाते हैं। मानव शरीर के सृजन के लिए पार्वती, बिना अपने स्वामी के, देवी दुर्गा के रूप में अभिव्यक्त होती हैं। वे पावन हृदय (sacred heart) के मध्य प्रकोष्ठ में चली जाती हैं। भगवान विष्णु अपनी शक्ति और पत्नी लक्ष्मी के साथ नाभि चक्र में स्थापित हो जाते हैं। उनकी नाभि से कमल के आकार का एक चक्र निकलता है और वह नाभि चक्र के चहुँ ओर घूमने लगता है। ये स्वाधिष्ठान चक्र है और भगवान ब्रह्मदेव तथा उनकी शक्ति सरस्वती इस चक्र के शासक देवी-देवता के रूप में स्थान ग्रहण करते हैं।

ये घूमने वाला चक्र नाभि चक्र के चहुँ ओर घूमता हुआ भवसागर (भ्रमसागर) का सृजन करता है। विराट की विकास प्रक्रिया की दस अवस्थाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले अपने दस अवतरणों के माध्यम से भगवान विष्णु इस भवसागर को पार करते हैं। उनका सातवां अवतरण श्रीराम

के रूप में हुआ, जो अपनी शक्ति श्रीसीता के साथ हृदय चक्र के दाएं भाग में निवास करते हैं। श्रीराम पूर्ण-पुरुष (मर्यादा पुरुषोत्तम) के प्रतीक रूप में अवतरित हुए। श्रीविष्णु के आठवें अवतरण श्रीकृष्ण थे, जो अपनी शक्ति राधा के साथ विशुद्धि चक्र पर निवास करते हैं। मानव रूप में श्रीकृष्ण आदि-पुरुष (विराट) की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति थे। उन्होंने हमें सिखाया कि 'सृजन' ईश्वरी शक्ति की लीला मात्र है।

विशुद्धि से ऊपर मस्तिष्क में, जहाँ दृक तन्त्रिकाएं (optic nerves) एक दूसरे को पार करती हैं, आज्ञा चक्र है, जिसमें भगवान ईसामसीह हर मनुष्य में निवास करते हैं। वे परमात्मा-पुत्र सिद्धान्त की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति हैं। उनके शरीर की रचना दिव्य व्यक्तित्व श्रीगणेश के एकमात्र भाई श्रीकार्तिकेय के शरीर से की गई। यद्यपि वे मानव रूप में अवतरित हुए थे, उनका पुनर्जन्म उनके शरीर के दिव्य-तत्व के कारण सम्भव हुआ। वैकुण्ठ अवस्था में श्रीकृष्ण और राधा के एकमेव पुत्र महाविष्णु के रूप में उनका सृजन किया गया था। श्रीविष्णु का नौवां अवतार श्रीबुद्ध या कोमलावतार कहलाया।

सहस्रार चक्र (मस्तिष्क का तालु क्षेत्र) महामाया (महाभ्रान्ति) नाम से प्रसिद्ध आदिशक्ति द्वारा शासित है। वे श्रीविष्णु के दसवें और अन्तिम अवतरण समष्टि पुरुष (collective being) श्री कल्कि की शक्ति हैं, जिन्हें अभी अवतरित होना है।

परानुकम्पी नाड़ी तन्त्र महालक्ष्मी शक्ति की स्थूल अभिव्यक्ति है। महालक्ष्मी शक्ति, पहले सहस्रार चक्र के तालु क्षेत्र पर अभिव्यक्त होती हैं और फिर अस्पष्ट नाड़ी (vagus nerve) बनने के लिए चली जाती है। कुण्डलिनी जब त्रिकोणाकार अस्थि में प्रवेश करती है तो अस्पष्ट नाड़ी के बाद हर मनुष्य की मध्य वाहिका (सुषुम्ना नाड़ी) पर अन्तराल (रिक्त स्थान) का सृजन होता है।

इस भवसागर में ब्रह्मा, विष्णु और महेश (शिव) से रचित आदिगुरु को

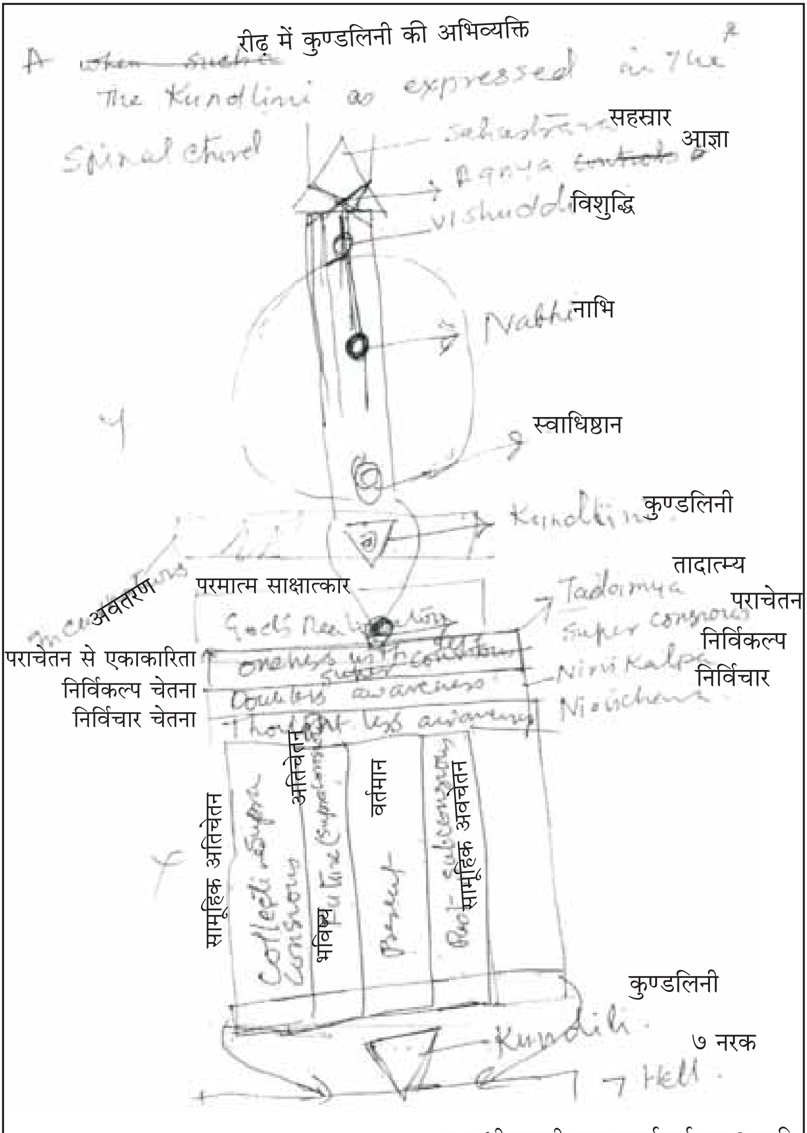

प.पू.श्रीमाताजी द्वारा बनाई गई मूल आकृति

आकृति ११

स्थापित किया जाता है। ये आदिगुरु 'दत्तात्रेय' के नाम से प्रसिद्ध हैं। राजा जनक, आदिनाथ, मच्छिन्द्रनाथ, ज़ोरास्ट्र, गुरुनानक और शिर्डी के साईंनाथ जैसे गुरुओं और पैगम्बरों के रूप में आदिगुरु ने बहुत से मानव जन्म लिए। ये देवता मनुष्य की अपने अन्त:स्थित भवसागर (भ्रान्ति सागर) को पार करके मोक्ष प्राप्त करने में सहायता करते हैं।

चक्रों का सृजन पंचतत्वों (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश) से किया जाता है जो पाँच प्रकार की भौतिक शक्तियों से परिवर्तित होते हैं। ईश्वरी शक्ति कुण्डलिनी के मूल-कुण्डल और महाकाली, महासरस्वती और महालक्ष्मी की तीन शक्तियाँ, गोल घण्टाकार पुष्प की तरह दिखाई पड़ने वाले ढाँचे का सृजन करती हैं। (देखिए आकृति १२)

मेरुदण्ड (रीढ़) के बाहर की ओर विद्यमान सूक्ष्म ईड़ा और पिंगला नाड़िओं से बाएं और दाएं अनुकम्पी नाड़ी तन्त्र की अभिव्यक्ति होती है। ये तन्त्र मेरुदण्ड के बाहर रीढ़ के साथ-साथ विद्यमान हैं और एक गोल ग्रन्थितन्तु श्रंखला की रचना करते हैं। ये रीढ़ के आधार पर स्थित त्रिकोणाकार गुदास्थि के साथ चलते हैं। त्रिकोणाकार अस्थि के अन्त में, थोड़ा सा नीचे, ये परस्पर मिलते हैं और मूलाधार चक्र के इर्द गिर्द एक वृत्त की रचना करते हैं। ये अन्तिम और एकमात्र चक्र है जिसे रीढ़ या कपालीय अस्थि (cranial bone) के बाहर स्थापित किया गया है। सभी चक्र अपने शासक देवी-देवताओं द्वारा नियन्त्रित हैं और ग्रन्थिकातन्तुओं के रूप में इनकी स्थूल अभिव्यक्ति होती है। सभी अवयव ग्रन्थिका-तन्तुओं के माध्यम से ही नियन्त्रित प्रतीत होते हैं।

आरम्भ में ही ये स्वीकार कर लेना आवश्यक होगा कि चिकित्सा वैज्ञानिकों द्वारा सृजित शब्दावली परमेश्वरी प्रकृति की व्याख्या करने के लिए अपर्याप्त है। इस पुस्तक में वर्णित ज्ञान भी स्वभाव से आत्मनिष्ठ (subjective अलौकिक) है, अत: इसे आत्मपरक (अलौकिक) दृष्टि से ही

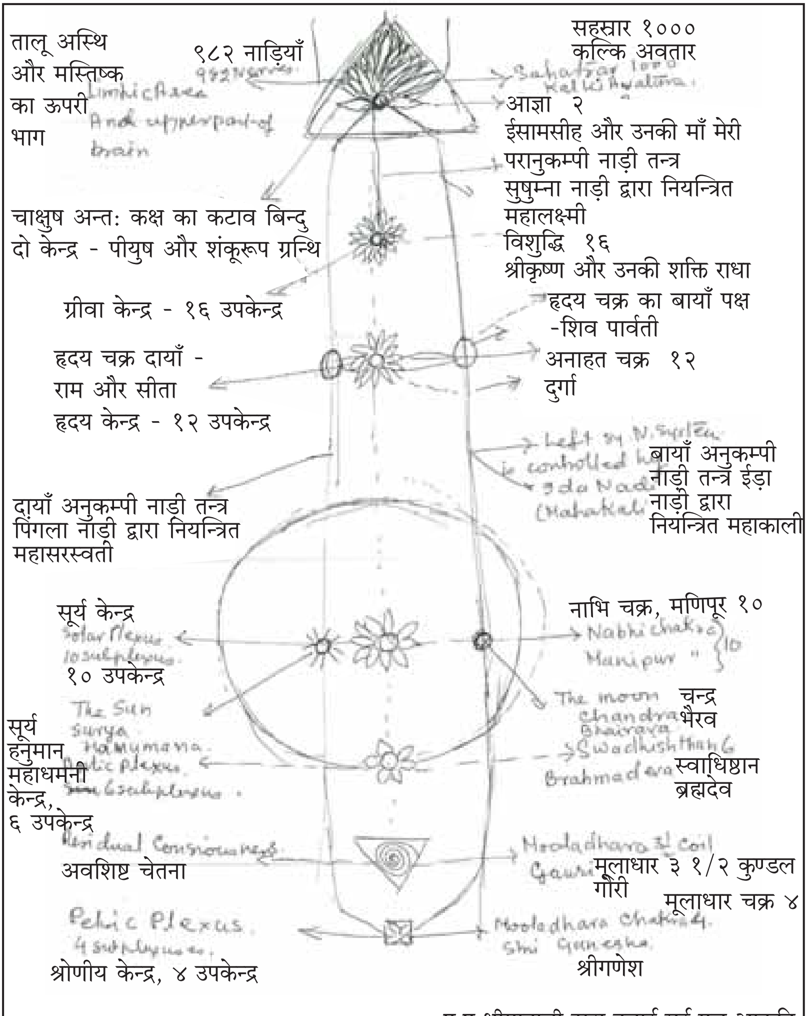

प.पू.श्रीमाताजी द्वारा बनाई गई मूल आकृति

आकृति १२

देखा जाना चाहिए। 'परानुकम्पी' और 'अनुकम्पी नाड़ी प्रणाली' दोनों स्वचालित नाड़ी तन्त्र की श्रंखलाएं, शब्दों के उपयोग का मेरा पूरी तरह से वो अभिप्राय नहीं है जैसे चिकित्सा वैज्ञानिक समझते हैं। इससे एक कदम आगे जाकर मैं कहूँगी कि दोनों प्रणालियों द्वारा शरीर के अन्दर ईश्वरी शक्ति से

सम्बन्धित किए जाने वाले कार्यों के अनुरूप इन्हें विभाजित किया जाना चाहिए।

स्वायत्तशासी नाड़ी प्रणाली (The Autonomous Nervous System)

कार्य के अनुरूप स्वायत्तशासी प्रणाली को इसके ईश्वरी स्वभाव द्वारा समझा जाना आवश्यक है। ईश्वरी प्रेम की सूक्ष्म शक्ति की अभिव्यक्ति और अन्ततः आत्मसाक्षात्कार का आशिष प्रदान करने के लिए स्थूल वाहिकाएं विद्यमान हैं। आदिशक्ति जब मानव को अपनी शक्ति (प्राण) से परिपूर्ण करना चाहती हैं तो मनुष्य के उपयोग के लिए वे इसे पराअनुकम्पी गतिविधि के माध्यम से प्रवाहित करती हैं। मनुष्य इस प्राण को जब किसी प्रयास के लिए या आपात स्थिति का सामना करने के लिए उपयोग करता है तो यह अनुकम्पी गतिविधि का कार्य होता है। कुछ देर दौड़ कर व्यक्ति अपनी हृदय धड़कन की गति को बढ़ा सकता है। इस स्थिति में आपात स्थिति की आवश्यकता पूरी करने के लिए प्राण का उपयोग होता है। परन्तु (प्रयास करके) हृदय की गति को घटाया नहीं जा सकता, क्योंकि यह कार्य केवल परानुकम्पी गतिविधि के माध्यम से ही हो सकता है। मस्तिष्क (सहस्रार) में निवास करने वाली केवल आदिशक्ति ही हृदय की गति को कम कर सकती हैं।

हमें ये बात स्पष्ट समझ लेनी चाहिए कि एड्रेनेलिन (अधिवृक्क, Adrenalin) या ऐसीटिलकोलिन रसायन (Acetylcholine) क्यों और कैसे भिन्न प्रकार से कार्य करते हैं। परिस्थितियों के अनुरूप इनमें से कोई भी रसायन शरीर के किसी विशेष अवयव को शिथिल या संकुचित कर सकता है। अनुकम्पी नाड़ी तन्त्र की गतिविधि से यदि हृदय रक्तधमनियाँ फैल सकती हैं तो इसी गतिविधि से अनुकम्पी नाड़ी तन्त्र द्वारा स्रावित एड्रेनेलिन रसायन द्वारा धमनियाँ प्रायः संकुचित भी हो जाती हैं। परानुकम्पी नाड़ी तन्त्र द्वारा भुजाओं की मांसपेशियाँ यद्यपि संकुचित भी हो जाती हैं, परन्तु कुल मिलाकर इससे मांसपेशियों का विस्तार होता है। दोनों प्रकार के कार्य

एकदूसरे के विपरीत प्रतीत होते हैं, परन्तु गतिविधि के लक्ष्य और उद्देश्य के नज़रिए से इन दो प्रणालियों के कार्यों को यदि समझ लिया जाए तो दोनों शैलियों के कार्य को आसानी से समझा जा सकता है। अनुकम्पी नाड़ी तन्त्र एक प्रकार की स्नायु प्रेरणा (Nerve Impulse) भेजता है और परानुकम्पी नाड़ी तन्त्र भिन्न प्रकार की स्नायु प्रेरणा भेजता है। ये अन्तः प्रेरणाएं संकुचित करें या विस्तृत, गतिविधि को घटाएं या बढ़ाएं, परन्तु दोनों प्रणालियों की अभिव्यक्ति का उद्देश्य या तो गतिशील करना होता है और या दिशा परिवर्तन करना। ये अवयव में ऊर्जा स्रावित करती हैं या अवयव के अन्दर विद्यमान ऊर्जा का उपयोग करती हैं। चेतन गतिविधिओं के मानवीय प्रयासों और किसी असाधारण कार्य के लिए किये गये प्रयास से भी, अनुकम्पी गतिविधियाँ गतिशील हो उठती हैं।

यद्यपि परानुकम्पी नाड़ी तन्त्र स्वतः कार्य करता हुआ प्रतीत होता है परन्तु किसी अवयव को विस्तृत या संकुचित करने का निर्णय उन देवी-देवताओं द्वारा किया जाता है, जो हर अवयव की आवश्यकता की देखभाल करने के लिए ज़िम्मेदार हैं।

अन्य सभी विज्ञानों की तरह चिकित्सा विज्ञान भी वस्तुनिष्ठ (objective) ज्ञान है, अतः यह अपूर्ण है और काफ़ी हद तक इन प्रणालियों के विषय में अस्पष्ट भी है। रीढ़ के अन्दर प्रवाहित होने वाली ईश्वरी शक्ति की ऊर्जा को दिखाना अत्यन्त कठिन है क्योंकि ये ऊर्जा सूक्ष्म है और बाह्य दृष्टि के लिए अदृश्य भी है (बाह्य चक्षुओं से इसे देखा नहीं जा सकता)। केवल आत्मचक्षु विकसित हो जाने के बाद ही इन ऊर्जाओं को समझा जा सकता है।

ये सभी कुछ दुरूह (कठिन) प्रतीत हो सकता है। परन्तु सहजयोग के हमारे प्रयोगों में बहुत से लोगों ने कुण्डलिनी को पावन अस्थि नामक त्रिकोणाकार अस्थि में धड़कते हुए देखा है। अपनी इन्हीं आँखों से भी

कुण्डलिनी के आरोहण को देखा जा सकता है। स्टेथॉस्कोप से भी इन धड़कनों को रिकार्ड किया जा सकता है, यद्यपि ये काफ़ी हल्की होती हैं। सिर के शिखर पर साधक स्वयं कुण्डलिनी की धड़कन को महसूस करता है। ऐसे बहुत से शरीरिक प्रमाण हैं जिन्हें लोगों ने, उन लोगों ने भी स्वयं अपनी आँखों से देखा है जो आत्मसाक्षात्कारी नहीं हैं। जिनकी कुण्डलिनी उठाई जाती है उन लोगों की पुतलियाँ छोटे बच्चों की पुतलियों की तरह फैल जाती हैं और इस प्रकार ये परानुकम्पी गतिविधि की ओर संकेत करती हैं। चिकित्सा विज्ञान के लिए पुतलियों का फैलना विवादास्पद विषय है, कि यह परानुकम्पी गतिविधि है या अनुकम्पी गतिविधि।

बचपन में जब अहम् और प्रति अहम् पूर्णतः विकसित नहीं हुए होते और जब तालु-अस्थि अभी काफ़ी कोमल होती है तो परानुकम्पी गतिविधि के कारण पुतलियाँ फैलती हैं। बच्चे की आयु बढ़ने के साथ-साथ अहम् और प्रति अहम् पूर्ण विकसित होते हैं और तब पुतलियों का फैलना अनुकम्पी गतिविधि बन जाता है क्योंकि तब पुतलियाँ अंधेरे के अनुरूप व्यवस्थित होने लगती हैं। पुतलियों का संकुचन भी अनुकम्पी है क्योंकि दृकतन्त्रिकाएं ईश्वरी शक्ति प्रणव का उपयोग कर रही होती हैं। मोटे तौर पर यदि कहा जाए तो, स्वभाव से मानवीय, अनुकम्पी नाड़ी तन्त्र ही उन सामान्य या असामान्य गतिविधियों का कारण बनता है जिनमें मनुष्य लिप्त होते हैं और जिन्हें अपने चेतन या अचेतन मस्तिष्क के माध्यम से वे कर सकते हैं। जब भी ऊर्जा प्रवाह स्वतः हो तो यह ईश्वरी स्वभाव का होता है और इसके लिए परानुकम्पी नाड़ी तन्त्र गतिशील हो उठता है।

अहम् और प्रति अहम् का विकास

जैसा आकृति १० में दर्शाया गया है, मस्तिष्क त्रिकोणाकार है और ईश्वरी शक्ति (A1 और A2) की किरणें जो मस्तिष्क के ढालू भागों के दोनों ओर पड़ती हैं, इनमें दो भौतिक घटनाएं घटित होती हैं :

पहली - ये किरणें ढलावदार क्षेत्र पर सीधी पड़ने के बाद मस्तिष्क में प्रवेश करती हैं। परिणाम स्वरूप पहली घटक शक्ति (C1 और C2) मस्तिष्क में प्रवेश करती है और दूसरी घटक शक्ति (B1 और B2) मस्तिष्क से बाहर आती है। बाद में, जब मस्तिष्क में आज्ञा चक्र पर शक्ति की ये दोनों रेखाएं एकदूसरे को काटती हैं तो यही प्रक्रिया (Phenomenon) पुनर्घटित होती है। भिन्न स्तरों पर भिन्न घनत्वों के कारण मस्तिष्क में हुए अपवर्तन (मुड़ाव) के फलस्वरूप शक्ति रेखाओं की परस्पर काटने की घटना घटित होती है। बाह्य मनोवेगों के प्रभाव में जब मानव चित् प्रतिक्रिया करता है तो मस्तिष्क से बाहर जाने वाले दोनों घटक (B1 और B2) मानव चित् को शरीर से बाहर ले जाते हैं। जब बच्चा उत्पन्न होता है, तो माँ, किसी पशु की तरह से, अपनी अन्त:प्रेरणा द्वारा बच्चे की देखरेख आरम्भ कर देती है। बच्चा माँ के स्तनों से दूध पीता है और उसके सानिध्य के आनन्द की अनुभूति करता है। माँ जब बच्चे को एक स्तन से हटाकर दूसरे स्तन पर ले जाने लगती है तो बच्चे को आघात लगता है और वह नाराज़ होता है। बच्चे के मस्तिष्क में यह प्रतिक्रिया विपरीत दिशाओं में बढ़ने लगती है। इस प्रकार मस्तिष्क में अहम् धीरे-धीरे गुब्बारे की तरह फूलने लगता है। बच्चे के इस प्रतिरोधी व्यवहार और अहम् की ज़िद के लिए माँ बच्चे को डाँटती डपटती है और इस प्रकार बच्चे के मस्तिष्क में प्रति अहम् (संस्कारों) का सृजन होता है। संस्कार (बंधन) प्रति अहम् का सृजन करते हैं और गुब्बारे के आकार का एक ढाँचा मस्तिष्क के दाएं भाग में विकसित होने लगता है। मस्तिष्क के बाईं ओर अहम् और दाईं ओर प्रतिअहम् तब तक बढ़ते चले जाते हैं जब तक वे सिर के शिखर पर स्थित कोमल अस्थि (तालु) को ढक नहीं लेते। पाँच या छः वर्ष की आयु तक तालु अस्थि पूरी तरह से कठोर हो जाती है।

अहम् और प्रतिअहम् का नियन्त्रण आज्ञा चक्र द्वारा होता है। तीनों शक्तियों के मिलन बिंदु, जहाँ दृक तन्त्रिकाएं (दृष्टि नाड़ियाँ) एक दूसरे को

पार करती हैं, पर यह सूक्ष्म चक्र स्थापित किया गया है। अहम् और प्रतिअहम् के गुब्बारों की बढ़ोतरी विशुद्धि चक्र से आरम्भ होती है। पूर्णत: विकसित होने पर अहम् सिर की बाईं ओर कान की सीध (रेखा) में फैलता है और मस्तिष्क के सामने के भाग की ओर बढ़ता है। सोचने और योजनाएं बनाने के फलस्वरूप ये विकसित होता है। मनुष्य के कपाल के अन्दर मस्तिष्क का विस्तार और आकार बड़ी सीमा तक बन्दर के मस्तिष्क से भिन्न है। बन्दर का मस्तिष्क तिरछा और आकार में छोटा होता है क्योंकि बन्दरों में अहम् का विकास बहुत कम होता है। सोचने और योजनाएं बनाने की गतिविधियों द्वारा पूर्व चेतन मस्तिष्क (चेतनमन) अपशेष पदार्थों से भाप (धुंआँ) उत्पन्न करता है, जो अहम् के रूप में एकत्र हो जाता है।

मस्तिष्क को बन्धनग्रस्त करने वाले सभी तत्व प्रतिअहम् में एकत्र हो जाते हैंऔर प्रतिअहम् दाएं कान के पीछे विकसित होकर पीछे की ओर से सिर की ओर बढ़ते हुए मस्तिष्क के पीछे के पूरे भाग पर छा जाता है। व्यक्ति के सारे, अच्छे और बुरे, अनुभव अवचेतन मस्तिष्क (सुप्त मन) में एकत्र हैं और भावनाओं और अनुभूतियों से सम्बन्धित गतिविधियों द्वारा उत्सर्जित धुआँ प्रतिअहम् का सृजन करता है। इस प्रकार पूर्वचेतन मस्तिष्क (चेतन मन) और अवचेतन मस्तिष्क (सुप्त मन) क्रमश: सूर्यवाहिका (पिंगला) और चन्द्र वाहिका (ईड़ा) की ईश्वरी शक्ति का उपयोग करते हैं।

पूरी अनुकम्पी नाड़ी प्रणाली की गतिविधि दाईं और बाईं वाहिका पर प्रवाहित होने वाली ईश्वरी शक्ति द्वारा उपलब्ध कराई जाती है। दाईं वाहिका का आरम्भ मस्तिष्क के दाईं ओर होता है और आज्ञा चक्र को दोनों वाहिकाओं के पारगामी बिंदु (कटाव बिंदु) पर स्थापित किया गया है। स्थूल (शरीर) में यह पीयूष और शंकुरूप (Pituitary & Pineal) ग्रन्थियों का नियन्त्रण करता है। इस प्रकार पीयूष ग्रन्थि (Pituitary) अहम् को और शंकुरूप (Pineal) ग्रन्थि प्रतिअहम् को नियन्त्रित करती है।

पशुओं में प्रतिअहम् को नियन्त्रित करने वाली पीयूष ग्रन्थि बहुत अधिक विकसित होती है। मानव में अहम् और प्रतिअहम् का सन्तुलन हेता है। इस सन्तुलन के कारण दोनों अहम् और प्रतिअहम् मस्तिष्क के शिखर पर तालू-अस्थि के समीप मध्य में आ जाते हैं।

मस्तिष्क का पूरी तरह से ढका होना और तालु का कठोर अस्थिकरण (Calcification) मानव को परमात्मा की सर्वव्यापी शक्ति (परम चैतन्य) से अलग करता है। इस प्रकार मानव के अन्दर 'मैं' भाव या अपनी पहचान विकसित हो जाते हैं। संयमी और श्रद्धावान गृहस्थजीवन द्वारा जब अहम् और प्रतिअहम् दोनों, सन्तुलित हो जाते हैं तो सहजयोग के माध्यम से कुण्डलिनी जागृति मस्तिष्क का मध्य से भेदन करती है। वह साधक के चित् को सर्वव्यापी शक्ति में या सर्वव्याप्त अचेतन (Universal Unconscious) में ले जाती है।

साधक का चित्, उसकी गतिविधियों के स्वभाव के अनुरूप, सूक्ष्मतन्त्र के बाईं या दाईं ओर जाता है, कार्य के लिए आवश्यक ऊर्जा ईड़ा या पिंगला नाड़ियों से प्राप्त होती है। (देखिये आकृति ५), और चक्र के शासक देवी-देवता उपयुक्त कार्यविधि का निर्णय लेते हैं। ऊर्जा के दो दीर्घवृत्त (वलय) पिंगला और ईड़ा नाड़ियों के दोनों पक्षों से उभड़ते हैं - एक दाईं दिशा के चक्कर में और दूसरा बाईं दिशा के चक्कर में घूमता है। देवी-देवता आवश्यक ऊर्जा को परिवर्तित करते हैं। ये (देवी-देवता) मस्तिष्क की पीठों (सूक्ष्म चक्रों) के सम्पर्क में होते हैं और हृदय में आत्मा के चहुँ ओर घूमने वाली आभाओं (Auras) से भी इनका सम्पर्क होता है।

अतिचेतन गतिविधि

कुण्डलिनी के अधिकतर प्रतिपादन (ज्ञान) हमें हठयोग का अभ्यास करने वाले मनीषियों (sages) से प्राप्त हुए हैं। शब्द 'हठ' का उद्भव 'ह'

अर्थात् 'सूर्य' और 'ठ' अर्थात् 'चन्द्र' से हुआ है। यह इस बात का स्पष्ट संकेत है कि दोनों वाहिकाओं का उपयोग होता है। हठयोग प्रणाली केवल चेतन प्रयास के विषय में ही नहीं बताती, यह अवचेतन प्रयास से भी सम्बन्धित है। पतंजलि ने अपनी पुस्तक 'अभ्यास विज्ञान' (Sciences of Practice) में स्पष्ट लिखा है कि इस प्रणाली से प्रकाश (आत्मसाक्षात्कार) प्राप्त करने का अभ्यास करने वाले लोगों को जंगलों में रहने वाले सन्यासियों से बचना होगा। संयम (चेतन प्रयास) की भिन्न विधियों द्वारा इन्द्रियों पर नियन्त्रण प्राप्त करना सम्भव है। अवचेतन (अवचेतन प्रयास) की कार्यशैली पर चित् रखना भी समान रूप से आवश्यक है क्योंकि यह संस्कारों (बन्धनों) या इच्छाओं के जबरदस्ती नियन्त्रण के कारण होने वाली प्रतिक्रियाओं के दमन के लिए ज़िम्मेदार है। उदाहरण के रूप में जिह्वा का नियन्त्रण करके हम झूठ बोलने से बच सकते हैं, परन्तु केवल अवचेतन के नियन्त्रण द्वारा भी हम झूठ बोलने के विचार का पनपने से पहले अंत कर सकते हैं।

संयम, मन पर स्वामित्व प्राप्त करने का मार्ग है और प्रेम अवचेतन मस्तिष्क (सुप्त मन) को रोग मुक्त करने की दवा है। दुर्भाग्य की बात है कि अधिकतर आधुनिक योगियों ने हठयोग के वास्तविक अर्थ को ही भुला दिया है। उनकी शिक्षा और अभ्यास में प्रेम का कोई स्थान ही नहीं है। उनमें से अधिकतम के हठयोग का उद्देश्य कराटा या सूचिबेधन (Acupuncture) जैसी शारीरिक शक्तियों पर स्वामित्व प्राप्त करना है। प्राचीन काल में भी मूलरूप से कोमल स्वभाव के योगी कुछ समय तक हठयोग का अभ्यास करने से अतिउग्र स्वभाव हो जाया करते थे। उनमें अतिचेतन व्यक्तित्व विकसित हो जाता था क्योंकि दाईं वाहिका मस्तिष्क को अतिचेतन क्षेत्र से जोड़ती है, और ये लोग अपने चित् से अलौकिक (Supernatural) और भौतिक शक्तियों से भिड़ कर उन पर स्वामित्व प्राप्त कर लेते थे। ऐसा योगी

गुरुत्वाकर्षण की शक्ति पर विजय पा सकता है और अनुकम्पी प्रणाली की कार्यशैली को अवरुद्ध करके या इसे रोक कर हवा में उड़ सकता है। कुछ समय के लिए वह हृदय की धड़कन को भी रोक सकता है। महीनों तक वह पानी में रह सकता है परन्तु उसके हृदय में प्रेम का पूर्ण अभाव होता है। वह अहंकारी विजेता- व्यक्तित्व बन जाता है और सूर्य की तरह वह उसे नाराज़ करने वाले लोगों को भस्मिसात कर सकता है - जलाकर राख कर सकता है। प्राचीन धर्मग्रन्थों में वर्णित इन तथाकथित 'अध्यात्म योगियों' का पराक्रम जगप्रसिद्ध है। इस प्रकार के क्रूर स्वभाव वाले योगियों के असंख्य ऐतिहासिक उदाहरण मिलते हैं। शक्ति संकेन्द्रण या अन्ततः अपने यौन जीवन पर नियन्त्रण द्वारा, ईड़ा नाड़ी के माध्यम से ये लोग आज्ञा चक्र पर चित् केन्द्रित करने में सक्षम हो जाते हैं।

अध्याय 10

धर्म का मध्यमार्ग

श्रीमहालक्ष्मी का मध्यमार्ग (सुषुम्ना नाड़ी) धर्म के मध्यमार्ग की अभिव्यक्ति करता है। मानव में यह परानुकम्पी नाड़ी तन्त्र के रूप में विद्यमान है। इस मार्ग द्वारा पूर्ण किए जाने वाले सूक्ष्म कार्य निम्नलिखित हैं :

- सृष्टि के सभी सजीव और निर्जीव तत्वों को धर्म प्रदान करना।
- नये तत्वों का सृजन करने के लिए निर्जीव तत्वों के धर्मों में परिवर्तन करना।
- सूर्य की ऊर्जा के साथ विद्युत चुम्बकीय चैतन्य लहरियों का सम्मिश्रण करके जीवन (प्राण) का सृजन करना।
- किसी अवतरण के पथप्रदर्शन में जीवन्त वस्तुओं और पशुओं की सम्वेदना को विस्फोटित करना। यह इसका महत्वपूर्णतम कार्य है।
- मनुष्यों तथा अन्य पशुओं को भिन्न देवी-देवताओं के माध्यम से सहायता प्रदान करके उनके लिए विकास का मार्ग तैयार करना।
- मानव की चेतना में सुधार, जो अन्ततः उन्हें आत्मसाक्षात्कार के माध्यम से ईश्वरी जीवन के क्षेत्र में ले जा सके, के उद्देश्य से सहस्रार (आदि मस्तिष्क) में उपयुक्त अवतरणों को विकसित करना। इस प्रकार मनुष्य परमात्मा के कार्यों को जीवन्त सर्वव्यापक अनुभूति के रूप में महसूस करते हैं और इनकी अनुभूति करते हैं।
- भिन्न चक्रों पर स्थापित भिन्न देवी-देवताओं की सहायता से मानव में परानुकम्पी नाड़ी तन्त्र को कार्यान्वित करना।

ये सारे कार्य महालक्ष्मी रूप में चक्रों पर विराजमान स्वयं आदिशक्ति

करती हैं। सहस्रार में तीनों रूप - महाकाली, महासरस्वती और महालक्ष्मी केवल महालक्ष्मी का एकरूप धारण कर लेते हैं। मध्यमार्ग का मूल अवरोही (नीचे की ओर का) अर्द्धभाग महाकाली पक्ष है। आदिकुण्डलिनी के रूप में यह त्रिकोणाकार अस्थि में लुप्त हो जाता है। 'आद्य आदि कुण्डलिनी' सृष्टि के भूतकाल का रिकार्ड किया हुआ टेप है। यह अपने निवास, 'आद्य आदि मूलाधार' में साढ़े तीन कुण्डलों में विद्यमान रहता है। ये श्रीगणेश की माँ 'गौरी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। अवतरण के आगमन के लिए सुरक्षित रखी गई सर्वव्यापक सुप्त मन (Cosmic Subconscious Mind) की यह अवशिष्ट शक्ति है। गौरी के प्रथम अवतरण ने प्रथम चक्र, आदि मूलाधार चक्र का सृजन किया। अत: गौरी के अवतरण के समय आदिशक्ति के केवल एक चक्र की अभिव्यक्ति हुई। शेष सभी चक्र सुप्त थे।

तत्पश्चात् आदिविष्णु के अवतरण पृथ्वी पर अवतरित हुए। उनकी शक्ति लक्ष्मी की रीढ़ में दो चक्र गतिशील थे। इन दो चक्रों की अभिव्यक्ति हुई और उनके शेष सभी चक्र निष्क्रिय रहे। दूसरा केन्द्र 'आदि-नाभि-चक्र' था। आदिविष्णु की नाभि से एक कमल प्रकट हुआ जिससे सृष्टि के सृजन कर्ता आदि ब्रह्मदेव का जन्म हुआ। आदिशक्ति के अवतरण लक्ष्मी की तरह, ब्रह्मदेव की शक्ति (पत्नी सरस्वती) ने भी अपने स्वामी ब्रह्मदेव (प्रजापति) के लिए ऊर्जा उत्पन्न की।

तीसरा केन्द्र 'आदि-स्वाधिष्ठान चक्र' था। आदि ब्रह्मदेव ने ही पंचतत्वों से भौतिक जगत का सृजन किया। सरस्वती की रीढ़ में तीन सक्रिय चक्र थे। मध्यमार्ग पर स्थापित किया गया चौथा चक्र 'आदि अनाहत चक्र' या 'हृदय चक्र' कहलाता है। यह हृदय केन्द्र को नियन्त्रित करता है। यह अनाहत के नाम से जाना जाता है क्योंकि पहली बार जब जीवन शक्ति (प्राण) भ्रूण में प्रवेश करती है, तो बिना किसी आघात के हृदय की धड़कन को सुना जा सकता है। अन्य किसी केन्द्र में यह सुनी जा सकने वाली

आवाज़ नहीं उत्पन्न करता।

हृदय चक्र के तीन भाग होते हैं :

१. चक्र की बाईं ओर पार्वती अपने स्वामी भगवान शिव के साथ निवास करती हैं। श्रीशिव ईड़ा नाड़ी, बाईं वाहिका, पर शासन करते हैं।

२. चक्र की दाईं ओर आदि विष्णु के अवतरण भगवान राम और आदिशक्ति की अवतरण उनकी पत्नी सीता का निवास है।

३. चक्र के मध्यभाग में दुर्गा या जगत जननी जगदम्बा के रूप में अकेली पार्वती प्रवेश करती हैं। आदि विष्णु जब भगवान राम के रूप में अवतरित हुए तो दुर्गा ने हृदय चक्र के मध्य कक्ष को खाली कर दिया और पत्नी रूप में हृदय के बाएं प्रकोष्ठ में भगवान शिव से पुनर्मिलन के लिए चली गईं और सीता समेत भगवान राम हृदय के मध्य प्रकोष्ठ में निवास करने लगे।

आदि अनाहत चक्र के ऊपर ग्रीवा केन्द्र को नियन्त्रित करने वाला सोलह पंखुड़ियों वाला 'आदि विशुद्धि चक्र' स्थित है। आदि विष्णु, विराट श्रीकृष्ण के रूप में अवतरित हुए। श्रीराधा उनकी शक्ति हैं।

मार्ग पर इस से ऊपर दृष्टि नाड़िओं के पारगामी बिन्दु पर विराट के मस्तिष्क में 'आदि आज्ञा चक्र' नामक चक्र है, जो 'आदि पियूष' और 'आदि शंकुरूप' (ग्रन्थियों) को नियन्त्रित करता है। ये क्रमशः आदि पुरुष (विराट) के अहम् और प्रति अहम् को नियन्त्रित करते हैं। ये दोनों 'आदि ईड़ा' और 'आदि-पिंगला' नाड़ियों के छोर पर विकसित होते हैं। जब विराट की अभिव्यक्ति होने लगती है, तो ये विकसित होते हैं। ये किसी उद्योग की चिमनी से निकलने वाले धुएं के उत्सर्जन द्वार की तरह हैं।

अन्तिम और महत्वपूर्णतम चक्र 'आदि तालुक्षेत्र' को स्वयं में समाहित किए आदि पुरुष (विराट) के मस्तिष्क के ऊपरी भाग में स्थित है। यह 'आदि सहस्रार चक्र' कहलाता है तथा मध्य मार्ग (आदि सुषुम्ना नाड़ी) के साथ चलने वाले सभी सात चक्रों से जुड़ा हुआ है। साक्षात् श्रीआदिशक्ति मस्तिष्क में देवी-देवताओं की पीठों से चक्रों को नियन्त्रित करती हैं। इस अन्तिम चक्र को खोलने के लिए आदि विष्णु के दसवें और अन्तिम अवतरण कल्कि की शक्ति के रूप में कलियुग में वे अद्वितीय अवतार धारण करेंगी। महाभ्रान्ति (महामाया) रूप में अवतरित होकर वे अपनी तीनों शक्तियों (त्रिगुणात्मिका) को संघटित करेंगी और इस प्रकार कल्कि के सामूहिक व्यक्तित्व का सृजन करेंगी। उनका आगमन गुप्त रहस्य है परन्तु जब उनका आगमन होगा तो सामूहिक आत्मसाक्षात्कार घटित होने लगेगा।

देवी-देवताओं के धर्म और उनके चक्र

पहला चक्र - मूलाधार

श्रीगणेश द्वारा शासित है, अनन्त बाल सुलभता जिनका धर्म है।

दूसरा चक्र - स्वाधिष्ठान

ब्रह्मदेव द्वारा शासित है। सोचना, कार्य करना और सृजन उनका धर्म है।

तीसरा चक्र - नाभि

विष्णु द्वारा शासित है। धर्म ही उनका धर्म है, यह विकासात्मक ऊर्जा है जिसे उन्हें बनाए रखना और धारण करना होता है। महा आदिपुरुष (विराट स्वरूप) आदि विष्णु उनके आश्रय हैं।

चौथा चक्र - अनाहत

यह दुर्गा या जगदम्बा रूप में आदिशक्ति द्वारा शासित है और सर्वव्यापी मातृप्रेम उनका धर्म है। इस चक्र के बायें भाग के शासक शिव-पार्वती हैं।

जीवन, अबोधिता, सहजता और स्थिरता उनके धर्म हैं। हृदय के दायें भाग के शासक श्रीराम और उनकी समर्पित पत्नी सीता हैं। तेजस्विता और सम्पूर्ण राजनैतिक नेतृत्व इनके धर्म हैं। यह युग्म पति-पत्नी के बीच निरन्तर प्रेम का प्रतीक हैं।

पाँचवा चक्र - विशुद्धि

श्रीकृष्ण द्वारा शासित है। कूटनीति और राजनीति में उद्देश्य की पावनता (हित) उनका धर्म है। निष्कपट और अविकृत सम्वेदना की सहजता इस चक्र के आश्रय (धर्म) हैं। श्रीकृष्ण पूरी सृष्टि को मात्र एक लीला के रूप में देखने वाले साक्षी स्वरूप पक्ष की अभिव्यक्ति करते हैं। इस चक्र के धर्म का महत्वपूर्ण तत्व विराट और पूर्णावतार की अभिव्यक्ति करता है।

छटा चक्र - आज्ञा

भगवान ईसामसीह इसके स्वामी हैं, क्षमा एवं सन्तोष उनके धर्म (गुण) हैं। श्रीगणेश के अवतार ईसामसीह इसके शासक देव हैं। श्रीकृष्ण द्वारा भगवद्गीता में वर्णित आत्मा की अनश्वरता को ईसामसीह के पुनर्जन्म (Resurrection) के माध्यम से दर्शाया गया है।

सातवाँ चक्र - सहस्रार

आदिशक्ति (Holy Ghost) इस चक्र की शासिका हैं। आत्मसाक्षात्कार की आनन्दमय अवस्था 'सामूहिक चेतना' - उनका धर्म है।

महालक्ष्मी मार्ग (सुषुम्ना नाड़ी) का उद्भव 'आदि मस्तिष्क' के मध्य से है और वे सभी चक्रों की देखभाल करती हैं। भवसागर अवस्था में विराट के भवसागर में पृथ्वी पर अवतरणों का प्रकटन आरम्भ हुआ। 'वैकुण्ठ अवस्था' में वे पहली बार आदि पुरुष (विराट) के सिर से नीचे की ओर उतरते हुए (अवरोहण) दिखाई दिए। सृष्टि की उत्पत्ति अवस्था में आदिशक्ति जब वलय का आकार धारण करती हैं तो वे बिन्दु बनती हैं और फिर

अर्धबिन्दु और इसके बाद विराट के त्रिकोणाकार मस्तिष्क (त्रिकुटि) में प्रवेश करती हैं। मस्तिष्क के मध्य में, आज्ञा चक्र पर वे अपनी तीन शक्तियों - महालक्ष्मी, महासरस्वती और महाकाली में विभाजित हो जाती हैं। अतः वैकुण्ठ अवस्था में अपने अवरोहण में वे पहले महालक्ष्मी रूप में नीचे उतरती हैं, फिर महाकाली रूप में और अन्ततः महासरस्वती रूप में।

जैसा मैं पहले बता चुकी हूँ, ये तीनों मातृशक्तियाँ छः चक्रों के लिए देवी-देवताओं का सृजन करती हैं। आगे चलकर ये देवी-देवता अपने सम्बन्धित चक्रों पर स्थापित हो जाते हैं। 'उत्पत्ति अवस्था' में परमात्मा पुत्र श्रीगणेश, जिन्होंने बाद में ईसामसीह के रूप में मानव जन्म लिया, को प्रथम देवता के रूप में सृजित किया गया। अतः वे प्रथम और सर्वश्रेष्ठ देवता हैं। अन्य सभी देवी-देवताओं का 'वैकुण्ठ अवस्था' में सृजन किया गया। 'क्षीरसागर अवस्था' के बाद उनकी उत्क्रान्ति घटित हुई, परन्तु पृथ्वी पर वे 'भवसागर अवस्था' में अवतरित हुए।

सहज, धार्मिक एवं सदाचारमय जीवनयापन करने वाले लोग मध्यमार्ग के बहुत समीप रहते हैं। परमात्मा में विश्वास करने वाले, जीवन की गतिविधियों और उत्तरदायित्वों को गम्भीरता से लेने वाले, कामवासना की विकृतियों और आवेगों में लिप्त न होने वाले लोग मध्यमार्ग के क्षेत्र से सम्बन्धित होते हैं। माता-पिता और बच्चों के प्रति गहन भावनात्मक भाव रखने वाले, पत्नियों से लक्ष्मी (गृहलक्ष्मी) की तरह व्यवहार करने वाले, सामान्य पारिवारिक जीवनयापन करने वाले लोगों को, विशेष रूप से, उत्क्रान्ति के मध्यमार्ग का आशिष प्राप्त होता है। सहज हृदय धार्मिक लोग जिन्होंने नगरों में रहने वाले लोगों की चालाकी भरे आत्मश्लाघी (स्वप्रशंसा) तौर-तरीके नहीं सीखे हैं, विकास प्रक्रिया में सबसे पहले उत्क्रान्ति को प्राप्त करते हैं। परमात्मा के कार्य के लिए स्वयं को ज़िम्मेदार मानने वाले और वास्तव में परमात्मा के प्रति सच्ची श्रद्धा और समर्पणपूर्वक

जीवनयापन करने वाले, लोगों को भी विशेषरूप से प्रणव की विकासशील शक्ति का आशीर्वाद प्राप्त होता है। अन्य लोगों के लिए समस्याएं न खड़ी करने वाले, अन्य लोगों पर प्रभुत्व न जमाने वाले मस्त मौला, संयमी और शान्त लोग भी परमात्मा की भक्त मण्डली के कृपापात्र सदस्य होते हैं। परमेश्वरी प्रेम और माँ, बहन, बेटी से पावन सम्बन्धों में विश्वास करने वाले लोगों को भी अत्यन्त उच्च स्थान प्रदान किया जाता है और प्रणव आत्मसाक्षात्कार के लिए उनका चुनाव करता है।

दूसरी ओर स्वयं को परमात्मा से कहीं अधिक जीवन की सफलता के लिए ज़िम्मेदार मानने वाले, हर समय सोचने, योजना बनाने और काम करने वाले (अतिकर्मी) उग्र स्वभाव (Extremists) के लोग ब्रह्मदेव की सूर्यवाहिका पर कार्यरत होते हैं। कार्य के प्रति उनका समर्पण यदि महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने का छलावरण होता है तो वे इस वाहिका की अति की ओर बढ़ने लगते हैं।

अपनी धार्मिकता का दिखावा न करने वाले, या पाखण्डमय बाह्य सन्यास को न अपनाने वाले या परमात्मा और धर्म के नाम पर अन्य देवी-देवताओं या अवतरणें की निन्दा न करने वाले सत्य साधकों को भी परमेश्वरी प्रेम का आशिष प्राप्त होता है। त्याग की अति में न पड़ने वाले, परन्तु बुराइओं से स्वाभाविक घृणा करने वाले और अपनी प्रतिक्रियाओं में नैसर्गिक लोग सहजयोग के लिए अत्यन्त उपयुक्त हैं। वे मध्यमार्ग पर बने रहते हैं। दिखावा करने वाले, आत्मसाक्षात्कार प्राप्त किए बिना धर्म की घोषणा करने वाले या धर्म सिखाने वाले और स्वयं को झूठ-मूठ के उच्च पद पर आरूढ़ कर लेने वाले लोग भी दायीं ओर की सूर्यवाहिका पर सवार हो जाने के कारण ऐसा करते हैं (देखिए आकृति ७)। आगे चल कर ऐसे लोगों को अहंकारी व्यक्तित्व मान कर सूर्य नाड़ी की अति में फेंक दिया जाता है। ये लोग अन्ततः धार्मिक आवरण में लिपटे धर्म-राक्षसों के रूप में पृथ्वी पर

प्रकट होते हैं।

एक पत्नि के साथ सामान्य यौन जीवन बिताने वाले, विवाह को धर्मयज्ञ मानने वाले लोगों का चित् मध्यमार्ग पर रहता है, परन्तु प्रयोगों या किसी अन्य बहाने से यौनविकृतियों में लिप्त होने वाले लोग 'सुप्त (अव) चेतन' और 'सामूहिक सुप्त चेतन' की चन्द्रवाहिका में जा गिरते हैं। शराब और नशों पर निर्भर नशेड़ियों की तरह, बहुत अधिक खाने वाले लोग भी बाईं ओर के चरम में स्थित चन्द्रवाहिका पर होते हैं।

इसके विपरीत, बहुत अधिक व्रत करने वाले, आहार पथ्य या शारीरिक यौगिक व्यायाम के माध्यम से शरीर का बहुत ध्यान रखने वाले लोग भी सूर्यवाहिका पर जा गिरते हैं। संक्षेप में जीवन में सभी प्रकार का उग्र आचरण मनुष्य को दाईं ओर सूर्य-वाहिका या बाईं ओर चन्द्र-वाहिका पर ले जाता है। ऐसे लोगों को आत्मसाक्षात्कार देना बहुत कठिन होता है।

ये सत्य है कि आत्मसाक्षात्कार से पहले मनुष्य के विचारों और कर्मों का क्षेत्र सूर्य और चन्द्र वाहिका द्वारा अपनी-अपनी ओर खींचने (द्विध्रुवीकरण) द्वारा उत्पन्न तनाव क्षेत्र के कारण होता है। परन्तु इन सारे विवादों के क्षेत्र के बीच रहते हुए भी सन्तुलित लोग एक ऐसा सामंजस्य खोजते हैं, जो उन्हें मध्यमार्ग के समीप ला सके। यह भगवान बुद्ध द्वारा वर्णित आठ तहों वाला (अष्ट) मार्ग है।

विराट की अन्य सभी शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक गतिविधियों के उत्सर्जन के लिए भूत और भविष्य, 'आदि अहंकार' और 'आदि प्रतिअहंकार' का सृजन किया गया। 'आदि मूलाधार चक्र' के नीचे और सामने तथा विराट के शरीर के बाहर की ओर नरक क्षेत्र बनाया गया है। इसके सात संस्तर हैं। सूर्य वाहिका के माध्यम से परमात्मा के प्रेम की अपेक्षित इच्छा के बिना अतिचेतन की पराकाष्ठा में जाकर कठोर तपस्विता

और त्याग को अपनाने वाले साधक कुछ समय बाद नरक में चले जाते हैं। धर्म के नाम पर आत्मश्लाघी आत्माओं की भूतबाधा के माध्यम से, क्योंकि श्लाघी आत्माओं की बाधा उन्हें मनुष्यों पर नियन्त्रण करने के योग्य बना देती हैं, अपने अतिचेतन मस्तिष्क की मानसिक शक्तियों के प्रदर्शन का प्रयत्न करने वाले लोगों को भी सूर्य वाहिका मार्ग से विकास प्रक्रिया से बाहर फेंक दिया जाता है और वे भी नरक में जा गिरते हैं।

सूर्य वाहिका दाईं दिशा (घड़ी की सूई की दिशा) में घूमती है जब कि चन्द्रवाहिका बाईं दिशा (घड़ी की सूई की विपरीत दिशा) में घूमती है। मृत आत्माओं, मृत गुरुओं तथा अन्य सभी देह-विहीन (मृत) अवचेतन व्यक्तित्वों की पूजा करने वाले लोग अन्ततः विकास प्रक्रिया से बाहर चले जाते हैं और नरक में उनका अन्त होता है। जिन लोगों का उद्धार नहीं किया जा सकता था उन्हें कठोर दण्ड देने और सुधारने के लिए नरक का सृजन किया गया। अपनी अत्याचारी महत्वाकांक्षाओं या वासनाओं में आसक्ति में लिप्त लोग विकास प्रक्रिया को छोड़कर कल्पों (युगों) के लिए नरक भोगते हैं। नरक से निकलकर जब वे पुनः पृथ्वी पर जन्म लेते हैं तो राक्षस और शैतान कहलाते हैं। वे अत्यन्त विकृत, कामुक, लोभी, आत्मश्लाघी और प्रबल लोग होते हैं। इन का अनुसरण करने वाले लोग भी इनके संघातिक प्रकार के व्यक्तित्व से संदूषित होकर स्वयं को सर्वनाश के लिए नरक में धकेल लेते हैं। परमात्मा किसी को भी नरक में नहीं डालते। परमात्मा के चरण कमलों में आश्रय लेने से इन्कार करने वाले लोग स्वयं को नरक के मेज़बानों के रूप में स्वनियुक्त कर लेते हैं। उन्हें भी परमात्मा क्षमा के अवसर प्रदान करते हैं, परन्तु पृथ्वी पर पुनः जन्म लेकर भी वे अपनी पूर्व आसुरी गतिविधियों को अपना लेते हैं।

सूक्ष्म आकार में वे भी मानव मनस में प्रवेश कर लेते हैं और नरक से

मुक्ति की याचना करते हैं। कोई विकसित व्यक्ति किसी भूतबाधित से झाड़फूंक द्वारा (exorcise) जब इन आत्माओं को भगाने का प्रयत्न करता है, तो बहुत सी आत्माएं इस प्रकार की मुक्ति का वचन देती हैं। परन्तु उन्हें मुक्ति तभी प्राप्त होती है जब कोई अवतरण उनका वध करता है। ये वध अन्तिम दण्ड जैसा है, मानो अवतरण की कृपा से उस व्यक्ति के सारे अपराध निष्प्रभावित हो गये हैं। ये सर्वशक्तिमान परमात्मा का अगाध प्रेम है जो वध करके भी ऐसी पापी आत्माओं का नरक से उद्धार करते हैं।

अध्याय 11

चक्र और केन्द्र

मूलाधार चक्र

यह चक्र श्रोणीय केन्द्र के अनुरूप है और इसकी चार पंखुड़ियां होती हैं जो श्रोणीय केन्द्र के चार उपकेन्द्रों से सहसम्बन्धित हैं। ये इस प्रकार हैं :

पंखुड़ियाँ	उप-केन्द्र	शासित अवयव
१	श्रोणीय क्षेत्र के नीचे की ओर की कष्टदायी (बवासीर) नाड़ियों को नियन्त्रित करने वाला स्नायविक केन्द्र (Inferior Hemorrhoidal)	मलाशय (Rectum)
२	मूत्राशय सम्बन्धी (मूत्राशय नियन्त्रक) (Vesical)	मूत्राशय तथा शुक्राणु संचय और नीचे की ओर प्रवाहित करने वाली शुक्रीय नाड़ी (Urinary bladder and vascula seminalis and vas deferens)
३	पुरस्थ ग्रन्थि सम्बन्धी (Prostatic)	पुरुषों में पुरस्थ को और महिलाओं में योनि के एक भाग को नियन्त्रित करने वाली पुरस्थ ग्रन्थि (Prostate gland in men; part of vagina in women)
४	गर्भाशय सम्बन्धी (Uterine)	महिलाओं में गर्भाशय, गर्भाशय का ग्रीवा भाग तथा डिम्बवाही नली और पुरुषों में शुक्राणु संचय और नीचे की

		ओर प्रवाहित करनेवाली शुक्रीय नाडी (Uterus, cervix and Fallopian tubes in women; vasculae seminal is and vas deferens in men)

स्वाधिष्ठान चक्र

ये छः पंखुड़ियों वाला चक्र निम्नलिखित छः उप-केन्द्रोंवाले महाधमनी केन्द्र के समरूप है :

पंखुड़ियाँ	उप-केन्द्र	शासित अवयव
१	शुक्र (वीर्य) सम्बन्धी (Spermatic)	शुक्राणुओं का सृजन करने के लिए शुक्रीय संवाहिका (Vesculae seminalis for creating sperm)
२	बायाँ शूल (Left Colic)	नीचे को आती बड़ी आँत (Descending colon)
३	बड़ी आँत का 'C' या 'S' आकार का भाग (Sigmoid)	मलत्याग के लिए पेट का नीचे का भाग, गुर्दे और मूत्राशय (Lower part of abdomen for excretion, kidneys and urinary bladder)
४	श्रोणीय क्षेत्र के ऊर्ध्व भाग की कष्ट कर बवासीर नाड़ियों को नियन्त्रित करने वाला स्नायविक केन्द्र (Superior Hemorrhoidal)	मलाशय (Rectum)
५	नीचे की ओर की आन्त्र योजना	महाधमनी (Aorta)

	सम्बन्धी (Inferior Mesenteric)	
६	उदर के नाभि के नीचे सम्बन्धी (Hypogastric)	ज़िगर, प्लीहा और अनुप्रस्थ (तिरछी) बृहदान्त्र के ऊपरी भाग सम्बन्धी (Upper part of liver & spleen and transverse colon)

मणिपुर या नाभि चक्र

इस चक्र की दस पंखुड़ियाँ हैंऔर यह दस उपकेन्द्रों वाले सूर्य केन्द्र के समरूप है। ये निम्नलिखित हैं :

पंखुड़ियाँ	उप-केन्द्र	शासित अवयव
१	मध्यच्छद (उदर को वक्ष से अलग करने वाली पेशी (Phrenic)	श्वासक्रिया नियन्त्रित करने वाला मध्यपट और (ऊपर की) अधिवृक्क ग्रन्थि (Diaphragm & suprarenal gland which controls breathing)
२	रुधिरसम्बन्धी (Haematic)	ज़िगर और उदर का नीचे का भाग (Lower part of liver & stomach)
३	प्लीहा (तिल्ली) सम्बन्धी (Splenic)	प्लीहा का नीचे का भाग (Lower part of spleen)
४	आमाशय (जठर) का ऊपरी भाग	पित्ताशय (Gall Bladder)
५	अधिवृक्क (गुर्दे का ऊपरी भाग) (Suprarenal)	गुर्दे का ऊपरी भाग (Upper part of kidneys)
६	मूत्रग्रन्थि सम्बन्धी (Renal)	गुर्दे (Kidneys)
७	वीर्य सम्बन्धी (Spermatic)	शुक्राणु उत्पन्न करने वाली (Creates sperm)

८	मध्यान्त्र का ऊपरी भाग (Superior Mesenteric)	छोटी आँत (Small Intestine)
९	पाचन रस कोशिका सम्बन्धित (Pancreatic)	अग्न्याशय (पाचक ग्रन्थि) (Pancreas)
१०	आन्त्रशूल (Colic)	छोटी आँत और बड़ी आँत का एक भाग (Small intestine and part of large intestine)

अनाहत या हृदय

बारह उपकेन्द्रों वाले हृदय केन्द्र के समरूप इस चक्र की बारह पंखुड़ियाँ हैं

पंखुड़ियाँ	उप-केन्द्र	शासित अवयव
१	गहन दायाँ हृदय (Right deep Cardiac)	कान का दायाँ बाहरी भाग (Right aurical)
२	गहन बायाँ हृदय	कान का बायाँ बाहरी भाग
३	पूर्ववर्ती फुफ्फुस (फेफड़े)	पसली (Pleura)
४	फेफड़े का पीछे का भाग	फेफड़े (Lungs)
५	हृदय का बाहरी भाग	हृदावरण (Pericardium)
६	हृदय ग्रन्थिका का बाहरी नाड़ी जाल (Cardiac Ganglion-wrisberg)	दायाँ हृदय (Right Cardiac)
७	हृदय धमनियाँ (दायीं) (Right Coronary)	चक्रीय हृदय धमनियाँ (Coronary arteries)

८	कोष्ठकीय (Ventricular)	हृदयप्रकोष्ठ (Ventricles of the heart)
९	हृदय धमनियाँ बायीं (Left Coronary)	बायीं ओर की चक्रीय धमनी (Left coronary artery)
१०	हृदय के अन्दर की लय सम्बन्धी (Endocardiac)	हृदय की आन्तरिक तह (Inner layer of heart)
११	रिमैक ग्रन्थिका (Remak's Ganglion)	हृदय में आत्मा का स्थान (भगवान शिव)(Site of Spirit -Atma as Lord Shiva- in the heart)
१२	बिड्डर ग्रन्थिका (Bidder's Ganglion)	हृदय चक्र के मध्य से जुड़ी हुई सुरक्षा भाव की अभिव्यक्ति करने वाली धमनियाँ (Connected to the Chakra's centre placed in the heart. Expresses sense of security)

विशुद्धि चक्र

सोलह पंखुड़िओं वाला ये चक्र ग्रीवा केन्द्र के समरूप है। इसके निम्नलिखित सोलह उपकेन्द्र हैं :

पंखुड़ियाँ	उप-केन्द्र	शासित अवयव
१	ग्रीवा का ऊपरी भाग	ग्रीवा का मस्तिष्क से जुड़ा हुआ भाग
२	ग्रीवा धमनी (Carotid)	अन्दर की ग्रीवा धमनी : प्रतिअहम् बाहरी ग्रीवा धमनी : अहम् (Internal Carotid : superego, External Carotid : ego)
३	गुहामय (धंसा हुआ भाग)(Cavernous)	आँखें, नाक, जिह्वा, मुँह, दाँत, नाक और कान
४	आन्तरिक और बाहरी	वेगस नाड़ी और जिह्वा

५	अन्ननलिका सम्बन्धी (Pharyngeal)	गले के सातों द्वार - गला (१), नासिकाएं (२), कान (२), श्वासनली (१), हलक (१)
६	कण्ठ्य (Laryngeal)	श्वासमार्ग (कण्ठ्य-श्वास यन्त्र)
७	ऊपरी हृदय सम्बन्धी (Superficial Cardiac) धमनी	श्वासमार्ग के पीछे हृदय और ग्रीवा धमनी की ओर जाने वाली श्वास (Behind carotid artery going to heart and trachea)
८	बाहरी ग्रीवा धमनी (External Carotid)	मुँह, कान और मस्तिष्क धमनियों को पोषण भेजने वाली ग्रीवा धमनी
९	ऊपर और नीचे का मध्य (Superior & Inferior Middle)	ग्रीवा केन्द्र के ऊपरी और नीचे के भाग को पोषण भेजने वाला (Supplies upper and lower part of the Cervical plexus)
१०	बाहरी मध्य ग्रीवा (External Middle Cervical)	साक्षी स्थल (साक्षीत्व की शक्ति) (Site of the Sakshi (Witness Power))
११	गलग्रन्थि (Thyroid)	पित्ताशय को नियन्त्रित करने वाली गलग्रन्थि (Thyroid which controls gall bladder)
१२	मध्य हार्दिक (Middle Cardiac)	हृदय की ओर
१३	ग्रीवा का ऊपरी नीचे का भाग	गले के मध्य तक
१४	हँसुली के नीचे का भाग (Inferior or Subclavian)	हाथों को पोषण भेजने वाली धमनियाँ। ये यदि ठीक प्रकार से कार्य न करें तो चैतन्य चेतना के

		प्रति सम्वेदनहीनता का कारण बनती हैं। (Towards the arteries supplying bands. Causes insensitivity to vibratory awareness if not working properly)
१५	हृदय के नीचे का भाग	हृदय और फेफ़ड़े
१६	बाह्य या रीढ़ वाला (External or vertebral)	मस्तिष्क की ओर जाने वाली रीढ़ धमनी (Vertebral artery going towards the brain)

आज्ञा चक्र

दो पंखुड़ियों वाला ये चक्र दृष्टि-अन्त:कक्ष के समरूप हैं :

पंखुड़ियाँ	**उप-केन्द्र**	**शासित अवयव**
१	तृतीय नेत्र ग्रन्थि (Pineal)	प्रतिअहम् नियन्त्रक (Controls superego)
२	पीयूषिका - कफ़सम्बन्धी (Pituitary)	अहम् तन्त्र नियन्त्रक (Controls egolamus)

सहस्रार चक्र

हज़ार पँखुड़ियों वाला कमल हमारे अन्दर परमात्मा का साम्राज्य है।

अध्याय 12

मूलाधार चक्र

विराट में कुण्डलिनी के सृजन के आरम्भ में सर्वप्रथम इस चक्र का सृजन किया गया। शाश्वत बाल सुलभता के प्रतीक, आदिशक्ति के एकमेव पुत्र, श्रीगणेश को इस चक्र पर शासक देवता के रूप में स्थापित किया गया। मूलाधार शब्द का उद्‌भव दो संस्कृत शब्दों से है : 'मूल' अर्थात् जड़ और 'आधार' अर्थात् आश्रय, अतः इस शब्द का अर्थ हुआ सृजन की नींव के आश्रय।

जैसे मानव का सृजन विराट रूप परमात्मा की छवि में किया गया है इस चक्र की अभिव्यक्ति भी मानव में सर्वप्रथम उसके जन्म के समय हो जाती है। नितम्ब के मध्य से लगभग एक इंच ऊपर मानव शरीर के धड़ (Trunk) के सबसे नीचे के क्षेत्र में मूलाधार चक्र स्थापित किया गया है। यह सबसे अधिक ओजस्वी और महत्वपूर्णतम चक्र सूक्ष्म रूप में विद्यमान है। चिकित्सा शब्दावली में इसकी स्थूल अभिव्यक्ति, इसे चहुँ ओर से घेरे हुए, श्रोणीय केन्द्र से की जाती है।

कहा जाता है, कि परमात्मा ने सृष्टि का सृजन सात दिनों में किया। सोमवार आदिशक्ति और भगवान शिव का दिन है। मंगलवार आत्मसाक्षात्कारियों (सहजयोगियों) का दिन है और इस दिन उन्हें मूलाधार चक्र पर श्रीगणेश की पूजा करनी चाहिए। चेतन मन के स्वामी श्रीहनुमान की पूजा भी मंगलवार को की जानी चाहिए।

श्रीगणेश का सृजन पृथ्वी तत्व से किया गया था। व्यक्ति की उत्क्रान्त अवस्था के अनुरूप हर मनुष्य में उनकी भिन्न अभिव्यक्ति हो सकती है :

अवतरण (Incarnations)

दिव्य अवतरणों में इस चक्र का रंग चिकनी मिट्टी जैसा होता है और ये चमकता है। श्रीगणेश जीवन्त शिशु की तरह से और कभी विवेकशील ओजस्वी दार्शनिक की तरह नाचते हुए दिखाई देते हैं। आदिशक्ति के किसी भी अवतरण में वे हमेशा तैयार, चुस्त और आज्ञाकारी शिशु की तरह उद्यत रहते हैं। उनका शरीर, मुखमण्डल, हाथ और टाँगें सभी उनके मधुर, कोमल और देवदूत सम व्यक्तित्व को दर्शाते हैं। इतने समर्पित, अबोध और पूरी तरह शक्तिशाली शिशु की एक झलक भी आदिशक्ति के हृदय को अपने बच्चे के लिए प्रेम की मधुर भावनाओं (वात्सल्य) से भर देती है। उनकी (आदिशक्ति) उपस्थिति में कोई साधक यदि श्रीगणेश का नाम उच्चारण करे तो आदिशक्ति स्वयं को अत्यन्त महिमान्वित महसूस करती हैं और ऐसे साधक पर अपने वरदानों की वर्षा करती हैं।

आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति

आत्मसाक्षात्कारी व्यक्तियों में मूलाधार चक्र रंगबिरंगे हल्के प्रकाश की तरह या नारंगी रंग के प्रकाश की तरह चमकता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो स्वस्तिक की बातियों को सुन्दर विकर्णित होने वाले प्रकाश से ज्योतिर्मय कर दिया गया हो। वे गुलाबी-संतरी रंग के चार शोलों की जिह्वाओं की तरह दिखाई पड़ती हैं जो शान्त होते हुए भी जीवन्त हैं। पूरा दृश्य चार पंखुड़ियों वाले कमल का होता है जिसकी पंखुड़ियाँ शान्त शोलों के रूप में हैं। कमल का एक केन्द्र होता है जो श्रीगणेश की मनोदशा (मिजाज़) के अनुरूप गहरा नीला या मिट्टी के भूरे रंग का होता है। आत्मसाक्षात्कारी लोग इस गहरे रंग के सागर में झाँक कर गहरे नीले रंग को हल्के नीले रंग में परिवर्तित होते हुए देख सकते हैं। वे बादलों और बिजली की चमक की तरह दिखाई देने वाली अकस्मात दमक को भी देख सकते हैं। ये दृश्य साधक के चहुँ ओर आनन्द की सुन्दर घटाओं का विस्तार करता है। बिजली की चमक के बाद श्रीगणेश

की सूँड दिखाई पड़ती है और कुछ देर बाद गजानन देव नन्हें शिशु के रूप में दिखाई पड़ते हैं। आरम्भ में वे, अधिकतर आत्मसाक्षात्कारियों को, स्थिर दिखाई पड़ते हैं, परन्तु बाद में वे कॉफ़ी गतिशीलता की अभिव्यक्ति करते हैं। उनका हर आड़ोलन आनन्द और शान्ति की एक नई लहर का सृजन करता है। आगे चलकर ऐसे साधकों के लिए श्रीगणेश जीवन्त व्यक्तित्व बन जाते हैं।

सामान्य मानव

सामान्य मनुष्यों (असहज) में यह चक्र मूंगालाल रंग का दिखाई पड़ता है और ऐसा प्रतीत होता है जैसे चार बातियों को स्वस्तिक के आकार में जोड़ दिया गया हो।

विभ्रान्त (भ्रमित) साधक

भटके हुए साधकों में यह सूक्ष्म चक्र लाल रंग का दिखाई पड़ता है। अनुकम्पी नाड़ी तन्त्र के दुरुपयोग के कारण विभ्रान्त भविष्य दृष्टा में यह गहरे लाल रंग का दिखाई पड़ता है। कई बार तो व्यक्ति को यह चक्र गहरे लाल और नीले-काले रंग की भिन्न आभाओं के रूप में रंगदार वृत्त के रूप में घूमते हुए चक्र की तरह दिखाई देता है। ऐसा तब होता है जब श्रीगणेश भविष्य दृष्टा साधक के विरुद्ध अपने क्रोध को प्रकट करते हैं। अनुकम्पी नाड़ी तन्त्र के माध्यम से कार्य करने वाले केवल असहज लोग ही मृत आत्माओं की सहायता से भविष्य दृष्टि प्राप्त कर सकते हैं और यह अनधिकृत कार्य श्रीगणेश को क्रोधित करता है।

आकृति १३ में दर्शाया गया स्वस्तिक, चेतना के चार आयामों तथा पाँचवे आयाम के मिलन बिंदु का प्रतीक है। चक्र के सीधी और उल्टी दिशा के चक्कर से ऊपर उठकर यह बिन्दु तिरछा (आड़ा) चलता है। पहली रेखा 'ए' महाकाली शक्ति को अभिव्यक्त करती है, जो मनुष्य में प्रवेश करती है और पुनः बाहर जाती है। 'बी' रेखा, प्रवेश करके बनी रहने वाली

महासरस्वती शक्ति की अभिव्यक्ति करती है।

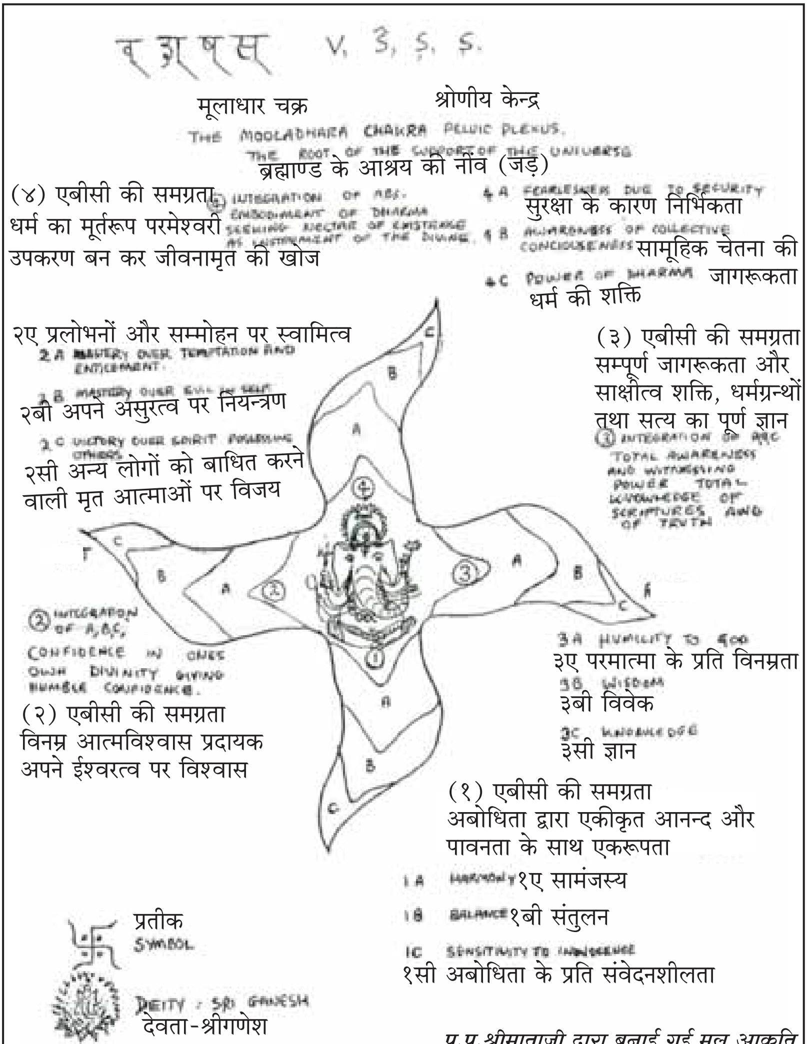

प.पू.श्रीमाताजी द्वारा बनाई गई मूल आकृति

आकृति १३

सीधे चक्कर की दिशा में घूमकर श्रीगणेश सृजनात्मकता की क्षमता तथा सौन्दर्यबोध के सारतत्व का प्रारम्भ करते हैं। अपनी कला में सौन्दर्य

बोध की अभिव्यक्ति करने वाले कलाकारों को यह आनन्द प्रदान करता है। उल्टी दिशा का चक्कर सभी मृत एवं असुन्दर तत्वों के विनाश के लिए है। श्रीगणेश की दाईं (सीधी) या बाईं (उल्टी) ओर की गतिविधि, साधक की आवश्यकता का संकेत देती है।

साधक की वृत्ति यदि आत्मतृप्ति (लिप्सा) की हो तो श्रीगणेश का झुकाव साधक के बाईं ओर को होता है, साधक की गतिविधि यदि जबदरस्ती के त्याग की होगी तो श्रीगणेश का झुकाव दाईं ओर को होगा। श्रीगणेश केवल एक सीमा तक झुकते हैं। साधक की गतिविधि यदि बहुत अधिक हो जाए तो अन्ततः श्रीगणेश अपने सन्तुलित करने के कार्य को त्याग कर व्यक्ति को भ्रष्ट होने के लिए छोड़ कर अपने निवास में अदृश्य हो जाते हैं। श्रीगणेश जब ऐसा करते हैं तो अवचेतन या अतिचेतन क्षेत्र की मृत आत्माएं उनके चेतन मस्तिष्क के साम्राज्य पर आक्रमण कर देती हैं।

स्थिर अवस्था श्रीगणेश के संयम की अभिव्यक्ति करने वाली सत्वगुण मनोदशा की प्रबलता को दर्शाती है। ऐसा तब घटित होता है जब व्यक्ति उपयुक्त मानव पोषण को प्राप्त कर रहा हो और यह किसी सहजयोगी द्वारा, कुण्डलिनी जागृति के माध्यम से होता है। श्रीगणेश की स्थिरता में सुधार सहजयोगी की निरन्तर उत्क्रान्ति का संकेतक है।

पदार्थों में श्रीगणेश विद्युत चुम्बकीय चैतन्य लहरियाँ प्रवाहित करते हैं। स्वस्तिक की चार भुजाएं पदार्थ में संयोजकताओं का कार्य करती हैं। चतुःसंयोजक तत्व (चार संयोजकताओं वाला) तटस्थ कहलाता है। सृजन में ये सबसे अधिक विकसित तत्व हैं, विशेष रूप से चतुः संयोजक कार्बन जो जैव-रसायन शास्त्र का आधार है। मिश्रण के अन्दर कार्बन की मौजूदगी से ही जीवन सम्भव है। कम या अधिक संयोजकताओं वाले अन्य तत्व श्रीगणेश की आश्रयशक्ति के माध्यम से विकसित हुए हैं। इन्हें रसायन शास्त्र के नियतकालिक (Periodic) नियमों के अध्ययन से बेहतर समझा जा

सकता है।

प्राचीन काल में मूलाधार चक्र को देखने का प्रयत्न करने वाले कुछ साधकों ने श्रीगणेश की सूंड के एक भाग को देखा और उससे भ्रमित हो गये। सूंड कुण्डल की तरह से दिखाई पड़ी और चमकी भी। सम्भवत: उन्होंने गलती से सूंड के इसी भाग को कुण्डलिनी मान लिया। यह मूल गलती थी और जैसे हम देखेंगे, इसने भयानक गलती का रूप धारण कर लिया।

श्रीगणेश यौन गतिविधियों को नियन्त्रित करने वाले श्रोणीय केन्द्र पर स्थापित हैं। जो साधक भ्रम के कारण कुण्डलिनी को श्रीगणेश मान बैठे उन्होंने कुण्डलिनी को यौन गतिविधि के समतुल्य मान लिया। इस भयंकर गलती ने सबसे अधिक हानिकारक सिद्धांत को जन्म दिया कि कुण्डलिनी को सम्भोग के माध्यम से जागृत किया जा सकता है। कुण्डलिनी को मूलाधार चक्र से काफ़ी ऊंचे, पावन त्रिकोणाकार अस्थि में, स्थापित किया गया है। इससे प्रमाणित होता है कि सभी मनुष्य परिष्कृत व्यक्तित्व बन कर जन्म लेते हैं। कामभावना के परिष्करण की कोई आवश्यकता नहीं है, परन्तु बहुत से लेखकों ने काम परिष्करण के लिए सिद्धांत प्रस्तुत किए हैं। श्रीगणेश का अपनी माँ से पावन सम्बन्ध ही क्योंकि सृजन का सर्वव्यापी आधार है, साधक की साधना यदि इस हास्यास्पद धारणा पर आधारित है कि सम्भोग या यौन परिष्करण के माध्यम से योग प्राप्त किया जा सकता है, तो साधक की उत्क्रान्ति निश्चित रूप से धाराशायी हो जाएगी। पावनतम सम्बन्धों के विरुद्ध यह वास्तव में अधमाधम पाप होगा। जानबूझकर इस मूर्खता का अभ्यास करने वाले नौसिखिओं को भयानक क्षतिग्रस्त होने का ख़तरा है। मृत्यु के बाद ऐसे लोग स्वयं को परमात्मा के साम्राज्य के स्थान पर नरक में पायेंगे। श्रीगणेश और उनका विकसित मानव अवतरण ईसामसीह इस अधम अपराध को क्षमा नहीं कर सकते। यही कारण है कि कुण्डलिनी की पावनता से छेड़-छाड़ करने वाले बहुत से साधकों को घोर कष्ट सहने पड़े हैं।

मूलाधार चक्र की कार्यशैली

श्रीगणेश परमेश्वरी शक्ति 'प्रणव' को पावनता के सागर में परिवर्तित करते हैं और इसकी लहरें मूलाधार चक्र की पंखुड़ियों के साथ फैलती हैं। परमात्म-साक्षात्कार (God-Realisation) की उच्चावस्था को प्राप्त व्यक्ति का मूलाधार चक्र अत्यन्त विकसित आकार का होता है। यह स्वतः अत्यन्त विकसित जीवन्त अवयव की तरह कार्य करता है। चक्र की जीवन्त पंखुड़ियों की धनुषाकार रेखाएं होती हैं जो छोटी लहरों की तरह दिखाई पड़ती हैं। (देखिए आकृति १३) साधक की पावनता विकास के अनुरूप ये शनैः शनैः बढ़ती हैं। यह साधक के बहुत से पूर्वजन्मों के पावनता विवेक के साथ एकरूपता है। ये धनुषाकार आकृतियाँ (लहरें) आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति के सिर से आशिष के रूप में प्रवाहित होने वाले प्रणव को अपनी तहों में पकड़ लेती हैं। ऐसा व्यक्ति चाहे कलाकार न हो, पूर्ण सौन्दर्य बोध के मूल्यों के ज्ञान के कारण उसमें कला के आनन्द लेने का अन्तर्जात विवेक विकसित हो जाता है। ये चारों दिशाओं में स्रवरण क्षेत्र के जाल की रचना करती हैं। हमारे सारे कर्मों के निर्णायक, श्रीगणेश स्वयं, हर व्यक्ति की अवस्था का विश्लेषण करते हैं।

पहली पंखुड़ी

नीचे की ओर मुख किए पहली पंखुड़ी में ऐसी तीन लहरे (धनुष) हैं :

- पहली उस सामंजस्य की अभिव्यक्ति करती है जिसका आनन्द साधक उठाता है।
- दूसरी सन्तुलन विवेक की अभिव्यक्ति करती है।
- तीसरी साधक की अबोधिता एवं सद्‌चरित्र सम्वेदना की अभिव्यक्ति करती है। ऐसा साधक पापमय कर्मों और उनके प्रदर्शन से घृणा करता है।

साधक के श्रीगणेश के प्रति पूर्ण समर्पण, अबोधिता और पावनता द्वारा ये तीनों धनुष (लहरें) विकसित होते हैं। श्री गणेश की कृपा से साधक सुस्थिर हो जाता है, श्रीगणेश उसमें जागृत हो जाते हैं और उपयुक्त आत्म-सुधारक तप करके साधक अपनी उत्क्रान्ति प्राप्त करता है। आत्मसाक्षात्कार के बाद जब सारे आदर्श (Patterns) एक सूत्र में पिरोए जाते हैं तब किसी आत्मसाक्षात्कारी गुरु के मार्गदर्शन में इस प्रकार के तप किए जाते हैं। इस नई उपलब्धि द्वारा साधक सृजन के आनन्द से एकरूपता की अनुभूति करता है।

दूसरी पंखुड़ी

साधक के दाईं ओर की दूसरी पंखुड़ी में भी तीन प्रकार की लहरियाँ हैं :

* पहली पंखुड़ी द्वारा व्यक्ति आसुरी प्रलोभनों पर पूर्ण स्वामित्व प्राप्त करता है।
* दूसरी पंखुड़ी द्वारा अपने अन्दर के प्रलोभनों पर विजय प्राप्त की जाती है। यह इस बात की ओर संकेत करता है कि साधक भूतबाधित करने वाली आत्माओं या उसके साथी मनुष्यों के चहुँ ओर मंडराने वाली आत्माओं को खदेड़ सकता है।
* विकसित हो जाने पर तीसरी लहर द्वारा व्यक्ति को अन्य लोगों को बाधित करने वाली देह-विहीन आत्माओं पर स्वतः विजय प्राप्त करने की शक्ति प्राप्त होती है। किसी आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति के दर्शनमात्र से भूतबाधित व्यक्ति न चाहते हुए भी काँपने लगता है।

तीनों लहरें जब एकसूत्र में समग्र रूप से अभिव्यक्ति हो जाती हैं तब व्यक्ति को अपने पूर्ण गौरव और दिव्यत्व की अनुभूति होती है। अपने दिव्यत्व में स्थित विनम्र और आश्वस्त व्यक्ति में इसका प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

तीसरी पंखुड़ी

साधक के बाईं ओर को संकेत करने वाली तीसरी पंखुड़ी के भी एक

साथ या एक के बाद एक दिखाई देने वाली लहरों के तीन प्रकार हैं :

- ✻ पहली लहर के द्वारा व्यक्ति में परमात्मा के प्रति विनम्रता (श्रद्धा) विकसित होती है।
- ✻ दूसरी लहर द्वारा विवेक विकसित होता है।
- ✻ तीसरी लहर द्वारा व्यक्ति ज्ञान मूर्ति (ज्ञान से एकरूप) बन जाता है।

तीनों लहरें जब पूर्ण समग्रतापूर्वक एक सूत्रबद्ध हो जाती हैं तो व्यक्ति को पूर्ण चेतना और साक्षीत्व शक्ति की अनुभूति होती है। ये ऐसा है जैसे अन्तरअस्तित्व के द्वार खुल गये हों और वह व्यक्ति धर्मग्रन्थों के सारतत्व और महान लोगों के जीवन के पीछे छुपे सत्य को समझने लगा हो। व्यक्ति की ओर अपना चित् ले जाने मात्र से वह जो भी जानना चाहे, जान सकता है। सभी सच्चे धर्मों के स्रोत के ईश्वरी प्रवाह (बहाव) में वह आनन्द के साथ तैरता है। संक्षेप में उसका अन्तर्बोध (Intuition) तर्कबुद्धि (Rationality) के साथ एकरूप हो जाता है।

चौथी पंखुड़ी

ऊपर की ओर संकेत करने वाली चौथी और अन्तिम पंखुड़ी की भी तीन प्रकार की लहरें हैं :

- ✻ लहर की तहों में सुरक्षा सार निहित होने के कारण पहली लहर साधक को निर्भीकता प्रदान करती है।
- ✻ दूसरी लहर साधक को सामूहिक चेतना के प्रति जागृत करती है।
- ✻ तीसरी धर्म की शक्ति प्रदान करती है।

जब ये गुण पूरी तरह से विकसित हो जाते हैं तो व्यक्ति अन्त:स्थित धर्म से पूर्णत: एकरूप हो जाता है। एकसूत्र में पिरोए जाने पर ये तत्व व्यक्ति को एक ऐसा गतिशील व्यक्तित्व प्रदान करते हैं जिसके द्वारा वह जीवनामृत की

अनुभूति करता है। ऐसा व्यक्ति निर्भीक होता है और कभी अपराध नहीं करता। वह परमात्मा के उपकरण के रूप में कार्य करता है। उसका हर कार्यकलाप सर्वव्यापी प्रेम संगीत को बढ़ावा देता है, चाहे अज्ञानी लोगों को यह अनुचित ही क्यों न प्रतीत हो। वह दर्शकों के लिए अदृश्य महान निर्देशक के आदेशों का अनुसरण करने वाले, सहजयोगियों से बनाए गये प्रशिक्षित एवं योग्य ईश्वरी वादक दल का एक कलाकार बन जाता है। यही कारण है कि चक्षुहीन समाज, जिनमें वे जन्में थे, द्वारा बहुत से सन्तों को कष्ट दिए गये और उनका उपहास किया गया। अब सहजयोग के आगमन से विकास की उन्नति के लिए हानिकारक इस अंधता को काफ़ी हद तक कम किया जा सकता है।

यह सूक्ष्म चक्र सभी सूक्ष्म चक्रों की नींव है। भवसागर में पावनता और समग्रतापूर्वक ईश्वरी शक्ति की पावनता और उत्कृष्टता, प्रणव, के माध्यम से श्रीगणेश की चैतन्य लहरियाँ प्रसारित करने के लिए, इसे (मूलाधार चक्र) रीढ़ के बाहर स्थापित किया गया है। रीढ़ के बाहर आरक्षित बने रहना इस चक्र को बाह्य घटनाओं के प्रति अधिक सम्वेदनशील बनाता है। अन्य चक्रों की प्रतिक्रियाओं के प्रति भी यह सम्वेदनशील है और उनके द्वारा की गई अनुभूतियों का भी यह लेखा-जोखा (Record) रखता है। भवसागर से प्राप्त हुई इस सारी सूचना को यह एकत्र करता है और जाँचता है। भवसागर के आस-पास भौतिक संसार में घटित होने वाली सभी चीज़ों को रिकार्ड करना इसका एक अन्य कार्य है। रिकार्ड की गई सभी घटनाओं की सूचना माँ कुण्डलिनी को पहुँचाई जाती है। कर्मों के रूप में ये एकत्र होती रहती हैं, जैसे चित्रगुप्त का कार्य रिकार्ड की जाने वाली पट्टी पर सारे कर्मों को लिखना है। व्यक्ति की मृत्यु के बाद उसका अगला जन्म अभिलिखित कर्मों के हिसाब-किताब के अनुरूप निश्चित किया जाता है। अन्य देवी-देवताओं से विचारणा करके श्रीगणेश मूलवृत्ति (Id) जैसी अचेतन (जागृत) मन की भिन्न सूचना प्रणालियों के माध्यम से, सम्बन्धित व्यक्ति के विषय में सूचनाएं

प्रसारित करते हैं। सुधारक के रूप में स्वपन में प्रतीक भेज कर वे साधक का मार्गदर्शन करते हैं। मनोविज्ञान में श्रीगणेश को मूलवृत्ति (Id) कहा जा सकता है और 'Id' "ईड़ा'-अवचेतन मस्तिष्क की वाहिका के समतुल्य है। श्रीगणेश इसका नियन्त्रण करते हैं। उनका स्थान, मूलाधार चक्र, इस वाहिका के अन्तिम छोर पर है। मेरुरज्जु (रीढ़) के बाहर स्थापित होने के कारण श्रीगणेश सदैव जागृत और तत्पर (जागृत अवस्था) देवता हैं। चक्र के गौरव श्रीगणेश ब्रह्माण्डव्यापी हैं और उनके अपमान करने का दुस्साहस किसी भी व्यक्ति को नहीं करना चाहिए।

आत्मसाक्षात्कारियों को श्रीगणेश की अबोधिता के प्रति समर्पण करने के लिए शनैः शनैः उन्नत होना चाहिए। शिशुओं की तरह से सहज और पावन लोग, जो सिद्धान्त या कट्टरवादी नहीं है, मात्र उच्च विकसित और परमात्मसाक्षत्कारी व्यक्तियों (अवतारों) का सामीप्य प्राप्त करते ही उन्हें स्वतः आत्मसाक्षात्कार (सहजयोग) प्राप्त हो जाता है। अपने मध्य नाड़ीतन्त्र पर वे आनन्द संवेदना की अनुभूति करते हैं और शनैः शनैः चेतना प्रकाश के बढ़ने के साथ उन्हें अद्वितीय आनन्द की अनुभूति प्राप्त होती है। अभ्यास द्वारा इन अनुभूतियों में अन्तर किया जा सकता है और इन्हें पहचाना जा सकता है। इन चार प्रकार की लहररूपी आकारों के विकास द्वारा प्राप्त होने वाले चार प्रकार के आनन्दों को संस्कृत में निम्नलिखित चार नाम दिये गये हैं।

१. परमानन्द २. सहजानन्द ३. वीरानन्द (सुगन्ध)

४. योगानन्द

गुप्त, प्रकाश, कराल और विकराल (Gupta, Prakash, Karal and Vikaral) नामक चार शक्तियों को उत्पन्न करने वाली चार पंखुड़ियों द्वारा इनका सृजन किया जाता है।

कुण्डलिनी में से गुज़रते हुए प्रणव ध्वनि उत्पन्न करता है। जब ये

मूलाधार चक्र में प्रवेश करता है तो चार प्रकार की ध्वनि निकालता है। संस्कृत में इन्हें 'अक्षर' कहते हैं। ये 'वहं' (उज्ज्वल करना), 'शम्' (शान्त होना), 'शिम्' और 'सम्' (विक्षुब्ध न होना) की तरह सुनाई देते हैं संस्कृत भाषा ध्वन्यात्मक है जो ध्वनियों से निकली है और कुण्डलिनी के चक्रों और उनकी पंखुड़ियों से गुज़रने से सृजित ध्वनियों पर आधारित है। आज भी, भारतीय भाषा में, संस्कृत को देवनागरी अर्थात् देवताओं की भाषा कहते हैं।

कुछ आत्मसाक्षात्कारी लोग इस चक्र को स्वच्छ करने के लिए अपने स्थान से शरीर के बाहर निकाल लेते हैं और स्वच्छ करके पुनः इसके स्थान पर स्थापित कर देते हैं। सहजयोगियों को ये विधि अपनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। मूलाधार चक्र को स्वच्छ करने के लिए सहजयोगियों के पास सर्वोत्तम उपाय अपने हृदय को स्वच्छ रखना और सद्विचार और सद्कर्मों से परिपूर्ण पावन जीवन बिताना है। अबोधिता के माध्यम से व्यक्ति अपने चित् को स्वच्छ और निर्लिप्त बना सकता है। श्रीगणेश जीवन्त देवता हैं और हर समय गतिशील हैं। उनकी महिमा शब्दों में वर्णन नहीं की जा सकती। श्रीगणेश ने प्रकृति में आध्यात्मिक ज्वाला ज्योतित कर दी है और यह ज्वाला हर चक्र की सभी पंखुड़ियों को उत्तेजित (प्रेरित) करती है। उनके पिता, सर्वशक्तिमान परमात्मा उनके गुरु हैं। उनकी अपनी माँ आदिशक्ति समेत अन्य सभी देवी-देवता आदिगुरु दत्तात्रेय के शिष्य हैं।

श्रीगणेश सभी मनुष्यों से ऊपर हैं, ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी उनके सद्गुणों के समीप नहीं आ सकते। ईसामसीह के मानव रूप में श्रीगणेश पूरी मानव-जाति की देखभाल करते हैं क्योंकि वे ही ब्रह्माण्ड के आधार हैं। अबोधिता और पावनता का मूर्त रूप बनकर वे ईसामसीह के मानव रूप में अवतरित हुए और पूरे विश्व के आश्रय बने। उनका स्थान आज्ञा चक्र है, जो स्वर्ग के साम्राज्य (विराट के सहस्रार) का द्वार है।

मूलाधार चक्र त्रिपक्षीय पावन अक्षर ॐ (Aum) के पहले अक्षर X से

बना है। हर अक्षर एक मन्त्र है। 'X' मन्त्र आदिशक्ति की महाकाली शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है। मूलाधार चक्र का सृजन महाकाली ने श्रीगणेश की माँ गौरी के रूप में किया था। बाद में उन्होंने अपना पुत्र महालक्ष्मी को सौंप दिया जिन्होंने 'कुँआरी मेरी' (Virgin Mary) का जन्म लेकर श्रीगणेश को ईसामसीह के मानव रूप में जन्म दिया।

किसी भी प्रकार का जबरदस्ती का त्याग या अवांछित लिप्सा अनुकम्पी नाड़ी तन्त्र को उत्तेजित करते हैं। अतिकर्म के दबाव के कारण साधक का चित् व्यक्ति की स्थिति के अनुरूप ईड़ा या पिंगला की ओर जाने लगता है। सर्वप्रथम साधक को गहरे लाल, बहुरंगे निरंतर परिवर्तनशील चक्र के रूप में मूलाधार चक्र दिखाई पड़ता है। साधक के श्रीगणेश के साम्राज्य के अनधिकार परीक्षण से उत्तेजित श्रीगणेश के क्रोध के फलस्वरूप ये गहरा लाल रंग दिखाई देता है। ये अशिष्ट कार्य श्रीगणेश और उनकी माँ कुण्डलिनी का अपमान है। व्यक्ति यदि इस परीक्षण को जबरदस्ती आगे बढ़ाने का प्रयत्न करे तो इस चक्र के ठीक मध्य में वह क्रुद्ध और उत्तेजित श्रीगणेश को देख भी सकता है। पथभ्रमित साधक को तो आघात भी लग सकता है या उसे अपने शरीर पर भयंकर जलन महसूस होती है और वह अवर्णनीय अशान्ति की स्थिति का कष्ट झेलता है। विशेष रूप से पूर्व दृश्य (Flash-backs) कहलाने वाले भूतकाल के भयंकर अनुभव घटित हो सकते हैं। कई लोग तो जंगली पशुओं की तरह से चिल्लाते और उछलते हैं, कुछ अन्य नपुंसक और अंगप्रदर्शन के शौकीन लोग पूर्णत: निर्वस्त्र हो जाते हैं।

इन सभी विभ्रान्त (भटकी हुई) विधियों के उपयोग द्वारा कुण्डलिनी उठाने का प्रयत्न हानिकारक है, क्योंकि इन विधियों से कुण्डलिनी की वास्तविक जागृति के अवसर हमेशा के लिए समाप्त हो जाते हैं। अचेतन (परम चैतन्य) के साम्राज्य में प्रवेश करने के स्थान पर साधक भूतकाल के साम्राज्य में प्रवेश कर जाता है क्योंकि नाराज़ हो कर इस द्वार के रक्षक और

नियंत्रक श्रीगणेश वहाँ से चले जाते हैं। सुप्तचेतन मन (अवचेतन) और मानवीय चेतना, पशु चेतना के स्तर तक पतित हो जाते हैं। पशुओं का अनुकरण करने का प्रयत्न करने से मानव कभी भी महामानव स्थिति में उन्नत नहीं हो सकता।

अत: आदिशक्ति का अपमान करने वाले साधक को श्रीगणेश कठोर दण्ड देते हैं। कोई उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता क्योंकि अपनी माँ के प्रेम की पावन आत्मा में वे अलंघ्य (पूर्णतम सुरक्षित) हैं। ईसामसीह का पुनर्जन्म उनकी अनश्वरता को प्रमाणित करता है। उन तक पहुँचने के लिए कठोर प्रयत्न करने वाले साधक केवल अनुकम्पी नाड़ी तन्त्र के माध्यम से कार्य कर सकते हैं और इस प्रकार उनका चित् या तो दाईं वाहिका पर चला जाता है या बाईं पर, क्योंकि मध्य परानुकम्पी नाड़ी तन्त्र तो उनकी पहुँच से बाहर का क्षेत्र है। इस प्रकार के मूर्खतापूर्ण आग्रह करने वाले पथभ्रमित साधक भयानक रूप से एक ओर धकेल दिए जाते हैं और अन्तत: वे भविष्यदर्शी (Clairvoyant) बन जाते हैं। उनका अनियंत्रित चित् श्रीगणेश के चक्र की केवल बाह्य सीमा पर रहता है और बाह्य परिघि पर ही घूमता रहता है। कई बार ऐसे साधक इस चक्र के दृश्य के अपने वृत्तान्त सुनाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो श्रीगणेश का क्रोध चक्र की सतह पर घूमते हुए लाल और नीले रंग की अग्नि के रूप में उबाल खा रहा हो। परन्तु इन मूर्ख लोगों के लिए इस प्रक्रिया का कोई अर्थ नहीं होता। वास्तव में यह चक्र प्रात:कालीन खिले हुए पुष्प की तरह गोलाकार है। पथभ्रष्ट साधक यदि अपनी जिद्दी साधना को चालू रखता है तो श्रीगणेश गरम लाल रंगों में दिखाई पड़ते हैं और इस प्रकार साधक को अनधिकृत परीक्षण बन्द कर देने की चेतावनी देते हैं। इस अवस्था में साधक यदि अपनी गतिविधि को नहीं त्यागता, तो भयानक तपन और जला देने वाली संवेदना के रूप में प्रकट होने वाले क्रोध से श्रीगणेश उसे दण्डित करते हैं। कई बार नाभि से आरम्भ होकर गले के चहुं ओर अण्डाकार

रेखा में फैल जाने वाले छाले भी पड़ सकते हैं। ऐसा बिना किसी पूर्व चेतावनी के भी घटित हो सकता है। साधक जली हुई बिल्ली की तरह से उछल सकता है या उसे कष्टकर जलन संवेदना का अनुभव हो सकता है। ये सारे लक्षण पथभ्रष्ट साधक के श्रीगणेश और उनकी माँ के प्रति किए गये अपमान के कारण होते हैं, कुण्डलिनी जागरण के कारण नहीं। बहुत से मूर्ख लोग कष्ट की इस अवस्था को कुण्डलिनी जागृति के फलस्वरूप मान लेते हैं। इस प्रकार के शारीरिक प्रतिरोध (कष्ट) केवल उन्हीं लोगों में दिखाई देते हैं, जो मानसिक रूप से पाप (अधर्म) को स्वीकार नहीं करते। परन्तु अपने पूर्व कर्मों या दुर्बलताओं के कारण जो लोग पाप स्वीकार करते हैं, वो समझ लेते हैं कि उनकी ज़िम्मेदारी समाप्त हो गई। वो हल्केपन की अनुभूति करते हैं और उनके माध्यम से कार्य करने वाली मृत आत्माएं इन सुखों का आनन्द लेती हैं। ये साधक स्वयं को अत्यन्त पावन भी मान लेते हैं। वास्तव में ऐसा साधक इन मृत आत्माओं के पूर्ण नियन्त्रण में होता है और दास एवं संवेदनहीन व्यक्ति बन जाता है।

जो साधक वास्तव में परम और शाश्वत को प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें ये सब असत्य और हानिकारक अनाड़ी विधियाँ त्यागनी होंगी। उन्हें ये समझ लेना आवश्यक होगा कि जो हानि वो स्वयं को पहुँचा रहे हैं ये अस्थाई नहीं है। जन्म-जन्मांतरों के लिए वे अपनी कुण्डलिनी के पथराने या जम जाने के कारण बन जाते हैं। इसका एक अतिरिक्त परिणाम ये भी होता है, कि भिन्न देवी-देवताओं के क्रोध के कारण सुषुम्ना का मध्य मार्ग फिसलना हो जाता है। क्रोध में देवी-देवता वहाँ से हटकर सुप्त अवस्था में जा सकते हैं और अदृश्य होकर साधक का बहिष्कार कर सकते हैं। ऐसे लोगों की कुण्डलिनी उच्चतम बिंदु तक पहुँच कर तालु अस्थि से नीचे की ओर खिंच जाती है। ऐसे बिगड़े हुए साधकों की कुण्डलिनी को जागृत अवस्था में बनाए रखना सहजयोगियों के लिए भी कठोर परिश्रम का कार्य है। ऐसे लोगों में सहजयोग

कार्यान्वित होना पूर्णत: असंभव है। उनके लिए ये समझ लेना आवश्यक है कि यदि उनमें पावनता विवेक नहीं है और यदि वे संयमी जीवन व्यतीत नहीं कर रहे तो न तो वे श्रीगणेश को धोखा दे सकते हैं और न ही वे श्रीगणेश के दण्ड से बच सकते हैं, क्योंकि वे ही सभी कर्मों के अन्तिम निर्णायक (न्यायमूर्ति) हैं। सहजयोग और आदिशक्ति उनकी प्रतिक्रियाओं के साक्षी मात्र हैं।

बहुत से साधक अत्यन्त परिपक्व प्रतीत होते हैं। इस श्रेणी में स्वघोषित विशिष्ट वर्ग (Elite) आते हैं जो सतह पर अपने व्यवहार में अत्यन्त उचित हैं और एक संतुलित व्यक्तित्व की तस्वीर को दर्शाते हैं परन्तु ऐसे लोगों का प्रचण्ड मनोवेग और कामुकता उनकी व्यभिचारी दृष्टि के माध्यम से अनावृत होते हैं। प्रेम खिलवाड़ फैशनेबल और अतिविकसित समूहों का एक आम खेल है, और सभी कुछ अत्यन्त चालाक और सतर्क ढंग से किया जाता है। युवा और वृद्ध समान रूप से बढ़-चढ़ कर मानव आचरण की इस भ्रष्टतम शैली में फँसते जा रहे हैं। उनकी अदृश्य दृष्टि निरंतर एक से दूसरे व्यक्ति की ओर जाती रहती है। कोई पावन व्यक्ति यदि इन कामातुर लोगों से आँखें मिला ले तो वह भी संदूषित हो सकता है।

इस प्रकार एक अत्यन्त भ्रष्ट आदतों वाला समाज विकसित हो गया है। इसमें आयु का ध्यान रखे बिना, किसी भी प्रतिलिंगी की दृष्टि मात्र उसके प्रति कामुकता के भाव जागृत करती है। ये सारा कार्य इन लोगों की दृष्टि के माध्यम से कार्य करने वाली मृत-आत्माओं के माध्यम से होता है। ऐसा व्यक्ति पूर्णत: अशक्त और सनकी हो जाता है। बाह्य रूप से चाहे वो कामोत्तेजक प्रतीक हो, परन्तु अन्दर से वह नपुंसक होता है, जो किसी प्रकार की शारीरिक संवेदना का आनन्द नहीं उठा सकता। यह भूतबाधित व्यक्ति के कार्य हैं और उन्हें भूतबाधित करने वाली मृत आत्माएं हर समय सामूहिक अवचेतन मन से जुड़ी रहती हैं और वहाँ से बहुत सी अन्य मृत आत्माएं इन तथाकथित विशिष्ट वर्ग के लोगों में प्रवेश कर जाती हैं।

ऐसे व्यक्ति के मूल्य पर आनन्द उठाने की इच्छुक मृत आत्माओं के भयानक आक्रमणों से कुचले हुए ऐसे लोग अधिकतर उत्तेजना और अशान्ति की अनैसर्गिक अवस्था में बने रहते हैं। मानव के चक्षु, यौन अनुभूतियों को महसूस करने के लिए नहीं बने थे। विकृतियों के कारण जो लोग इस प्रकार से समय व्यतीत करने के चक्कर में फँस जाते हैं वे अपने जीवन में बहुत शीघ्र ही नपुंसक हो जाते हैं। समय बीतने के साथ ऐसे लोग भ्रष्ट, कामुक और देहविहीन नपुंसक आत्माओं के प्रवेश के लिए सर्वोत्तम माध्यम बन जाते हैं। ये मृत आत्माएं इनसे आकर्षित होती हैं और अपनी अपुरस्कृत (अपूर्ण) इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए ये इस प्रकार के बन्धनग्रस्त जीवित मनुष्यों में प्रवेश प्राप्त करने की सदा प्रतीक्षा में रहती हैं। व्यक्ति जब इन आदतों में अधिक लिप्त होता है, तो इन मृत आत्माओं के समूह उस व्यक्ति में प्रवेश करने के लिए एकत्र हो जाते हैं। जन्मजन्मांतरों तक व्यक्ति इस प्रकार की भूतबाधाओं को ढोता रहता है। यह इस तथ्य को दर्शाता है कि क्यों इतनी बड़ी संख्या में महत्वपूर्ण लोग-राजा, राजनीतिज्ञ, प्रशासक और वैज्ञानिक - जन्म से इतने अधिक भ्रष्ट होते हैं।

इन बाधाओं का शिकार ऐसा दयनीय व्यक्ति पहले तो इस सत्य को नकारता है कि उसे इतनी गंदी आदतें हैं और फिर इसके साथ समझौता कर लेता है। परन्तु श्रीगणेश तो हमेशा जागृत रहने वाले देवता हैं और सभी पाखण्डियों को जानते हैं। अत: उन्हें धोखा देने का प्रयत्न करना समझदारी नहीं है। बिना योग्यता प्राप्त किए श्रीगणेश को आत्मसाक्षात्कार के लिए अपनी सिफारिश करना अत्यन्त कठिन है। ऐसे व्यक्ति की दृष्टि समाप्त हो सकती है या उसकी दृष्टि दुर्बल हो सकती है। अन्धेपन के बहुत से अन्य कारण भी हैं, परन्तु ये आदत निश्चितरूप से आँखों के लाली रोग या बहुत छोटी आयु में दृष्टिहीनता का कारण बन सकती है। इस आदत से उत्पन्न होने वाली एक अन्य बीमारी स्मृति की कमी (Memory Loss) है। ऐसे लोग

अन्ततः आँखों के माध्यम से यौन विकृतियों के अतिरिक्त किसी अन्य चीज़ का आनन्द नहीं उठा सकते। जब वे फिल्म देखने, किसी संगीत समागम में, नाटक देखने या किसी अन्य सामूहिक कार्यक्रम में जाते हैं तो भी अपनी इस बुरी लत को पूरा करने में व्यस्त रहते हैं। वास्तव में वे कार्यक्रम का आनन्द नहीं उठा सकते और इस प्रकार अपना सारा समय बर्बाद कर देते हैं। कला-सौन्दर्यबोध सम्वेदना विहीन हो जाने के कारण वे केवल सतही सौन्दर्य का आनन्द उठा सकते हैं। यह उनके चित् को पाप और गन्दगी के गर्त में ले जाता है। आत्मा के गहन, शाश्वत आनन्द से उनका कोई सरोकार नहीं रहता। मृत आत्माओं ने जिन लोगों की दृष्टि पर नियन्त्रण किया हुआ है उन्हें चाहिए कि अपनी दृष्टि को नीचे की ओर (पृथ्वी पर) बनाए रखें ताकि ये आत्माएं उनसे स्थायी रूप से चली जाएं।

कुछ अन्य साधक स्पष्टवादी तथा सच्चे होने का दावा करते हैं। वो और भी बड़े पापी हैं क्योंकि अन्तःकरण की आवाज़ को अनसुना कर देने की आदत के कारण वे निडर होकर पापकर्मों का गुणगान करते हैं और आसुरी विकृतियों का मज़ा लेते हैं। इन पथभ्रष्ट लोगों के बचने का एकमात्र उपाय ये है कि जीवन का नया पन्ना पलट कर पूरे हृदय से, निःसंकोच, श्रीगणेश को समर्पित हो जाएं। अपने व्यक्तिगत जीवन को सुधारते हुए हर समय उनसे क्षमा माँगे। अत्यन्त प्रेमपूर्वक ऐसे लोगों पर रहम करते हुए, उन्हें इस वास्तविकता के प्रति सावधान किया जाना आवश्यक है कि अपने अपराधिक जीवन पर गर्व करने वाले तथा अपनी विकृतियों को चालू रख कर उनका आनन्द लेने वाले लोग, श्रीगणेश के अभिशाप से निरन्तर नरक की ओर लुढ़कते चले जाएंगे। उनके उद्धार की कोई आशा भी न बचेगी। सन्देह और परनिन्दा करने वाले लोगों के लिए यह कटुसत्य है।

श्रीगणेश का सिर शिशु गज का है। गज श्रीआदिशक्ति का वाहन और सत्य तथा तेजस्विता का प्रतीक है। इसके अतिरिक्त पशु मस्तिष्क शाश्वत

बाल-सुलभता और अबोध व्यक्तित्वमय होता है क्योंकि पशुओं में अहं और प्रतिअहं मनुष्यों की तरह विकसित नहीं होते। मनुष्यों में मस्तिष्क पूरी तरह अहं और प्रति अहं से ढक जाता है, जिसके कारण तालु अस्थि पूरी तरह कठोर हो जाती है। इस प्रकार सर्वव्यापी परमेश्वरी शक्ति की मुख्यधारा से कट कर और अलग होकर, व्यक्ति में अपना ही एक व्यक्तित्व विकसित हो जाता है। दूसरी ओर, श्रीगणेश सर्वव्यापी शक्ति से हमेशा एक स्वर रहते हैं और पशु के सिर वाले होने के कारण उनका सम्बन्ध कभी नहीं टूटता।

विकास प्रक्रिया में, पशु जब विशालकाय हुए, तो इनमें से हाथी ही एकमात्र विशाल पशु था जिसकी श्रीविष्णु की कृपा से रक्षा हुई (गजेन्द्र मोक्ष)। इससे प्रमाणित होता है, कि विशालकाय पशुओं में केवल गज ही संयमी तथा धार्मिक था। ये श्रीलक्ष्मी का वाहन है और अबोधतम जीवित मानवीय पशु। पशुओं में क्योंकि अहं का विकास नहीं होता, मनुष्यों की तरह वे सर्वव्यापी शक्ति से कट नहीं जाते।

श्रीगणेश की सूंड ही उनकी कुण्डलिनी है। उनका केवल एक चक्र है, जो उनकी सूंड के सिरे पर स्थित है। श्रीगणेश क्योंकि निष्कलंक (अबोध) हैं, उनका यह चक्र किसी भी प्रकार के आसुरी और पापमय सन्दूषण से मुक्त है तथा पूर्णतः सुरक्षित है। अच्छाई और बुराई के युद्ध के निर्भीक योद्धा, वे एकमात्र ऐसे देवता हैं जिनका चक्र उनके शरीर के बाहर, परन्तु उनके ठीक सामने स्थापित है। सर्वव्यापी परमेश्वरी शक्ति (प्रणव) और श्रीगणेश के बीच सम्बन्धों को एक अपरिष्कृत उपमा के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है। भारत में घर में उपयोग किया गया शुद्ध पानी गंदे पानी के रूप में बाहर चला जाता है। सारी गंदगी और अशुद्धियों को साथ लेकर पाइप में से होता हुआ यह घर की नाली से बह कर एक मलकुण्ड (छप्पड़) बनाता है, जिसके कीचड़ में कमल खिल उठता है। श्रीगणेश के अबोध, पावनता प्रदायक, निष्कलंक और निर्लिप्त व्यक्तित्व को भी मानव शरीर-रचना में इसी प्रकार

स्थापित करने की कृपा की गयी है। अपनी अद्वितीय अबोधिता, शुचिता और पावनता के कारण सारी अशुद्धियों के बीच भी वे इनसे निर्लिप्त और ऊपर बने रहते हैं। आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करने के लिए अति-लिप्सा और यौन विकृतियों का मार्ग अपनाना, इस गंवारू उपमा के अनुरूप, घर में प्रवेश करने के लिए गन्दी नाली के रास्ते मैले, गन्दे पानी के बीच से निकलना होगा। इस घृणित कार्य के लिए श्रीगणेश अत्यन्त उग्र प्रतिक्रिया करेंगे।

मूलाधार चक्र के कार्य

इन उपकेन्द्रों और उनके कार्यों के विषय में विस्तारपूर्वक जानने के लिए पाठक पराअनुकम्पी नाड़ी तन्त्र की कोई पुस्तक पढ़ लें। श्रोणीय क्षेत्र के श्रोणीय केन्द्र में स्थापित मूलाधार चक्र के चार उपकेन्द्र हैं :

१. नीचे के श्रोणीय क्षेत्र में कष्टदायक (बवासीर) नाड़ियों को नियन्त्रित करने वाला स्नायविक केन्द्र।

२. मूत्राशय को नियन्त्रित करने वाला मूत्रकोश।

३. पुरस्थ (Prostate) को नियन्त्रित करने वाली पुरस्थ ग्रन्थि जो यौन अवयवों (sex organs) को भी नियन्त्रित करती है।

४. महिलाओं में गर्भाशय (uterus) और पुरुषों में अण्डकोश (ग्रन्थि) (testicles) को नियन्त्रित करने वाला गर्भकोश।

इस चक्र के ज्योतिर्मय होने पर व्यक्ति को प्रलोभनों, विशेष रूप से यौन-जीवन पर स्वामित्व प्राप्त हो जाता है। लिंग भी अन्य संवेदी अवयवों की तरह एक सुखप्रदायक अवयव है। मानव जीवन में इसकी बहुत छोटी भूमिका होती है। परन्तु इसे रीढ़ के बाहर स्थित स्थूल श्रोणीय केन्द्र में स्थापित किया गया है और इसका एक उपकेन्द्र यौन गतिविधि को नियन्त्रित करता है। इस कारण इसमें अन्य मानवीय गतिविधियों की अपेक्षा कहीं

अधिक अन्तर्जात सम्वेदना है। अन्य सभी चक्रों के सूक्ष्म केन्द्र या तो रीढ़ के अन्दर हैं या मस्तिष्क में। श्रीगणेश को ठीक प्रकार समझ लेने और उनकी पूजा-अर्चना द्वारा व्यक्ति यौन-भावों का विवेक और संयम पूर्वक निर्वाह कर सकता है। यह बात पहले ही स्पष्ट की जा चुकी है कि मानव विकास का यौन सुखों से कोई सरोकार नहीं है। इसके विपरीत श्रीगणेश के प्रतीक के माध्यम से साधक को सूचित किया जाता है कि आध्यात्मिक सीढ़ी पर चढ़ने के समय या इसके फलस्वरूप होने वाले आध्यात्मिक पुनर्जन्म के समय उसे यौन-भावों के प्रति इतना ही अबोध होना चाहिए जितना अबोध नन्हां शिशु माँ के प्रति होता है। सूचना देने के लिए कई बार तो श्रीगणेश शाश्वत शिशु के रूप में स्वप्न में दिखाई देते हैं। साधक को चाहिए कि ध्यान-धारणा के समय तथा सहजयोग में, आदिशक्ति के समक्ष होते हुए, पुरुष या महिला-भाव से मुक्त हो जाएं।

अज्ञान या गलत मार्गदर्शन के कारण यदि कोई साधक सम्भोग के माध्यम से समाधि (ध्यान) में जाने का प्रयत्न करता है, तो हमारी उपमा के अनुरूप यह गन्दी नाली के बीच से निकल कर सुन्दर घर में प्रवेश करने जैसा होगा। यदि ऐसा करना ठीक है, तो मलकुण्ड में एकत्र गन्दा पानी पी कर देख लीजिए। ऐसा व्यक्ति शुद्ध जल के आनन्द, लाभ और खुशी की कभी आशा नहीं कर सकता। उसके विपरीत, मूलाधार चक्र कमल में विराजमान श्रीगणेश उसे कठोर दण्ड देंगे और हानि पहुँचाएंगे। एकान्त में स्नान करती हुई उनकी माँ गौरी के स्नानागार में प्रवेश करने के विषय में कोई सोच भी नहीं सकता। भारत में जिस कुएं, तालाब या नदी पर महिलाएं स्नान करती हैं, वहाँ आम तौर पर, उपयुक्त पूजा करके श्रीगणेश की मूर्ति स्थापित कर दी जाती है। उस स्थान पर स्नान करने वाली महिलाओं की पावनता की रक्षा करने के लिए यह मूर्ति स्थापित की जाती है। वहाँ से गुज़रते हुए, स्नान करती हुई महिलाओं को अपवित्र दृष्टि से देखने वाले लोगों को श्रीगणेश दण्डित करते

हैं। पश्चिम में तैराकी स्थलों पर महिलाओं को देखना सामान्य बात है। अपनी शुचिता की चिन्ता किए बिना महिलाएं भी शरीर का प्रदर्शन करने के लिए बहुत उत्सुक रहती हैं। इन कार्यों को वे पावन मानती हैं। वे स्वयं चाहे जो मान लें, वे श्रीगणेश को धोखा नहीं दे सकतीं।

श्रीगणेश जब किसी को गलत मार्ग से आने का प्रयत्न करते देखते हैं तो उनका क्रोध फूट पड़ता है और क्रोध से वे अपनी सूंड हिलाते हैं। अनुकम्पी नाड़ीतन्त्र को उत्तेजित करके वे उस व्यक्ति के शरीर में भयंकर गर्म लहरियाँ उत्पन्न कर देते हैं। उनका क्रोध शरीर की जलन और कैन्सर रोग समेत अन्य सभी अनुकम्पी लक्षणों का कारण बनता है। अनधिकृत ढंग से कुण्डलिनी उठाने का प्रयत्न करने वाले साधकों की कष्ट संवेदना की यह व्याख्या है। इन लोगों को इतनी भयंकर अनुभूतियाँ हुई हैं, कि कुण्डलिनी जागृति के नाम मात्र से डर के कारण आम आदमी काँप उठता है। ऐसी पुस्तकें पढ़ने वाले लोग यदि ध्यान-धारणा का विचार ही त्याग दें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वास्तव में कुण्डलिनी आपकी ईश्वरी माँ हैं और आप उनके एकमात्र प्रियतम पुत्र। ब्रह्माण्ड में वे आपसे सबसे अधिक प्रेम करती हैं और पुनर्जन्म द्वारा आपको उच्चतम आनन्द प्रदान करना चाहती हैं। बार-बार आपके साथ जन्म लेकर वे त्रिकोणाकार पावन अस्थि में निवास करती हैं। वे आपकी समस्याओं का लेखा-जोखा रखती हैं और जब तक आपको कोई उच्च विकसित आत्मसाक्षात्कारी गुरु या सहजयोगी नहीं मिल जाता वे प्रतीक्षा करती हैं। केवल यही लोग स्वत: जागृति देने के अधिकारी होते हैं। वे केवल उन्हीं के प्रति संवेदनशीलता दिखाती हैं, किसी अन्य के प्रति नहीं। वे कभी आपको हानि नहीं पहुँचा सकतीं, परन्तु यदि कोई अनधिकृत व्यक्ति उनकी लज्जाशीलता भंग करने का प्रयत्न करता है तो वे उसे मार भगाती है और लज्जा से जड़ (जम जाना) अवस्था में चली जाती हैं। कोई भ्रष्ट कुगुरु यदि उन पर यौनाचार करने का प्रयत्न करता है तो स्वयं पर अत्यन्त क्रोधित हो कर

वे श्रीगणेश को अपने क्रोध की अभिव्यक्ति के लिए स्वतन्त्र कर देती हैं।

श्रीगणेश अबोध बालक हैं और उन्हें ही उनके एकान्त (गोपनीय अवस्था) में उपस्थित रहने की आज्ञा है। अबोध साधकों को मूर्ख बनाने का प्रयत्न करने वाले और अपनी अनैतिक गन्दी आदतों द्वारा उनका अनुचित लाभ उठाने वाले लोगों का हमेशा के लिए नरक में धकेला जाना पूर्वनिश्चित होता है। कुछ वर्ष पूर्व एक युवा डॉक्टर मुझे मिलने आया। उसने स्वयं को भगवान (परमात्मा) कहने वाले ऐसे ही एक कुगुरु के प्रवचन सुने थे। मैं हैरान थी कि किस प्रकार उसकी बुद्धिभ्रष्ट कर दी गई थी। अत्यन्त दृढ़ धारणा के साथ वह बहस कर रहा था कि रतिक्रिया के बिना किसी भी प्रकार से योग की अनुभूति प्राप्त नहीं की जा सकती। उसके भगवान ने उसे बताया था कि सम्भोग के बिना पुनर्जन्म प्राप्त कर पाना असम्भव है। डाक्टर होने के कारण वह ये जानता था कि रतिक्रिया के बिना जन्म नहीं होता और विश्वस्त था कि आध्यात्मिक पुनर्जन्म के लिए भी यही सत्य है। मैंने जब उससे पूछा कि, 'जन्म लेने के लिए क्या उसने स्वयं रतिक्रिया की थी, उसने स्वयं क्या किया था?' तो वह हैरान रह गया। उसने स्वीकार किया कि माता-पिता के यौन-जीवन का परिणाम स्वरूप संसार में उसका जन्म हुआ। मेरे प्रश्न कि क्या वह अपने माता-पिता के यौन-जीवन की चर्चा करना चाहेगा- का उत्तर वह न दे पाया।

यह सामान्य सत्य है कि पुनर्जन्म का यौनक्रिया से कोई सम्बन्ध नहीं है, परन्तु यह सत्य हज़म करना लोगों के लिए बहुत कठिन है, विशेषरूप से इस प्रकार के प्रयोगों के विशेष मार्ग पर इतनी दूरी तय कर चुके लोगों के लिए। फिर भी वास्तविक उद्धार के लिए दी गई शिक्षा की ओर तुरन्त ध्यान दिया जाना चाहिए। आधुनिक युग में यौन स्वच्छन्दता के ध्वज के नीचे आकर बहुत से युवाओं ने अत्यन्त भ्रष्ट और विकृत यौन-जीवन अपना लिया है। अधिकतर लोगों ने अज्ञानतावश ऐसा किया है, परन्तु अन्य लोगों में यह मानव के भ्रष्टाचार और अपमानजनक चरित्रहीन लक्षणों के कारण है। किसी

साधक ने यदि गलती से ऐसा किया है तो सहजयोग उसकी क्षतिग्रस्त कुण्डलिनी को सहलाकर उसकी सहायता कर सकता है। समय रहते हुए ऐसे साधक यदि स्वेच्छा से अपनी आदतें परिवर्तित कर लें तो व्यभिचारमय जिज्ञासा का भार वहन करते, इनमें उलझे उनके चित् हल्के हो सकते हैं और धीरे-धीरे वे अपने अन्दर श्रीगणेश को सुस्थिर कर सकते हैं। ऐसे असंख्य साधक हैं जो यौन विलासिता के दास बन चुके हैं, उन्हें स्वयं पर विश्वास नहीं है और वे मुड़कर देखने को भी तैयार नहीं हैं। वे आत्मविश्वस्त हैं कि वे यात्रा पूर्ण कर चुके हैं। परन्तु वहाँ कोई खुशी नहीं है। अतिआसक्ति के कारण वे सामूहिक अवचेतन की कामुक और गन्दी मृत आत्माओं की पकड़ में आ जाते हैं और शीघ्र ही रतिक्रिया का आनन्द उठाने में अक्षम हो जाते हैं।

सारे विश्लेषण का निष्कर्ष समझ लिया जाना आवश्यक है - कि विकास प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए कामुकता का कोई योगदान नहीं है। कामुकता वास्तविक ऊर्जा नहीं है, ये मात्र एक बिंदु है जहाँ व्यक्ति सुख की अनुभूति करता है। ये सुख निर्विचार चेतना के आनन्द की एक छोटी सी झलक है जिसकी अनुभूति तब होती है जब श्रीगणेश या सुषुम्ना, प्रणव के एक कतरे का दस लाखवाँ भाग रिहा (छोड़ना) करते हैं। जब प्रणव की अनुभूति होती है, तो पलभर के लिए निर्विचार स्थिति का सृजन होता है और उस आनन्द के विषय में कुतूहल जागृत होता है। जिन चक्रों में प्रणव की आवश्यकता होती है उन सभी चक्रों में ये घटना घटित होती है। मूलाधार चक्र में केवल इतना ही अन्तर है कि यह रीढ़ के बाहर स्थित है और इस कारण से व्यक्ति कुछ क्षणों के लिए प्रणव के रिसाव की वास्तविक अनुभूति करता है। अन्य चक्रों में व्यक्ति को यह अनुभूति नहीं होती। श्रीगणेश को कामभाव का ज्ञान नहीं है। यौन क्रिया के समय भी वे अपनी अबोधितापूर्वक प्रणव प्रसारित करते हैं। उनके क्रोध में भी अबोधिता है। वे केवल इतना जानते हैं कि उनकी माँ ने उन्हें आदेश दिया है कि उनके निजी मन्दिर (भवन)

में पिछले दरवाज़े से प्रवेश करने की आज्ञा किसी को न दें।

पूर्ण आत्मसाक्षात्कार की अवस्था में मस्तिष्क का पूरा तालु क्षेत्र प्रणव से भर जाता है। बंदरों के मस्तिष्क के तालुक्षेत्र को उत्तेजित करके उन पर प्रयोग किए गये हैं। पाया गया है कि इस क्षेत्र की जरा सी उत्तेजना से भी बंदरों को गहन आनन्द प्राप्त होता है। इससे समझा जा सकता है कि क्यों पूर्ण आत्मसाक्षात्कारी लोगों की शारीरिक या मानसिक यौन गतिविधियों में कोई रुचि नहीं होती। हर समय वे पूर्ण आनन्द में डूबे रहते हैं। यह शाश्वत और आनन्दमय अवस्था है जिसमें वे जीवन नाटक के साक्षी बन कर अपनी जीवित अवस्था का सर्वोच्च आनन्द उठाते हैं। आत्मसाक्षात्कार के बाद सभी मानवीय कार्य आनन्दमय बन जाते हैं।

अन्य गतिविधियों और अन्य उच्च तथा परिष्कृत खोजों में रुचि लेने वाले लोग धीरे-धीरे यौन-सुखों में अपनी दिलचस्पी को कम होते हुए स्पष्ट अनुभव कर सकते हैं। मूल प्रवृत्ति इस प्रकार परिष्कृत हो जाती है, कि उनका चित्त उच्च चक्रों में ही घूमता है। सोचने, चित्रकारी करने, संगीत आदि अन्य गतिविधियों से वे प्रसन्नता प्राप्त करते हैं। परन्तु यह प्रसन्नता अनुकम्पी नाड़ी तन्त्र की सक्रियता के फलस्वरूप प्राप्त होती है। अत: यह गतिविधि उन्हें आनन्द नहीं प्रदान करती, केवल शरारत और आसक्ति से दूर रखती है। इस प्रकार की गतिविधियों में बहुत अधिक लिप्त होने से व्यक्ति के अन्दर स्वार्थी दृष्टिकोण उत्पन्न हो सकता है। कार्यों तथा शब्दों के माध्यम से ऐसे व्यक्ति का व्यवहार उस पर निर्भर लोगों के प्रति उग्र (हिंसक) हो सकता है। अपने हठधर्मी स्वभाव के कारण ऐसा व्यक्ति अत्यन्त आक्रामक बन सकता है। ये लोग भयंकर अधिकारी, मित्र, साथी, पति या पत्नी बनते हैं।

यौन सुखों से भागने वाले लोग भी ऐसे ही सत्य को दर्शाते हैं। मजबूरन ब्रह्मचर्य अपनाने वाले लोग भी मध्य मार्ग के सामान्य जीवन से हट जाते हैं क्योंकि इस प्रकार का जीवन भी अनैसर्गिक है। परन्तु असत्य तर्कों के

माध्यम से बहुत से लोग इसे स्वीकार कर लेते हैं। अधिकतर धार्मिक संस्थाओं के इतिहास को यदि देखें तो इस प्रकार के लोग अधम प्रकार के अत्याचारी और परपीड़क थे। ये अत्यन्त घिनौने और उबाऊ होते हैं। चित् को बनावटी ढंग से विवश करके यौन भावों से दूर ले जाने के कारण ऐसे व्यक्तियों में खालीपन और नीरसता उत्पन्न हो जाती है। वे स्वयं किसी चीज़ का आनन्द नहीं उठाते और न ही किसी अन्य को उठाने देते हैं। अतः एक ओर तो यौन भावों की पवित्रता को अपवित्र करने वाले लोग अपने प्रति हिंसा करते हैं और दूसरी ओर यौन सुखों से भागने वाले अन्य लोगों के प्रति हिंसा करते हैं। दोनों ही परिस्थितियों में अन्तिम परिणाम ये निकलता है कि यौन क्रियाओं से स्थायी और सच्चा आनन्द प्राप्त नहीं होता। शनैः शनैः ऐसे दोनों प्रकार के लोग नपुंसक और रोगी हो जाते हैं।

बहुत से मनोवैज्ञानिकों के यौन निषेध और यौन स्वच्छन्दता के विषय में लिखे गये प्राचीन सिद्धान्त भी मनुष्य स्वभाव की अधूरी समझ पर आधारित हैं। उन्हें केवल मन (Psyche) नामक बाईं अनुकम्पी वाहिका (ईड़ा नाड़ी) का ज्ञान था। यौन आसक्ति यदि संतुष्ट करती तो ऐसे लोगों के मस्तिष्क से यौन गतिविधियों के प्रति रुचि घटकर समाप्त हो गई होती। अच्छे बच्चों को जन्म देने वाले सुखी विवाहित लोगों के साथ यही घटित होता है। मृत्यु से पूर्व वे न तो नपुंसक होते हैं और न असामान्य, इसके स्थान पर वे परिपक्व हो जाते हैं और हर समय यौन गतिविधियों के विषय में नहीं सोचते। मनोवैज्ञानिक ये नहीं जानते कि अपने बाएं या दाएं अनुकम्पी तन्त्र से बहुत अधिक काम लेने वाले लोगों का सम्बन्ध, अन्ततः, सुषुम्ना के मध्य अनुकम्पी मार्ग से टूट जाता है।

बच्चों को यौन शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं है, ये यौन सम्बन्धों को अवांछित महत्व देना मात्र है। पशुओं को कोई यौन शिक्षा नहीं दी जाती फिर भी उन्हें इसका पूरा आवश्यक ज्ञान होता है। यौन क्षमता का सृजन केवल

बच्चे उत्पन्न करने के लिए किया गया था, शारीरिक आनन्द के लिए नहीं। इसके विषय में अधिक बतंगड़ बनाना अनावश्यक है। यौवन आरम्भ (puberty) के समय माता-पिता को चाहिए कि बच्चों को एकांत में शालीनतापूर्वक ठीक प्रकार से यौन सम्बन्धों के बारे में समझा दें। पश्चिमी देशों में बच्चों से यौन सम्बन्धों के विषय में बातें करना उनकी अबोधिता को नष्ट करता है या खतरे में डालता है। समाज में अज्ञानमय और गैर ज़िम्मेदाराना व्यवहार के परिणाम स्पष्ट देखे जा सकते हैं।

विकास प्रक्रिया में, मनुष्य को यौन-क्रिया में निर्विचार चेतना की एक झलक मिलती है। इस प्रकार वे आनन्द की धारणा से परिचित होते हैं। कुछ विकसित लोग अन्य स्रोतों से आनन्द की धारणा प्राप्त करते हैं आरै सहजयोगी बनने के लिए उन्हें यौन भावों की बिल्कुल भी आवश्यकता नहीं होती। अबोध बच्चे आत्मसाक्षात्कार के लिए सबसे अधिक उपयुक्त हैं। इससे प्रमाणित होता है, कि आत्मसाक्षात्कार की वास्तविक अनुभूति में यौन सम्बन्धों के ज्ञान की कोई भूमिका नहीं है।

प्रेम के नैसर्गिक भावों की गुणवत्ता का श्रेष्ठताविवेक बच्चों में भर पाना तभी तक सम्भव है जब तक वे पाँच वर्ष की आयु के होते हैं और उनका अहम् और प्रति अहम् पूर्णतः विकसित नहीं हुआ होता। इस आयु तक तालु अस्थि का पूर्ण अस्थिकरण नहीं हुआ होता तथा बच्चा परमेश्वरी प्रेम की सर्वव्यापी उत्कृष्ट शक्ति से पूरी तरह सम्बन्धित होता है। इस आयु में बच्चा यदि अपनी माँ और बहन, चाची, मामी या दादी आदि अन्य सम्बन्धियों के साथ सोता है तो उसमें पावन सम्बन्धों का श्रेष्ठ विवेक विकसित होता है। यह विवेक यौन विचारों से पूर्णतः परे है और इसका यौन विचारों से कोई सरोकार नहीं है। लड़के, लड़कियों, दोनों के लिए, ये बात सत्य है। परमेश्वरी प्रेम से एकरूप चित् अनुभूतियों के सभी पावन और उत्कृष्ट अनुभवों को स्पष्ट करता है। सम्बन्धित व्यक्ति में यह खुशनुमा अबोधिता के सुन्दर भूतकाल के विवेक

(स्मृति) की रचना करता है।

माता-पिता से यौन सम्बन्धों के विषय में अमर्यादित बातचीत करने वाले लोगों को बचपन में बहुत गन्दी अनुभूतियाँ हुई होंगी। अपने भ्रष्ट मात-पिता या विकृत समाज, जिसमें वो रहते हैं, के प्रभाव में बहुत से लोग यौन विकृतियों के शिकार हो जाते हैं। कुछ थोड़े अपवाद हो सकते हैं, परन्तु इन विकृति-विज्ञान (Pathological) रोगियों को अनावश्यक महत्व देकर इसे वर्जनीय बनाने के स्थान पर हम इसे (मार्गदर्शक) नियम बना रहे हैं। दुर्भाग्यवश ऐसे सभी पथभ्रष्ट प्रयास, प्रायः मनुष्य को अनैसर्गिक मार्ग पर ले जाने के कारण बने हैं। औद्योगिक समाज ने इन सभी मार्गों की अत्यन्त चालाकी से सराहना की है। ये समाज विकास मार्ग के पूरी तरह विरोध में हैं। धर्म के उलझ जाने और अस्त-व्यस्त हो जाने के कारण मानव का व्यवहार पशुओं से भी बदतर हो जाता है। पशु भी केवल संतान उत्पन्न करने के लिए, कुछ सीमाओं के साथ, यौन क्रियाएं करते हैं, परन्तु मनुष्य ने तो धर्म और मर्यादा का पूरा विवेक ही खो दिया है।

एक घिसापिटा तर्क ये दिया जाता है, कि इच्छाओं का दमन करने से प्रतिअहम् का भाव घटित होता है। जैसा पहले वर्णन किया जा चुका है, इच्छाओं में अत्यधिक लिप्सा अहम् के बन्धन भी बनाती है। दुर्भाग्य की बात ये है, कि अहम् के बन्धनों की चेतना स्वतः प्रमाणित नहीं है। ऐसे लोगों में अहंकार घातक रूप धारण कर लेता है और जब तक अहंकार निरंकुशतापूर्वक या मनोरोगी की तरह आचरण नहीं करने लगता, मनोवैज्ञानिक और उसके रोगी को इसका पता ही नहीं चलता। अहंकार के बन्धनों द्वारा होने वाली हानि सामान्यतः वर्णित चेतन दमन (subconscious suppression) नाम से प्रसिद्ध प्रति अहम् के बन्धनों से होने वाली हानि से कहीं अधिक होती है।

मध्यमार्ग आधार है और यह विवेक पर निर्भर है। मनुष्य के केवल आधे

यौन स्वभाव के विषय में एकतरफ़ा ज्ञान अत्यन्त खतरनाक है। इतना ही नहीं, असामान्य लोगों, जो स्वयं मनोवैज्ञानिकों के रोगी हैं, के विषय में एकत्र किया गया ज्ञान सामान्य मनुष्यों के भाग्य का मार्गदर्शक नहीं हो सकता। स्वयं को मनोवैज्ञानिक कहने वाले असामान्य लोगों की खोज पर आधारित, धारणाओं को वेदवाक्य नहीं मान लिया जाना चाहिए। कभी-कभी अपने सिद्धांतों को न्यायोचित ठहराने का प्रयत्न करने वाले लोग भी अपने व्यक्तित्व की मनोग्रन्थिओं से पीड़ित होते हैं। कई बार अपनी उमंग में ये लोग असामान्य लोगों के विषय में की गई अपनी खोजों को इस प्रकार से लोकप्रिय बनाते हैं मानो, मनुष्यों के जनसमूह के लिए यह तस्वीर अत्यन्त तर्कसंगत हो।

आधुनिक काल में मनोविज्ञान बहुत विकसित हुआ है। मनोवैज्ञानिक यौन-विकृतियों की अधमता को समझते हैं। परन्तु आरम्भिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा समाज से सच्चाई और धर्म को पटरी से उतार देने के बाद इसे वापिस पटरी पर लाना बहुत कठिन कार्य है। यह अवपतन पटरी से उतारने वाले मनोवैज्ञानिकों की सूझबूझ से भी परे है। मनोविज्ञान का विज्ञान इतना अधिक विकसित हो चुका है कि आज तो ये करुणा, प्रेम और मनोसामंजस्य (Psycho-synthesis) की बातें करते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिक तो तुच्छ व्यक्तित्व और उच्च व्यक्तित्व की भी बातें करते हैं, परन्तु उनके पूर्वज तो लोगों को यौन विलासिता का दास बना चुके हैं और यही लोग अब बलात्कारियों और वेश्याओं के अग्रदूत (पूर्वज) बनेंगे। मनोवैज्ञानिकों के मनुष्य के विषय में अधूरे ज्ञान ने पाश्चिमात्य समाज के पारिवारिक जीवन को नष्ट कर दिया है। बड़ी सीमा तक, मानव के सुन्दर और बहुमूल्यतम व्यक्तित्व के साथ किए गये उनके नौसिखिए प्रयोग उसके लिए उत्तरदायी हैं। अब फलस्वरूप यौन अपराधी और यौन विक्षिप्त लोगों की बहुत बड़ी संख्या हमारे बीच होगी।

इसके अतिरिक्त अधिकतर मनोवैज्ञानिक रोगात्मक (pathological) लोगों के सम्पर्क में रहते हैं, जो केवल सामूहिक अवचेतन क्षेत्र की भ्रष्टाचारी एवं कामुक व्यक्तित्व वाली देहविहीन आत्माओं के आश्रय होते हैं। इन मनोवैज्ञानिकों को भी अपने इन भूतबाधित रोगियों से मानसिक संदूषण हो सकता है। ऐसी भूतबाधाओं से इनके प्रभावित और पीड़ित होने का एक अन्य कारण ये भी है कि ये अपनी सुरक्षा की विधि नहीं जानते। भूत बाधाओं को रोकने के लिए इन्हें सहजयोग तकनीक का ज्ञान नहीं है। कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि कई बार तो ये मनोवैज्ञानिक दुष्ट प्रतिभावान लोगों की तरह इस प्रकार व्यवहार करते हैं कि उनके रोगी भी दंग रह जाते हैं। हर मनोवैज्ञानिक के लिए आत्मसाक्षात्कारी बनना और सहजयोग अभ्यास के माध्यम से ईसामसीह की तरह स्वतः भूतबाधा निवारण शक्तियों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। उनके लिए अपनी सुरक्षा और रोगियों को रोगमुक्त करने का ज्ञान प्राप्त करना भी आवश्यक है। बहुपक्षीय सूक्ष्म व्यक्तित्व वाले सामान्य मनुष्यों का अध्ययन महत्वपूर्ण है। ऐसे लोग परमात्मा की सुन्दरतम रचना, सहजयोगियों के अध्ययन के विषय बनने चाहिएं क्योंकि सहजयोगी सामूहिक अवचेतन क्षेत्र में उन्नत हो चुके हैं। (उन्हें सामूहिक अवचेतन का ज्ञान प्राप्त हो चुका है।)

भारत से पश्चिम आने के बाद मैं ये नहीं समझ पाती कि इतनी ठण्डी जलवायु में भी लोग यहाँ पागलों जैसे वस्त्र क्यों पहनते हैं। पश्चिमी महिलाएं तो हमेशा अपने शरीर का प्रदर्शन करने के अवसर खोजती रहती हैं, जमा देने वाली जलवायु में भी। पुस्तकों में छपी हर बात को स्वीकार करने के लिए वे तैयार रहती हैं, मानो सारी पुस्तकें गहन सत्य हों। निर्वस्त्र सोना एक आम आदत है क्योंकि बहुत से लेखकों ने लिखा है कि वस्त्र पहन कर सोना असुविधानजनक है। क्या ये देखना हमारा अपना कर्तव्य नहीं है कि क्या सुविधाजनक है और क्या नहीं? भारत में कोई भी निर्वस्त्र होकर सोने की

कल्पना नहीं करेगा। सोते हुए निर्वस्त्र होना आवश्यक नहीं है। इस बेतुकी आदत के कारण बच्चों को माता-पिता के बिस्तर पर आने की आज्ञा नहीं होती और बच्चों में निकृष्टतम मनोग्रन्थियाँ विकसित हो जाती हैं। कोमल आयु में उन्हें आपके प्रेम, बातचीत और आपके स्पर्श के आनन्द की आवश्यकता होती है। परन्तु पश्चिम के लोग अपने बच्चों को बहुत अधिक अनुशासित करने का प्रयत्न करते हैं। वे बहुत कठोर माता-पिता बनते हैं और अपने बच्चों को जन्म से ही सर्वगुण सम्पन्न बनाना चाहते हैं। कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि ऐसे बच्चे बड़े होकर नशेड़ी और हिंसक बनें। माता-पिता द्वारा यौन विषयों पर बहुत अधिक बल दिए जाने के कारण उनकी अबोधिता पूरी तरह नष्ट हो जाती है।

हाल ही में अमरीका में मैं एक महिला से मिली जो एक बच्चे को लेकर मेरे कार्यक्रम में आई थी। लड़का मुश्किल से बारह वर्ष का होगा और इस छोटी आयु में ही वह नशा लेने लगा था और नशेड़ी बनने की स्थिति में पहुँच गया था। इस दयनीय स्थिति के बच्चे के लिए मेरा हृदय पसीज उठा और इससे प्रेम छलकने लगा। मैंने उसे अपनी बांहों में लिया, गले लगाया और चूमा। मेरे प्रेम की ये अभिव्यक्ति उसे बहुत अच्छी लगी, कहने लगा कि उसकी माँ ने तो कभी उसे इस प्रकार प्रेम नहीं किया। उसे अपनी माँ के ऐसे प्रेम की कोई स्मृति न थी। मुझे पता लगा कि उस महिला के दो कुत्ते और तीन बिल्लियाँ थी जो उसके शयनकक्ष में सोते थे, परन्तु छोटी आयु से ही बेचारा बच्चा अलग कमरे में सोता था। मैंने उस महिला से पूछा कि अपने बच्चे के प्रति वह इतनी क्रूर क्यों हैं? उसने उत्तर दिया कि एक विशेष मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार यदि वह अपने पुत्र के साथ सोती तो उसमें दोषभाव विकसित हो जाता, क्योंकि वह निर्वस्त्र सोती थी। उसकी बुद्धि और विवेकहीनता पर मैं आश्चर्यचकित थी। माँ के प्रेम की ऐसी हास्यास्पद समझ, सर्वशक्तिमान परमात्मा की समझ से भी परे है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकों

और चिकित्सकों द्वारा एक के बाद एक छापी गई पुस्तकों के माध्यम से हास्यास्पद परिकाल्पनिक (Hypothetical) धारणाओं के प्रसारण के बहुत से शिकार हैं। एक पुस्तक छापने पर लगता क्या है? अपने साथी मनुष्यों पर इन गैर ज़िम्मेदार लेखकों द्वारा पहुंचाई गई हानि की कल्पना कीजिए!

आज के आधुनिक मानव समाज में वैश्यावृत्ति आसुरी-चरम पर है। प्रयोगों के नाम पर मानव ने कामुकता को अपना लिया है। वो सोचते हैं कि वो अपने अस्तित्व से बाहर प्रयोग कर रहे हैं और उनके अन्तर (सूक्ष्म) शरीर को कुछ भी स्पर्श नहीं कर सकता। प्रयोगशाला में जब आप तेज़ाब से प्रयोग करते हैं, तब क्या आप सावधान नहीं होते? प्रयोग के नाम पर क्या आप तेज़ाब अपने अन्दर डाल लेंगे? सहजयोग के प्रयोगों से आसानी से इस सत्य को दर्शाया जा सकता है कि कामुकता के दास साधकों में जमी हुई कुण्डलिनी के भयानक चिह्न किस प्रकार दिखाई देते हैं। उन्हें यदि आत्मसाक्षात्कार मिल भी जाए तो भी कुण्डलिनी जागृत अवस्था में नहीं बनी रहती। ऐसा लगता है मानो दुरुपयोग के अपमान से उसे मृत्यु की सीमा तक डरा या जमा दिया गया हो।

तालु अस्थि का कठोर हो जाना जिस प्रकार सत्य से सम्पर्क टूट जाने को दर्शाता है, मानव के सम्बन्ध ब्रह्माण्ड से भी टूट गये हैं और वह असाध्य (Malignant) हो गया है। नरक में जाने के लिए वह स्वयं को स्वतन्त्र और स्वच्छन्द मानता है। पुरुषों और महिलाओं के बीच पावन सम्बन्धों के बिना विवाहित जीवन कभी भी सफल नहीं हो सकता। आजकल घरों के टूटने और अनाश्रित लोगों के बढ़ने का बहुत शोर है। ऐसा लगता है जैसे इस प्रश्न के समाधान के लिए ही पूरे पश्चिमी समाज में गर्भपात को वैध ठहराने के लिए कानून पास किए जा रहे हों! वास्तव में आधुनिक युग की हत्या को वैध ठहराने की एक अन्य महान उपलब्धि। आगे चलकर जैसे मैं वर्णन करूंगी, सहजयोग अभ्यास द्वारा बढ़ती हुई जनसंख्या को नियन्त्रित और व्यवस्थित

करना बिल्कुल आसान है।

आज की व्याभिचारी प्रवृत्ति का दोष चाहे प्रारम्भिक पश्चिमी मनोवैज्ञानिकों को दिया जा रहा है, वास्तव में यह पैसा कमाने के इच्छुक स्वार्थसाधक पश्चिमी व्यापारिक धारणाओं वाले लोगों के समाज की दुर्बलताओं के उपयोग के कारण है। औद्योगिक समाज के मूल्य मानव-जीवन को घटिया, अभद्र और आर्थिक शोषण के लिए परिपक्व करते हैं।

सामान्य मनुष्य में यौन-भाव नैसर्गिक हैं और व्यक्ति को नैसर्गिक संयममय जीवनयापन करना चाहिए। ये बात यदि सत्य है कि मनुष्य मूल रूप से पशु था, तो ये भी सत्य है कि मनुष्य का जन्म चेतना के उच्च स्तर पर हुआ और उसे और भी ऊँचा विकसित होना है। विकास के नैसर्गिक दौर में मनुष्य के अन्दर एक अन्तर्रचित कार्यक्रम है। उसके असभ्य और अवमानवीय विरासत की तुलना में, मनुष्य स्पष्ट रूप से अधिक परिष्कृत और सभ्य नमूने के रूप में बनाया गया है। जिस प्रकार हम स्वयं को अपने बीते पशुजीवन की याद दिलाते हैं और इसे नैसर्गिक कहते हैं, ऐसा लगता है मानो इसकी शेखी बधारने में हमें गर्व महसूस होता हो! सभी प्राकृतिक चीज़ें आवश्यक रूप से अच्छी नहीं होतीं। उदाहरण के रूप में कोई भी ये तर्क नहीं देगा कि क्रोधी-स्वभाव होने की दुर्बलता नैसर्गिक और अच्छी है। परन्तु कोई यदि कामुक है और सम्पर्क में आनेवाली सभी महिलाओं से वह प्रेम खिलवाड़ करता है, तो समाज इसे स्वीकार करता है, क्योंकि यह नैसर्गिक है और मानव आचरण के ज्योतिर्मय सभ्य नियमों के अनुसार इसका विरोध नहीं किया जाना चाहिए। हो सकता है, कि हमारा भूतकाल प्रकृति के अनुरूप (Natural) रहा हो, परन्तु क्या भूतकाल की तरफ लुढ़कते जाना ही मानव का लक्ष्य है? कुछ बलात्कारी अपने अपराध को इस तर्क से न्यायोचित ठहराते हैं कि उनका शिकार प्रेरक (Provocative) था और उसने उन्हें उत्तेजित किया। कुछ पुरुष वास्तव में क्रोधित पागल सांडों की तरह से होते हैं जो हर लाल कपड़े में

टक्कर मारता है। अपने शरीर से एक इंच वस्त्र हटाने वाली महिला भी उन्हें उत्तेजित करती है। पुरुष कब परिपक्व होकर अपनी शुचिता का सम्मान करेंगे?

मानव नियति का एक भिन्न कार्यक्रम है : हमें आत्मसाक्षात्कार के माध्यम से अपना लक्ष्य प्राप्त करके अपने अस्तित्व (जीवन) का आनन्द लेने के लिए बनाया और आयोजित किया गया है। सांडों से भी बदतर लोगों को सहजयोग से बहुत अधिक आशा नहीं करनी चाहिए। जान बूझकर सहजयोग को विकास प्रक्रिया में आगे बढ़ने के लिए बनाया है, पीछे की ओर लटकने के लिए नहीं। श्रीगणेश के प्रति समर्पण, सद्‌चरित्र और पावनता के बिना आत्मसाक्षात्कार स्थापित नहीं किया जा सकता। अबोध बनने के लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता, अन्य सभी कार्यों में प्रयास की आवश्यकता पड़ती है।

हमारे माध्यम से मृत आत्माओं द्वारा यौन सुख का आनन्द उठाने वाली मृत आत्माओं की भूतबाधा का बहाना जब हम करते हैं तो हमारा बुद्धि सामर्थ्य हमें भ्रष्टाचार की ज़िम्मेदारी से पलायन करवाता है। व्यक्ति में यदि ऐसी दुर्बलताएं न होतीं तो ये मृत आत्माएं कभी भी उसके मनस (Psyche) में प्रवेश न करतीं। सहजयोग के माध्यम से यौन-भावों के प्रति व्याभिचारी दृष्टिकोण त्यागने वाले लोगों में इन व्यभिचारी प्रेतात्माओं की कोई रुचि नहीं रह जाती। अन्तर्परिवर्तित साधकों के मस्तिष्क से ये आत्माएं चली जाती हैं क्योंकि उन्होंने इन आत्माओं के लिए इनकी व्यभिचारी शैली में सुख उठाने का कोई अवसर नहीं छोड़ा होता। अब समय आ गया है, कि हम अपनी मूर्खता को महसूस करें। अपनी आलोचना को यदि हम खुले हृदय से स्वीकार करें तो स्वयं को सुधार सकते हैं। पुरुष और महिलाओं का कामुक व्यवहार विवेक की सभी सीमाएं पार कर गया है। भिन्न विधियों से उन्होंने मानव धर्म की हत्या कर दी है और हमारी अन्तर्जात गरिमा को भ्रष्ट और अपमानित करने के लिए बुद्धि के उपयोग से नये-नये हथियार खोज रहे हैं।

आधुनिक समाज में वस्त्रहीन हो जाने वाली महिलाओं को देवी का

दर्जा प्राप्त हो गया है। ऐसी महिलाओं को नग्न-सुन्दरियाँ कह कर हम नग्नता को महिमान्वित करते हैं तथा महिलाओं की गरिमा के अपने अवमूल्यन को न्यायोचित ठहराने में चुस्त और चालाक हो गये हैं। वर्तमान काल इतना विरोधाभासी है। विज्ञापन उद्योग की मुख्य समस्या निर्लज्जता और अश्लील साहित्य के कानून की पकड़ से बाहर रहते हुए महिलाओं की नग्नता का चित्रण करना है। मनुष्य द्वारा बनाए गये कानून बहुत अधूरे हैं और महिलाओं का उपयोग करने वाले लोग अपनी कुटिल विधियों से कानून बनाने वालों के उद्देश्य को आसानी से मात दे देते हैं। कानून के प्रति सम्मान की सहमति की शिष्टता की मांग के अतिरिक्त कानून अपने आप मानव व्यक्तित्व के उपयुक्त सुसंस्करण के लिए वातावरण नहीं बना सकता, क्योंकि कानूनों से अब कोई नहीं डरता। पूर्वी विश्व के सौन्दर्यशास्त्र के अनुसार नग्नता को कभी भी पूर्ण सौन्दर्य के रूप में मान्यता नहीं दी गई है। जापानी, चीनी और भारतीय संस्कृतियों ने विशेष रूप से ये माना है कि मानव तथा परमात्मा या प्रकृति द्वारा सृजित सौन्दर्यबोध समन्वय ने ही वास्तविक सौन्दर्य का सृजन किया है।

कलाकारों के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करने के लिए चीनिओं और जापानिओं ने अत्यन्त सुन्दर लबादों (चोगों) की रूपरेखा बनाई। ये अद्भुत मानव मस्तिष्क का सृजन था जिसने सृजनहार परमात्मा द्वारा रचित मानव सुन्दर शरीर की गरिमा को बढ़ाने वाले मानव हृदय के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की। ये कविता के छन्दों की तरह से हैं और महिला के स्त्रीत्व को वैसे ही अलंकृत करते हैं जैसे प्रकृति पृथ्वी माँ को भिन्न ऋतुओं से अलंकृत करती है। आदिशक्ति जब भारतीय महिला के रूप में अवतरित होती हैं तो उनके रमणीय और मातृसुलभ व्यक्तित्व को पूर्ण करने के लिए उन्हें साड़ी भेंट की जाती है। भारतीय मान्यता के अनुसार आदिशक्ति साड़ी से ढके अपने स्तनों के माध्यम से पृथ्वी माँ को वैभव और गोल आकार प्रदान करती हैं। उनकी पूजा में उन्हें अपने पेट (मराठी भाषा में 'पोट झाकणे') जिस पर उन्होंने स्वसृजित शिशु

को उठाया होता है, ढकने के लिए साड़ी दी जाती है। पृथ्वी माँ अपने शुचिता-विवेक की रक्षा करने के लिए किस प्रकार प्रकृति से अपने शरीर को ढकती हैं, इसका वर्णन भारतीय कवि करते हैं। इस प्रकार वे लज्जामय रमणीय माँ के रूप में स्वयं अपना पावनीकरण करती हैं।

ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जब भारतीय महिलाओं ने अनैतिक युद्धों में अपनी पावनता की रक्षा करने के लिए जौहर कर के स्वयं को अग्नि के हवाले कर दिया। इस युग में पश्चिमी देशों में महिलाओं की बलात्कारियों से रक्षा करने के लिए विशेषाधिकार कानून हैं। अत: आज भी 'शुचिता' मृत शब्द नहीं है। इससे प्रमाणित हो जाना चाहिए कि अपने अन्तस में मानव ने हमेशा यौन सम्बन्धों की पावनता को महसूस किया और पावनीकरण के बिना ये सम्बन्ध मनुष्य की पूर्ण आनन्द सम्वेदना के लिए न तो रुचिकर है न ही स्वीकृत।

पिछली सदी के परिवर्तनकाल के समय प्रारम्भिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा दिए गये सिद्धान्तों को इतनी तेज़ी से स्वीकार कर लिया गया कि इन्होंने मानव व्यक्तित्व को यौन-बिंदु के स्तर तक पतित कर दिया। मानो मनुष्य इस विश्व में मात्र यौन-सुख भोगने के लिए आया हो। इन आरम्भिक पथ-प्रदर्शकों के बाद मनोविज्ञान बड़ी सीमा तक विकसित हुआ, परन्तु जो हानि हो चुकी थी उसी ने समाज को पटरी से उतार दिया था। अत: कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि जो लोग मनोवैज्ञानिकों के विकास के विषय में नहीं जानते वे उनसे घृणा करते हैं तथा उन्हें आसुरी (demonic) मानते हैं। मानव प्रतिष्ठा का अपमान और पतन उस स्तर तक पहुँच गया है कि ऐसा लगता है मानो इस सुन्दर पृथ्वी को मौजमस्ती के नरक के रूप में परिवर्तित कर दिया गया हो। कुछ कवि और नाटककार तो अधमता की सभी सीमाएं पार कर गये हैं और कहते हैं कि ईसामसीह और उनकी माँ के बीच का प्रेम अवैध था। इतने अपमानजनक दोषारोपण के लिए लोग किस सीमा तक गिर सकते हैं और फिर बहुत से बुद्धिवादी लोग उनके कथनों को गंभीरतापूर्वक लेते हैं।

मानवधर्म के सौन्दर्य (मर्यादा) पर होने वाले इन सभी आक्रमणों को पूरी तरह रोकने का यह उपयुक्त समय है। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता के नाम पर चरित्रवान और पावन लोगों की अबोधिता पर निशाना साधकर यह विकृत लोगों की बचकानी और मूर्खतापूर्ण आक्रामकता है।

विकसित समाजों में बेचारे, पावन और चरित्रवान लोगों का कोई स्थान नहीं है। उन्हें मंदबुद्धि और घटिया समझा जाता है। किसी शराब की पार्टी में शराब पीने से इन्कार कर देना अभद्र आचरण की पराकाष्ठा मानी जाती है। मद्यपान न करने के लिए आपको झूठे बहाने खोजने पड़ते हैं, अन्यथा शराब पीने वाले लोगों को चोट पहुँचती है। परन्तु यदि उसी पार्टी में आप ईश्कबाज़ी (Flirt) करते हैं, तो किसी को भी बुरा नहीं लगेगा। व्यक्ति को विशेष रूप से सावधान रहना पड़ता है कि ऐसे समारोहों के दिव्यत्व और पावनता के विरोध में एक भी शब्द नहीं कहना है। मद्यपान को तो उन्होंने एक विज्ञान का रूप दे दिया है। मानव ने जिस प्रकार शराब पीने की विनाशकारी आदत का गुणगान किया है, कोई भी उनके विवेक पर प्रश्न नहीं उठा सकता। भिन्न प्रकार की शराब पीने के लिए उन्होंने भिन्न प्रकार के गिलास बनाए हैं। शराबी समाज और इसकी पावनता के भिन्न शिष्टाचारों को याद रखने के विषय में व्यक्ति को अत्यन्त सावधान रहना पड़ता है। ये समझने के लिए बहुत अधिक बुद्धि की आवश्यकता नहीं है कि शराब हमारी चेतना को कम करता है, अत: यह मानव धर्म के विरुद्ध है। समाज की स्थिति वास्तव में चिन्ताजनक है। एक अपराधी दूसरे अपराधी को वासना और विलासिता की दलदल में खींचता है। जीवन के आरम्भिक वर्षों में कोई भी पावन व्यक्ति इस प्रकार के आचरण का खुलकर विरोध करता है परन्तु अन्तत: वह मौन हो जाता है, किसी भी अन्य समझदार व्यक्ति की तरह, जो यह सोचता है कि चीज़ों को उनकी वस्तुस्थिति में स्वीकार कर लेना ही समझदारी है, चाहे इसके दण्ड के फलस्वरूप स्वयं उसे पागलखाने में ही जीवन क्यों न बिताना पड़े।

इस प्रकार के अपमानजनक रीतिरिवाज़ फलते-फूलते हैं और आसानी से समाज में जड़ें जमा लेते हैं। वासना लोलुपता को आश्रय देने वाले लोग केवल अपनी दुर्बलताओं को न्यायोचित ठहराना चाहते हैं। केवल इसी विधि से वे अपनी मूर्खताओं के साथ जीवन बिता सकते हैं। उनकी विकृत विचारधारा के मार्ग का समझदारी पूर्ण औचित्य ही शायद आध्यात्मिकता की उनकी धारणा के सभी शूलों और कांटों के साथ, उनके शान्तिपूर्ण जीवनयापन के लिए एक उपयुक्त अच्छे समझौते का सृजन कर सकता है।

भारत में भी ऐसे बहुत से विकृत राजा हुए जिन्होंने अपनी विकृतियों के स्मारकों का निर्माण किया। दुर्भाग्यवश उन्हीं की तरह सोचने वाले लोगों ने इन स्मारकों को कलाकृतियों का दर्जा दिया और इन स्थलों को परमात्मा के मन्दिर कहा जाता है। प्राचीनकाल से ही मनुष्य अभद्र चीज़ों को शानदार नाम देने की कला में प्रवीण रहा है परन्तु उस युग में विकृत लोगों की संख्या इतनी अधिक न थी। इन लोगों में यदि कोई राजा बन जाता तो इतिहास के किसी भी महत्वाकांक्षी व्यक्ति की तरह अपनी अपूर्ण विकृतियों को स्मारकों के रूप में अमर करने की ओर विशेष ध्यान देता। नि:सन्देह ये प्राचीन सुन्दर भवन महान कलाकारों द्वारा बनाए गये थे। कलात्मक आकृतियाँ, इनके आकार और भवनों की पूर्ण रूपरेखा का सौन्दर्यबोध अत्यन्त भव्य है तथा इनका आड़ोलन, मनोदशा तथा तारतम्य भी सौन्दर्यबोध (aesthetics) की दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न है। परन्तु कलात्मकता को बढ़ाने या इसके भिन्न आकारों के लिए यौन-क्रियाओं या नग्नता की अभिव्यक्ति की मूल-विषयवस्तु बनाने की आवश्यकता नहीं है। वास्तव में यौन क्रियाओं का चित्रण कलाकृति की कोमलता और शान्त सौम्यता को अप्रिय बना देता है। अभद्रता का आश्रय लेने वाली कला में आत्मविश्वास की कमी होती है। अभद्रता या खुल्लम-खुल्ला यौन-प्रदर्शन कला के सौन्दर्य संतुलन को बिगाड़ देता है। जब भी किसी कलाकार को अपनी कला के माध्यम से अभद्रता की अभिव्यक्ति की

आवश्यकता महसूस होती है, तो यह उसकी अभिव्यक्ति में सौन्दर्य बोध की दुर्बलता या कमी का निश्चित चिह्न है। आजकल ऐसी कला को बाज़ारी मूल्यांकन में सभी लोगों द्वारा उच्चतम अभिव्यक्ति माना जाता है।

किसी कलाकृति का छायाचित्रकार (Photographer) यदि इसमें नग्न महिला या यौनोत्तेजक घृणास्पद दृश्य को सम्मिलित नहीं करता तो कला के आधुनिक महान विश्लेषक और पारखी इसे विकसित कलाबोध में पिछड़ी हुई घोषित कर देते हैं। इन यौनलोलुप लोगों के सौन्दर्यबोध का आकलन तो केवल परमात्मा ही कर सकते हैं। सर्वव्यापी अचेतन, चैतन्य लहरियों के माध्यम से कला का आकलन करता है। सहजयोग के प्रभाव से भविष्य में, वर्तमान सौन्दर्यबोध मूल्य प्रचण्ड रूप से परिवर्तित हो जाएंगे। क्योंकि सभी लोगों द्वारा प्रशंसित इन कलाकृतियों से ऐसी गरम चैतन्य लहरियाँ निकलती हैं जैसी गम्भीर मानसिक रोगियों से निकलती हैं। इनसे सहजयोगी को तो उसकी अंगुलियों पर छाले तक पड़ सकते हैं। ये छाले अचेतन द्वारा दिया गया सीधा निर्णय होता है।

आनन्द का अर्थ यदि निरानन्द से पूर्ण एकरूपता है तो रतिक्रिया चित्रण को असुन्दर गतिविधि मान लिया जाना चाहिए। यौन सम्बन्धों के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति तो केवल तभी होती है जब ये गहन भावनात्मक सहज सम्बन्धों वाले केवल एक व्यक्ति के साथ एकांत में बनाए जाएं। इस प्रकार प्रेम के सभी पक्षों-दूरी या मिलन - का आनन्द उठाया जाता है और हर समय प्रेमसंगीत बजता रहता है। एक बार यदि किसी ने किसी को अपना हृदय सौंप दिया तो इसे वापिस नहीं लिया जा सकता। परन्तु सौंपने के लिए हृदय कितने लोगों के पास हैं? रतिक्रिया केवल अपने सर्वस्वीकृत पति या पत्नी के साथ पावनतापूर्वक होनी चाहिए। विवाह सम्बन्धों को समाज और अपने बड़ों का आशीर्वाद प्राप्त होना आवश्यक है। अत्यन्त निजी रहस्य बनाकर रखा जाए तो यौन सम्बन्ध चमत्कारिक हैं। विवाहित जोड़े द्वारा सम्बन्धों के पूर्ण

आनन्द प्राप्त करने के अतिरिक्त ऐसे माँ-बाप के बच्चे भी स्वर्गीय होते हैं। पूर्णतः आधुनिक लोगों के विकसित मस्तिष्क को ये विचार घिसे-पिटे प्रतीत हो सकते हैं, परन्तु निकट भविष्य में सहजयोग के माध्यम से जब वास्तविक सत्य प्रकट होंगे तो लोग इस बात को स्वीकार करेंगे कि यह अचेतन का अत्याधुनिकतम रहस्योद्घाटन है। प्रेरणा के माध्यम से अचेतन (परम चैतन्य) हमारे समक्ष बहुत से रहस्यों को खोल रहा है और इसी कारण हमने विवाह आरम्भ किए हैं। अचेतन के नियमों को तोड़ने वाले लोगों का अन्त (नियति) सहजयोगी अपनी चैतन्य लहरियों के माध्यम से अच्छी तरह जानते हैं। वो ये भी जानते हैं कि परमात्मा के नियमों का उल्लंघन करने वाले लोगों के प्रति श्रीगणेश का व्यवहार कैसा होता है। इस प्रकार की गतिविधियों में लिप्त होने वाले लोग आत्मसाक्षात्कार से पूर्व शारीरिक और मानसिक कष्ट उठाते हैं और यदि वे आत्मसाक्षात्कार पा लें तो उन्हें सम्भलने के लिए परिवर्तन का समय दिया जाता है। निःसंदेह, सहजयोग ध्यानधारणा, प्रायश्चित और संयम के साथ श्रीगणेश जागृत हो सकते हैं। सुधारकाल के समय वे इन साक्षात्कारी साधकों का मार्गदर्शन करते हैं।

विवाह के बिना यौन सम्बन्ध अधूरा सुख देते हैं। प्रश्न किया जा सकता है, कि विवाह क्यों किया जाए? व्यक्ति यदि इतना विकसित है और विवाह नहीं करना चाहता तो कोई आवश्यकता नहीं। परन्तु बिना विवाह के व्यक्ति यदि यौन सम्बन्ध बनाता है, तो यह धर्म के विरुद्ध है। विवाह प्राचीनतम संस्था है जिसे महान सन्तों ने गहन ध्यान-धारणा के माध्यम से युगों पूर्व खोजा था। विवाहित जोड़े का अर्थ है एक पुरुष-एक महिला के जीवनपर्यंत सम्बन्ध, जिन्हें समाज द्वारा स्वीकार किया गया हो। यह विवाहित जीवन के लिए सामूहिक समर्थन और सामाजिक आश्रय की अभिव्यक्ति करता है। विवाह की रस्में अपने आप में समाज की सामूहिक स्वीकृति हैं जिसे पूर्ण सहभागिता और आनन्द उल्लासपूर्वक पूरा समाज श्रेष्ठता प्रदान करता है।

विवाह में घटित होने वाला आनन्द निजी यौन जीवन को उच्च, श्रेष्ठ एवं शालीन बनाता है।

स्वर्ग के साम्राज्य (सहस्रार) में प्रवेश करने के लिए साधक को एक बार फिर शिशुसम (श्रीगणेश) बनना होगा। कृत्रिमता के कारण मनुष्य के लिए सहज, ईमानदार और निष्कपट जीवन बिता पाना बहुत कठिन है। हमने स्वयं को इतना जटिल बना लिया है कि अत्यन्त सहज कार्यों को कर पाना भी हमारे लिए कठिनतम हो गया है। विश्व को यदि हम पूर्ण विनाश से बचाना चाहते हैं तो हमें न तो सिर के भार खड़े होने की आवश्यकता है और न ही कोई अन्य असहज करतब करने की। अपनी सांसारिक सम्पत्तियों के विषय में कानून का पालन करना ही काफ़ी नहीं है, हमें मानवधर्म के कुछ नियमों का भी पालन करना होगा। विवेकशील और इच्छाशक्ति वाले लोगों के लिए निम्नलिखित सुझावों का अनुसरण करना बहुत अधिक कठिन कार्य नहीं होना चाहिए :

- उन्हें चाहिए कि वे संयम, दया और चरित्रवान जीवनयापन करें।
- अपने माता-पिता तथा जिस समाज में हम रहते हैं उसका सम्मान किया जाना आवश्यक है।
- अपनी पत्निओं के अतिरिक्त जीवन में आने वाली अन्य सभी महिलाओं से उनके भाई की तरह श्रेष्ठ सम्बन्ध होने चाहिएं।
- विवाह से पूर्व संयम और त्याग का जीवन बिताना और विवाह के बाद अपनी पत्निओं के प्रति ईमानदार रहना उनके लिए आवश्यक है।

गृहस्वामिनी और माँ होते हुए भी महिला यदि वैश्यावृत्ति का जीवन अपना लेती है तो बच्चों का क्या होगा? जो लोग बच्चों को भविष्य मान कर उनसे घनिष्ठता स्थापित नहीं करते, मानव धर्म के अनुसार वे असामान्य माता-पिता हैं। पशु भी अपने बच्चों को सर्वोपरि रखते हैं। मनुष्य के बच्चों को

पशुओं से कहीं अधिक देखरेख, प्रेम और सम्मान की आवश्यकता होती है। सहजयोग में हम देखते हैं कि आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करने के बाद उन्हीं लोगों ने उत्क्रान्ति की महान बुलन्दियाँ प्राप्त की जिनका बचपन अच्छे और प्रेममय परिवारों में गुज़रा था। उन्हें अपने चरित्रवान माता-पिता और सम्बन्धियों से खूब स्नेह प्राप्त हुआ था। इसके अतिरिक्त, अधिकतर ये ऐसे लोग हैं जिनके अपनी शुचिता सम्मान के विषय में अत्यन्त विवेकपूर्ण विचार हैं। सुरक्षा विवेकवाले ऐसे लोगों के लिए विकास प्रक्रिया में उत्क्रान्ति प्राप्त करना बहुत ही आसान है।

विवाह का चमत्कारिक जादू उसी समय शुरु हो जाता है जब चर्च या मन्दिर जैसे किसी पावन स्थल पर, अपने निजी घर में या समाज द्वारा पवित्र माने जाने वाले किसी स्थान पर विवाह का आरम्भ होता है। परमात्मा का दिव्य प्रेम हर समय विचारों और धारणाओं के माध्यम से प्रेरित करता रहता है। विशाल सभाओं में होने वाले विवाहों से व्यक्ति को पवित्रता तथा परमेश्वरी प्रेम का आशिष प्राप्त होता है। परन्तु आजकल ऐसे माता-पिता बहुत कम हैं जिन्हें वास्तव में अपने बच्चों की चिन्ता है। अचेतन (परम चैतन्य) की ईश्वरी शक्ति ऐसे विवाहों को सामूहिक बनाती है। समाज की स्वीकृति और आशीर्वाद अवसर के धर्मोत्साह और पावनता को बढ़ाते हैं। माता-पिता की स्वीकृति के बिना होने वाले विवाह से युग्म (जोड़ा) को वास्तविक प्रसन्नता प्राप्त नहीं हो सकती, क्योंकि वे भी तो इसी समाज तथा अपने माता-पिता के अंग-प्रत्यंग हैं। यह जीव वैज्ञानिक (biological) तथ्य है और अचेतन के आशिष का आनन्द उठाने वाली अन्तर्आत्मा भी इसकी अनदेखी नहीं कर सकती। आदर्श विवाह केवल वही हो सकता है जिससे सभी को खुशी मिले।

विवाह के कठोर कानून थोंप कर, संकीर्ण, तुच्छ मानसिकता वाले और स्वार्थी लोगों द्वारा बहुत अत्याचार किए गए हैं। ऐसे कानूनों में संशोधन

किया जाना आवश्यक है, परन्तु इनका पूरी तरह से बहिष्कार कर देने का भी कोई कारण नहीं है। पूरे इतिहास में केवल आत्मसाक्षात्कारी लोगों ने ही इन उत्सवों के लिए ऐसी रस्में बनाई हैं, जो परम चैतन्य (अचेतन) का आशीर्वाद सुनिश्चित करती हैं।

पति-पत्नी के बीच प्रेमबन्धन को प्रेमान्धता नहीं मान लिया जाना चाहिए क्योंकि प्रेमान्धता (infatuation) तो प्रेमोन्माद है, एक अस्थायी अवस्था। अनात्मसाक्षात्कारी व्यक्ति किसी दूसरे की चैतन्य लहरियों को महसूस नहीं कर सकता। अत: सतही जानकारी द्वारा अपने साथी की योग्यता (संगति) का आकलन कर पाना सम्भव नहीं है। प्रणय-निवेदन और परस्पर मिलने जुलने से भी भविष्य में होने वाली दुल्हन के विषय में ठीक अन्दाज़ा नहीं लगाया जा सकता क्योंकि ऐसे अवसरों पर दोनों व्यक्ति दिखावे के लिए या आसक्ति के वातावरण में कार्य करते हैं। जिसे वो प्रेम कहते हैं वह इतना सतही है कि बालों के रंग परिवर्तन के साथ ही उड़ सकता है। प्रेम के लिए कृत्रिम वस्तुओं पर निर्भरता प्रेम की हत्या कर सकती है क्योंकि प्रेम तो पूर्णत: नैसर्गिक है।

आजकल की कृत्रिम मूल्य प्रणाली पर भरोसा करने वाले आकलनों को भी जोड़े के भावी सम्बन्धों के गहन महत्व का आधार नहीं बनाया जा सकता। इतनी डाँवाडोल नीवों पर सच्चे प्रेम नीड़ (भवन) का निर्माण नहीं किया जा सकता। इस प्रकार केवल कभी सच न होने वाला स्वप्न ही बुना जा सकता है। जोड़े को यदि पावन माता-पिता और समाज के विवेकशील वयोवृद्ध व्यक्तियों का आशीर्वाद भी प्राप्त नहीं है तो ऐसे गठबन्धन को कभी भी अचेतन की आध्यात्मिक चैतन्य लहरियाँ नहीं मिल सकतीं।

विवाह ब्रह्माण्डीय अभिन्नता की श्रंखला की एक कड़ी है। अद्वितीय सम्बन्ध वही हैं जिनका पूर्ण एकान्त में आनन्द उठाया जाए। व्यक्ति को यदि विवाह के रहस्य का ज्ञान हो तो स्वर्गीय आशिष के अद्‌भुत वरदान प्राप्त कर

लेना आसान है। कलियुग के इस बिन्दु पर, जब बहुत सी महान आत्माएं जन्म लेने की प्रतीक्षा में हैं, सहजी जोड़ा इन उच्च-विकसित आत्माओं को सर्वोत्तम आध्यात्मिक माता-पिता प्रदान कर सकता है। अतः सहजयोगियों के लिए योग्य परामर्श है कि वे सहजयोगियों से विवाह करें।

प्रश्न उठता है कि विवाह के लिए स्वयं अपना साथी चुनने वाले देशों में इस समय तलाक अधिकतम क्यों हो रहे हैं? कारण ये है कि अन्तःस्थिति को समझे बिना, भौतिक और नग्न शारीरिक सौन्दर्य को आधार बना कर जीवनसाथी का चुनाव किया जा रहा है। मुख्यतः पूर्वी देशों में जहाँ अपने बच्चों से प्रेम करने वाले पावन माता-पिता का परामर्श लिया जाता है, चक्रों के शासक देवी-देवता भी जीवनसाथी चुनने की प्रक्रिया में निर्णय लेने में सहायता करते हैं। यह सहज-स्वाभाविक (spontaneous) निर्णय होता है, सोच समझ कर लिया गया निर्णय नहीं, क्योंकि अपने माता-पिता भी हमने स्वयं चुने थे। उनकी मृत्यु के बाद, उनमें से पावन और संतुलित-स्वभाव आत्माएं सामूहिक अवचेतन (परलोक) में निवास करती हैं और माता-पिता के चुनाव सहित अपने भावी जीवन के विषय में सभी निर्णय स्वयं लेती हैं। आजकल बहुत लोग बिना विवाह किए बच्चों को जन्म देते हैं, इनके माध्यम से चरित्रहीन आत्माएं पृथ्वी पर जन्म लेती हैं। विवाह कर के जो लोग बार-बार तलाक लेते हैं, वे विभाजित व्यक्तित्व बन जाने के कारण, समय आने पर विकास प्रक्रिया से बाहर चले जाते हैं। ऐसे लोग किस प्रकार महान आत्माओं को जन्म दे सकते हैं? आज के बच्चे कल के माता-पिता होंगे। आपके माता-पिता यदि आपके जीवन में अच्छे मार्गदर्शक नहीं बने तो कम से कम आप तो उनकी कमी को पूरा करके उनसे बेहतर माता-पिता बनें। परन्तु आधुनिक पश्चिमी समाज में माता-पिता की बच्चों में कोई रुचि नहीं है और वे बच्चों को जीवन की सभी कठिनाइयों का स्वयं सामना करने के लिए छोड़ देते हैं। अपनी उदासीनता (indifference) के लिए वे कोई न कोई

बहाना अवश्य खोज लेते हैं। वे सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं कि इस प्रकार वे बच्चों को मजबूत बना रहे हैं। अन्त परिणाम ये होता है, कि स्वच्छन्द स्वभाव हो जाने के कारण बच्चे युद्धव्यापारी (warmongers) बन बैठते हैं। वास्तव में माता-पिता के अपनी जिम्मेदारी से जी चुराने का एक ऐतिहासिक कारण है। दूसरे विश्वयुद्ध के समय आज के माता-पिता युवावस्था में थे। युद्ध ने उनके सभी मूल्यों को चकनाचूर करके उनके व्यक्तित्व को छिन्न-भिन्न कर दिया। अपने घर में वे घर के प्रेम का आनन्द नहीं उठा सके और अपने बच्चों के प्रति भी उनका दृष्टिकोण गम्भीर और कठोर हो गया।

मैं एक युवा को जानती हूँ जो एल.एस.डी. (LSD) लिया करता था। मुझे जब पता चला तो मैंने उससे कहा कि जब तक तुम नशीली दवा छोड़ नहीं देते तब तक मैं खाना नहीं खाऊंगी। मेरे प्रेम के प्रति उस युवा के घुटने टेक देने से पूर्व मुझे केवल एक दिन भूखा रहना पड़ा। बाद में वह अत्यन्त सक्रिय सहजयोगी बन गया। समस्या का मर्म (सार) ये है कि सभी लोग विवाह की पावन संस्था के योग्य नहीं हैं। विवाह के बाहर या विवाहित जीवन में कई-कई सहभागियों के साथ यौनसम्बन्धों का मज़ा लेने वाले लोग अपने पथभ्रष्ट जीवन को चालू रख सकते हैं, परन्तु यदि उन पर सहजयोग कार्य न कर पाये तो वे शिकायत न करें। जागृति पा लेने के बाद भी वे आत्मसाक्षात्कार के पथ पर बहुत आगे नहीं बढ़ सकते। अपनी पावनता (शुचिता) के विषय में उन्हें हमेशा के लिए निर्णय लेना होगा। केवल तभी वे विकसित हो पायेंगे और केवल इन्हीं लोगों के बच्चे होने चाहिएं। आप यदि नहीं चाहते कि अपराधी और पशुवृत्ति की आत्माएं मानवरूप में जन्म लें तो पावन लोगों के अतिरिक्त अन्य लोगों को बच्चे उत्पन्न नहीं करने चाहिएं। अपने माता-पिता का सम्मान न करने वालों को अपने बच्चों से सम्मान नहीं मिलेगा। स्वतन्त्रता के नाम पर बहुत बार हम अपने माता-पिता और घर को छोड़ कर भाग खड़े होते हैं और इस प्रकार अपने दिव्य उत्तराधिकार की सुरक्षा

से वंचित हो जाते हैं। इस सृष्टि में केवल एकही महत्वपूर्ण उपलब्धि है और वो है मानव रूप में विकसित होते हुए परमात्मा से 'एकाकारिता'-योग को प्राप्त करना। उसके लिए आपको केवल अपने बन्धनों की जंजीरों से मुक्ति प्राप्त करनी आवश्यक है किसी अन्य से नहीं।

अपने माता-पिता और बड़ों का सम्मान न करने वाले लोग जब सहजयोग में आते हैं तो पाया गया है कि हमेशा उनका मूलाधार चक्र दुर्बल होता है। उनका दायां हृदय चक्र (अनाहत), जहाँ श्रीराम अपनी पत्नी सीता के साथ निवास करते हैं, भी अत्यन्त दुर्बल होता है। अपनी माताओं के साथ यदि वे निष्ठुर हों तो उनका मध्य और दायां हृदय चक्र बहुत कमजोर हो जाता है। अतः हमारे लिए ये समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है कि हमारे माता-पिता कितने महत्वपूर्ण हैं और किस प्रकार व्यक्ति के अन्तर्व्यक्तित्व से उसके आध्यात्मिक विकास की कड़ी जुड़ी हुई है। हमारे माता-पिता की जड़ें 'आदिमाता-पिता' में हैं और विवाह की जड़ें उनके आदि और अनन्त प्रेम सम्बन्धों में हैं। जो लोग अपने विवाह का सम्मान नहीं करते या अपनी शुचिता की गरिमा का आनन्द नहीं उठाते, वे भी दुर्बल हृदय और मूलाधार चक्र से पीड़ित होते हैं। ऐसे बेशर्म और यौनबाधित लोगों में कुण्डलिनी उठती ही नहीं है।

आजकल व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की हास्यास्पद धारणाओं के कारण विवाहित और पारिवारिक जीवन सुगमता से छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। गृह एक ऐसी बगिया है जिसमें परमात्मा की सुन्दरतम रचना - बच्चे - पनपते हैं। वे कोमल फूलों की तरह हैं परन्तु क्रूरतापूर्वक उन्हें सभ्य समाज की घातक चकाचौंध में छोड़ दिया गया है। अच्छे घर, अच्छे समाज की नींव होते हैं। ईश्वरी सन्तानों को यदि आवश्यक स्वर्ग (अच्छा वातावरण) उपलब्ध नहीं कराया गया तो आसुरी आत्माएं बड़ी संख्या में जन्म लेंगी और धार्मिक और धर्मपरायण आत्माएं जन्म लेने से हिचकिचाती रहेंगी क्योंकि उन्हें भावी

विकास की उन्नति के लिए उपयुक्त वातावरण दिखाई नहीं पड़ेगा।

आजकल हम अच्छी नस्ल के पशु और पशुधन बचाने के विषय में काफ़ी चिन्तित हैं, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है, कि अच्छी नस्ल के मनुष्यों को जन्म देने की हमें कोई विशेष चिन्ता नहीं है। धनलोलुप हो जाने के कारण हमारे मानव जीवन के मूल्य तेज़ी से गिरते जा रहे हैं। मानव रूप में जन्में लोग मानव देह में कही अधिक पशु स्वभाव के हैं। ये मुख्यतः या तो मन्दबुद्धि, मूर्ख हैं या परपीड़क क्रूर। बच्चे के सम्वेदनशील मस्तिष्क को माता-पिता और दादा-दादिओं की प्रेममय देखरेख की आवश्यकता होती है। बच्चे का मस्तिष्क ऐसे समाज में विकसित हो सकता है, जो आध्यात्मिक शान्ति का आनन्द उठाता है। मानव चेतना की अधोगति ने पृथ्वी को इतनी बर्बर अवस्था में ला खड़ा किया है कि यहाँ पशु प्रवृत्ति और धर्म वाले निष्ठुर लोगों की भ्रष्ट आत्माएं जन्म ले रहीं है। इस कलियुग में पशुओं के मानव रूप में पृथ्वी पर अवतरित होने का एक अन्य कारण ये भी है कि अनुवंशिक और मानसिक प्रदूषण (नस्ल और मस्तिष्क की मलीनता) पराकाष्ठा की सीमा तक पहुँच रहा है। बड़ी संख्या में आसुरी आत्माओं की उपस्थिति कलियुग को आसुरी शक्तियों का कोलाहल स्थल बनाती है। सम्वेदनशील और श्रेष्ठ मानव आत्माओं को पृथ्वी पर लाने के लिए हमें वातावरण को कहीं अधिक सम्वेदनापूर्ण बनाना पड़ेगा। ऐसा होने पर शिशु जन्म की गति स्वतः ही कम हो जाएगी क्योंकि उच्च विकसित मानव आत्माएं ही सीमित संख्या में अपने विकास के लिए पृथ्वी पर अवतरित होंगी। पाशविक आत्माओं को जन्म लेने के लिए परिवर्तित वातावरण सुखद महसूस नहीं होगा। मानव स्तर की धार्मिकता वाली आत्माएं बहुत ही कम हैं। जनसंख्या की बढ़ोतरी पशुओं और राक्षसों जैसी तुच्छ आत्माओं के मानव रूप में जन्म लेने के लिए सक्षम हो जाने के कारण है। ऐसी आत्माएं बहुत बड़ी संख्या में विद्यमान हैं।

एक बार जब सत्ययुग (स्वर्णिम युग), या जैसा आप कहते हैं 'कुम्भ

युग' पृथ्वी पर स्थापित हो जाएगा तो ये अनधिकृत आत्माएं सामूहिक अवचेतन (परलोक) में लुप्त हो जाएंगी। बहुत सी महान आत्माएं जन्म लेने के लिए प्रतीक्षा कर रही हैं, परन्तु उन्हें जन्म लेने के लिए ठीक प्रकार से विकसित माता-पिता, आत्मरूप से स्वच्छ समाज और आवश्यक पावन वातावरण प्राप्त नहीं हो पा रहा। यहाँ तक की सामान्य प्रकार की मानव आत्माएं जो अपनी वंशावली के परिवार में पुनः जन्म लेने की प्रतीक्षा कर रही हैं, वो भी जन्म लेने से डरती हैं क्योंकि उनके भावी माता-पिता अत्यन्त धनलोलुप और स्वार्थी होंगे। ऐसे माता-पिता की कोख से कौन जन्म लेना चाहेगा जो अपने बच्चों की इसलिए हत्या कर देते हों कि उनसे बचा धन वे शराब और नशे का आनन्द उठाने के लिए उपयोग कर सकें!

समृद्ध राष्ट्रों में जिस प्रकार उच्च और मध्यवर्गीय समाज नष्ट हुआ है वहाँ पुनः स्वस्थ एवं विवेकशील समाज स्थापित करने के विचार मात्र से व्यक्ति घबरा जाता है। सौभाग्यवश आशा की एक किरण शेष है। सहजयोग के आगमन से मनुष्यों में एक नयी सम्वेदना की प्राथमिकता पनपेगी और वे एक नई चेतना और नये दृष्टिकोण के साथ अपने जीवन का पुनः मुल्यांकन करेंगे। पिछले दो दशकों में बहुत सी आत्मसाक्षात्कारी आत्माओं ने पृथ्वी पर जन्म लिया है। मैं कई सौ ऐसे लोगों से मिल चुकी हूँ। यही लोग आज के निराशाजनक समय की एकमात्र आशा हैं।

सहजयोग के माध्यम से विवाह प्रणाली किस प्रकार पावन हो जाती है, इसकी व्याख्या करना इस पुस्तक के कार्यक्षेत्र से परे है।

जब कोई साधक निरंतर गहन रूप से भ्रमित और विकृत प्रयोग करने लगता है तो श्रीगणेश निष्क्रिय होकर, अन्ततः लुप्त हो जाते हैं। उनके उदासीन हो जाने या मूलाधार चक्र में सुप्तावस्था में चले जाते ही नरक की आसुरी शक्तियाँ सामूहिक अवचेतन में आ जाती हैं। अवचेतन को कुचल कर ये आसुरी शक्तियाँ मानव मस्तिष्करूपी मोटर में चालक का स्थान ले लेती

हैं। ऐसे भूतबाधित व्यक्ति में अच्छे बुरे का कोई विवेक नहीं रह जाता और स्वच्छन्द रूप से यौन अपराधों में लिप्त होने के बावजूद भी वह स्वयं को पवित्र और अबोध मानता है। इस प्रकार अवर्णनीय असामान्य यौन आचरण का प्रदर्शन होता है और अपराधी तथा यौन अपराधी लोगों को पृथ्वी पर आने का निमन्त्रण मिलता है। विकृत यौनोन्मादी अपने अधिकारों के लिए लड़ते हैं और इन मतदाताओं को प्रसन्न करने के लिए राज्य अवमानवीय (subhuman) कानून बनाते हैं। ये लोग मानव रूप में पशु हैं जो इस प्रकार के संदेहास्पद विशेषाधिकार पाने के लिए बहुत बड़ी संख्या में एकत्र हो जाते हैं।

इस कलियुग में दुर्बल आत्माओं पर नियन्त्रण पाने की इच्छा वाले कुछ गुरु, साधकों के मूलाधार चक्र को उत्तेजित करके उनके मस्तिष्क पर कब्जा कर लेते हैं। शिष्य के मूलाधार चक्र में मृत आत्माओं को प्रवेश करवाने का यह निश्चित उपाय है। आम तौर पर श्रीगणेश इस प्रकार के घुसपैठिओं से युद्ध करते हैं, परन्तु साधक में यदि श्रीगणेश ही सुप्त अवस्था में जा चुके हों तो उसे किसी भी प्रकार की सुरक्षा उपलब्ध नहीं होती।

त्रिकोणाकार अस्थि में जब कुण्डलिनी जागृत होती है तो यह अपने ऊपर के छह चक्रों से गुज़रती है। यह मूलाधार चक्र से नहीं गुज़रती क्योंकि मूलाधार चक्र का स्थान कुण्डलिनी के निवास के नीचे है। श्रीगणेश तक केवल आदिशक्ति के निवास के माध्यम से ही पहुँचा जा सकता है। अभी तक ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी उनसे एकरूप (समन्वित) नहीं हो पाए हैं। यद्यपि श्रीगणेश, आंशिक रूप से, अन्य देवी-देवताओं से एकरूप होते हैं, परन्तु कोई भी एक देवता उनकी अबोधिता और माँ के प्रति पूर्ण समर्पण को प्राप्त नहीं कर पाया। उन्हें देखा जा सकता है (सालोक्य समाधि) और उनके सामीप्य की भी अनुभूति की जा सकती है (सामीप्य समाधि), परन्तु उनसे एकरूप हो पाना असम्भव से भी कठिन कार्य है।

मध्यवाहिका (सुषुम्ना) सात दरवाजों वाले घर के मार्ग की तरह है।

सात भिन्न देवी-देवता अन्दर से इन दरवाजों के प्रहरी हैं। परमेश्वरी ने ऐसी ही योजना बनाई है क्योंकि बाहरी खोज (तलाश) से इस मार्ग में प्रवेश कर पाना सम्भव नहीं है। केवल कुण्डलिनी जागृति द्वारा ही इस मार्ग में प्रवेश किया जा सकता है। जागृत हो कर कुण्डलिनी मध्यवाहिका से इस मार्ग को पार करती है। एक से दूसरे चक्र तक ऊपर की ओर चढ़ते हुए, यह सभी देवी-देवताओं को सूचित करती है। कोई चक्र यदि दुर्बल हो तो इससे सम्बन्धित देवी-देवता जागृत नहीं होते और कुण्डलिनी की शिखर की ओर उत्क्रान्ति में बाधा आ जाती है। जागने के बाद ही देवी-देवता कुण्डलिनी के जाने का रास्ता देते हैं और उसे अपने प्रेम का आशीर्वाद प्रदान करते हैं। इस अद्‌भुत घटना के फलस्वरूप साधक का चित् अन्दर की ओर खिंचता है। कुण्डलिनी, अन्ततः जब सिर के शिखर पर ब्रह्मरन्ध्र को बेंधती है, तो मनुष्य का चित् सर्वव्यापी शक्ति से समग्र (एकरूपी) हो जाता है। स्वभाव से ये शक्ति असीम (Infinite) है। साधक को अवर्णनीय आत्मानन्द और शान्ति की अनुभूति होती है। देवी-देवता द्वारा सम्बन्धित चक्र को स्वच्छ कर देने के बाद सभी चक्रों का भेदन होता है, अतः उत्क्रान्ति के समय साधक को देवी-देवता दिखाई नहीं पड़ते। इस सारी प्रक्रिया में मूलाधार चक्र की भूमिका महानतम होती है क्योंकि सभी चक्र मूलाधार चक्र की चार पंखुड़ियों से प्रसारित या विकीर्णित होने वाली पावनता से ही अपना मूलतत्व प्राप्त करते हैं।

सहजयोग के माध्यम से पूर्ण आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करने के बाद साधक अपने चित् को सिर के शिखर पर ला सकता है और चक्र के रक्षक देवी-देवता से परिचित हो सकता है। सहजयोग की कार्यशैली में पहले गुम्बद (शिखर) का निर्माण होता है और उसके बाद नींव मज़बूत की जाती है। परन्तु श्रीगणेश के रास्ते प्रवेश कर पाना महानतम सन्तों के सामर्थ्य से भी परे की बात है। जिन लोगों ने चेतना की महान ऊँचाई प्राप्त कर ली है और श्रीगणेश के मानव रूप श्रीईसामसीह की तरह अबोधिता से पूरी तरह एकरूप

हो गये हैं, केवल वही ऐसा कर सकते हैं।

सहजयोग में ये देखा गया है कि श्रीगणेश केवल ये सुनिश्चित करने के लिए ही प्रतिक्रिया करते हैं कि उनकी माँ श्रीआदिशक्ति की मर्यादाओं का पूरी तरह पालन हो। उदाहरण के रूप में, अपनी माँ की पावनता के विरुद्ध एक भी शब्द बोलने वाले लोगों को ईसामसीह कभी क्षमा नहीं करेंगे, जबकि उन्हें क्रूसारोपित करने वाले लोगों को उन्होंने तत्क्षण क्षमा कर दिया। निष्ठापूर्वक सहजयोग ध्यान-धारणा से साधक पावन होता चला जाता है और सहजयोग की गहन सूझबूझ (समझ) हो जाने पर श्रीगणेश उसे स्थिर कर देंगे। ऐसा व्यक्ति यौनक्रीड़ा का मात्र साक्षी बन जाता है, उसे यौनक्रिया का न तो कोई आकर्षण होता है और न इससे कोई लिप्सा।

श्रीगणेश की कृपा से साधक अपने स्नेह की विविधता और सौन्दर्यपक्ष का आनन्द उठाता है और परिणाम स्वरूप भिन्न भागों वाले विशाल वृक्ष की तरह उसके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है। वृक्षसम व्यक्तित्व की जड़ों की तरह उसकी माँ उसे जीवन प्रदान करती है और उसके व्यक्तित्व विकास का मार्गदर्शन और दृढ़ीकरण करने के लिए उसे पूर्ण आध्यात्मिक सहायता प्रदान करती है। वृक्ष के तने की तरह आश्रय देते हुए उसकी पत्नी जिम्मेदारियों का सारा बोझ अपने कन्धों पर ले लेती है। वृक्ष की डालियों की तरह उसकी बहनों का स्नेह, भाई की उपलब्धियों पर गर्व करता है और हमेशा अपने प्रिय भाई की सुरक्षा की प्रार्थना करता है और लताकुंज पर कुसुमित फूलों की तरह अपनी बेटियों के समक्ष वह अपने पितृप्रेम की अभिव्यक्ति कर सकता है। अपनी नातिनों/पोतियों के प्रति जब वह इस प्रेम की अभिव्यक्ति करता है तो यह उसकी भावनाओं की अभिव्यक्ति की पूर्णता होती है। वे उसके वृक्ष के फल हैं और अपनी नातिनों/पोतियों से स्नेहिल सम्बन्धों से वह अपने अबोध (निष्कपट) प्रेम की अभिव्यक्ति करता है। तब वह स्वयं को राजा की तरह श्रेष्ठ एवं गौरवशाली पाता है। बेटों से भी उसके ऐसे ही स्नेहमय सम्बन्ध होते हैं।

प्रेम की कोमल मधुरता का वर्णन करने वाली बहुत सी कहानियाँ हैं। पहले भी मैंने सिकन्दर महान और उनकी भारतीय पत्नी की कहानी सुनाई है। भारतीय राजा पुरु ने जब सिकन्दर को बन्दी बना लिया तो इस भारतीय महिला ने राजा पुरु को राखी भाई बना कर सिकन्दर के जीवन की रक्षा की। इस व्यवहार ने सिकन्दर के हृदय को परिवर्तित और पावन कर दिया। उस छोटी सी घटना का सिकन्दर पर इतना गहन प्रभाव पड़ा कि पुरु से रिहा होने के बाद बिना कोई और विजय प्राप्त किए, बिना किसी अन्य विध्वंस के वह भारत से चला गया।

अहं और प्रतिअहं के माध्यम से श्रीगणेश स्वयं मानव मस्तिष्क में माया का सृजन करते हैं। ईश्वरी शक्ति (जीवन-जल) की तरह से, जिसे यदि मिट्टी पर डाल दिया जाए तो गारे (कीचड़) का रूप ले कर ये माया (भ्रान्ति) उत्पन्न कर देता है, ताकि आदिशक्ति के शिष्यों की परीक्षा ले सके, उनकी साधना की सच्चाई जाँच कर उनके अन्दर छिपे पाखण्डियों और आसुरी मस्तिष्क लोगों को निकाल फेंके।

श्रीगणेश के शरीर का सृजन पृथ्वी तत्व से किया गया था और मिट्टी से यदि इनकी मूर्ति बनाई जाए तो यह पानी में बहुत आसानी से घुल जाती है। श्रीगणेश की मिट्टी की मूर्ति को समुद्र में विसर्जित (निमग्न) करते ही यह एकदम जल में विलय हो जाती है और उस जल को चैतन्यित करती है जिसके स्वामी उनके अपने नाना हैं। उनके शरीर (मूर्ति) की मिट्टी जब समुद्र तल पर बैठती है तो पृथ्वी तत्व (उनकी नानी) भी चैतन्यित हो जाता है। सम्बन्ध अत्यन्त सूक्ष्म है और अबोध श्रीगणेश इसका आनन्द उठाते हैं।

अपने चैतन्य के माध्यम से पृथ्वीतत्व को विविध सांसारिक वस्तुओं के रूप में परिवर्तित करके वे सौन्दर्य (की) भ्रान्ति का सृजन करते हैं। सुगन्ध पृथ्वीतत्व का कारणात्मक तत्व है, अत: फूलों तथा सभी प्रकार की सुगन्ध के माध्यम से अचेतन में प्रवेश करके, सारी नैसर्गिक (प्राकृतिक) सुगन्ध के

माध्यम से श्रीगणेश अपनी अभिव्यक्ति करते हैं। इस प्रकार पावनता और अबोधिता की चैतन्य लहरियाँ उनसे निरन्तर प्रसारित होती रहती हैं। सुगन्ध पृथ्वीतत्व का कारणात्मक सार है, अतः श्रीगणेश को सभी प्रकार के सुगन्ध अत्यन्त प्रिय हैं। आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति का शरीर हमेशा सुगन्धित होता है, जब कि अवतरण का शरीर भिन्न प्रकार के फूलों की सुगन्ध के बादल प्रसारित करता है। ये सुगन्ध मनुष्यों को विवेक और अन्तर्दृष्टि प्रदान करती है। अन्तिम विश्लेषण (निर्णय) में उनके (श्री गणेश) विवेक के माध्यम से धूर्त और चालाक लोग मूर्ख और बेवकूफ़ प्रतीत होने को विवश हो जाते हैं तथा इस चमत्कार का अनुभव करने के बाद मनुष्य अपनी पावनता और अबोधिता में उन्नत होता है।

अपनी माँ की मर्यादाओं की देखभाल करना श्रीगणेश के कर्तव्यों में से एक है। यद्यपि वे अत्यन्त क्षमाशील देवता हैं, फिर भी अपनी माँ के विरुद्ध किए गये किसी भी अपराध को वे बिल्कुल सहन नहीं करते। मानव बुद्धि में प्रवेश करके वे वहाँ सम्मान का गुण जागृत करते हैं। अहंकारी बुद्धिवादी जब उनकी अबोधिता के प्रति नतमस्तक होते हैं तो वे उनमें भी विवेक की रोशनी ज्योतित करते हैं। दबाए हुए और बन्धनग्रस्त लोग जब उनकी भक्ति करते हैं तो वे उनके प्रतिअहम् में प्रवेश करते हैं। साधकों पर नियन्त्रण करने वाले राक्षसों और आसुरी शक्तियों का वे वध कर देते हैं। उनके पास विवेकशील देवदूतों (गणों) की एक सेना है, जिसके वे सेनापति हैं। इसके अतिरिक्त बहुत से अन्य देवदूत उनकी दृष्टि के अनुरूप कार्य करते हैं। सभी देवता उनकी पूजा और सम्मान करते हैं, उनकी अपनी माँ, श्रीआदिशक्ति भी सर्वोच्च मानकर उनकी पूजा करती हैं।

श्रीगणेश भवसागर के बाएं अर्धवृत्त में घूमते हैं और उनके भाई कार्तिकेय भवसागर के दाएं अर्धभाग में घूमते हैं। हृदय चक्र के नीचे उनका मिलन होता है। इस बिंदु से वानरदेव हनुमान, जिनका विराट के पूर्वचेतन

मस्तिष्क के मार्गदर्शक देवदूत बनने के लिए सृजन किया गया था, दाईं वाहिका-पिंगला पर विराजमान होते हैं। पिंगला नाड़ी दाएं अनुकम्पी नाड़ी तन्त्र की अभिव्यक्ति करती है। श्रीकृष्ण के अवतरण के बाद ये देवता (हनुमान) विशुद्धि चक्र पर सेंट गॅब्रीएल का रूप धारण करते हैं।

बाईं ओर ईड़ा वाहिका पर, नाभि चक्र से ऊपर भैरव देवता का उदय होता है। वे विराट के सुप्त चेतन (अवचेतन मस्तिष्क) के मार्गदर्शक देवदूत हैं। यह वाहिका बाएं अनुकम्पी नाड़ी तन्त्र के रूप में अभिव्यक्त होती है। विशुद्धि से ऊपर, पुन: श्रीकृष्ण के अवतरण के बाद वे सेंट माइकल का रूप धारण करते हैं। ये सभी भगवान ईसामसीह के पक्ष हैं : कार्तिकेय, ईसामसीह का शरीर बनते हैं, श्रीगणेश ईसामसीह का सारतत्व बनते हैं, सेंट गॅब्रिएल और सेंट माइकल देवदूत बनते हैं - ईसामसीह के चित् के गतिशील पक्ष।

आदिशक्ति द्वारा सृजित सभी देवी-देवताओं में श्रीगणेश महानतम हैं।

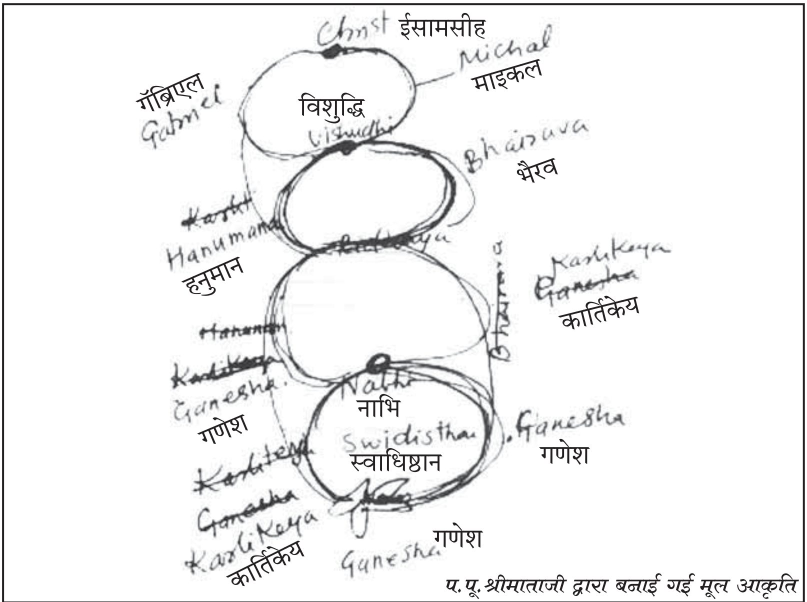

प.पू.श्रीमाताजी द्वारा बनाई गई मूल आकृति

आकृति १४

यद्यपि वे आदिशक्ति हैं, फिर भी वे अपने पुत्र पर आश्चर्य करती हैं और उन्हें महान सम्मान प्रदान करती हैं। श्रीगणेश के सर्वव्यापी (सर्व विस्तृत) स्वभाव का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। उनकी शारीरिक कार्यक्षमता समरूप सहकार्य-क्षमता (coefficient) का सृजन करती है जो चैतन्य प्रसारित करने का माध्यम बनती है। ईश्वरी शक्ति (प्रणव) की सहकार्य क्षमता भी इसी प्रकार है। अतः वे (श्रीगणेश) प्रणव या ईश्वरी प्रेम का वास्तवीकरण (अनुभूति) और आदिशक्ति की पूर्ण शक्ति हैं। ईसामसीह के रूप में जब वे व्यक्त (अवतरित) होते हैं तो वे पूर्ण चेतना के प्रकाश के प्रतीक बनते हैं, परन्तु श्रीगणेश के रूप में वे चेतना के बीज हैं।

अत्यन्त उच्च आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति द्वारा चैतन्यित कोई पत्थर या किसी अवतरण के चरणों की धूल या किसी पेड़ की छाल जिसे किसी देवी-देवता या महान गुरु ने आशीर्वादित किया हो, इन सभी चीज़ों को सहकार्य क्षमता की परिभाषा में उपयुक्त गुणांक की सीमा (Proper Properties) तक परिवर्तित किया जा सकता है या आकार दिया जा सकता है और ये लगभग प्रणव के समान सहकार्य क्षमता प्राप्त कर सकते हैं, जो चैतन्य प्रसारित करेगा। परन्तु पत्थर यदि श्रीगणेश के रूप में हो तो प्रणव पत्थर से पूर्णतः एकरूप होगा। भारत में भिन्न स्थानों पर स्थापित आठ स्वयंभु श्रीगणेश (अष्ट विनायक) हैं। इन्हें प्राचीन महान सन्तों ने खोजा था और इन स्वयंभुओं द्वारा प्रसारित किए जाने वाले चैतन्य को सामान्य मनुष्य महसूस नहीं कर सकते। अतः अधिकतर लोग इनके मूल्य को नहीं समझते। कई बेलिहाज़े भौतिकता लोलुप लोग इन स्वयंभुओं से भौतिक वैभव प्रदान करने के लिए प्रार्थना करते हैं और कभी-कभी उनकी कामना पूरी भी हो जाती है। सत्यसाधक आत्मज्ञान के माध्यम से श्रेष्ठ विवेक और अबोधिता की याचना करते हैं। यदि हम श्रीगणेश की तरह अबोध हों तो आत्मसाक्षात्कार का हमारा जन्मसिद्ध अधिकार हमें बहुत अच्छी तरह मिल जाता है। हमारी व्यक्तिगत

योग्यता और बुद्धि में निहित भयंकर अहंकार इस उपलब्धि प्राप्ति के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है। कुछ लोगों में तो इतना अहंकार है कि वे आत्मविश्वस्त हैं कि परमात्मा को भी छल लेंगे और उनका कुछ नहीं बिगड़ेगा।

पृथ्वी माँ द्वारा सृजित श्रीगणेश के इन स्वयंभुओं के अतिरिक्त, उपयुक्त अनुपात की सुपारी की सहकार्यक्षमता यदि कार्यान्वित हो तो वह भी लगभग स्वयंभु जैसी प्रभावशाली होती है। चैतन्य के प्रभावित करने वाले और भी बहुत से घटक होते हैं, जैसे सुपारी का पेड़ उगाने वाले व्यक्ति का आध्यात्मिक स्तर, सुपारी बेचने वाले व्यक्ति की आध्यात्मिक स्थिति आदि का भी ध्यान रखा जाना आवश्यक है। एक नारियल भी वातावरण में चैतन्य लहरियाँ प्रसारित करनेवाली इस सहकार्य क्षमता के लगभग बराबर कार्य कर सकता है। मानवीय घटक (सम्बन्धित व्यक्ति) को कभी कम महत्वपूर्ण नहीं समझना चाहिए। नारियल यदि ऐसे व्यक्ति द्वारा सम्भाला गया हो जो आध्यात्मिक रूप से उन्नत या पावन हृदय न हो तो इसका चैतन्य संदूषित हो जाएगा, बिगड़ जाएगा। ईश्वरी होने के कारण चैतन्य लहरियाँ स्वत: ही विवेकशील होती हैं, अत: उन्हें हर चीज़ का ज्ञान होता है।

श्रीगणेश सभी सहजयोगियों के बड़े भाई हैं क्योंकि आदिशक्ति के प्रथम पुत्र के रूप में उनका सृजन किया गया था। कलियुग में सहजयोगियों के रूप में पुनर्जन्म प्राप्त करने वाले आदिशक्ति के बच्चों के वे मूर्त (मूल) रूप हैं। यह कार्य संकल्प (अकारण कारण) (Causeless Cause) से होता है, जिसके माध्यम से आदिशक्ति आत्मज्ञानी शक्तिशाली व्यक्तियों का सृजन करती हैं। ईसामसीह के अवतरण में अपने विकसित मानव रूप में वे सहजयोग विश्वविद्यालय के कुलपति की भूमिका पूर्ण करते हैं। पंजीयन के लिए वे हर साधक की योग्यता का आकलन करने के लिए ज़िम्मेदार हैं और वे ही उन्हें अपने दिव्य विश्वविद्यालय में पंजीकरण कराने की अनुमति प्रदान करते हैं। स्वाधिष्ठान, नाभि, अनाहत और विशुद्धि चक्र के चार स्तरों को पार करने के

बाद, कुलपति के रूप में वे हर साधक को उपाधि प्रदान करते हैं कि साधक जागृत अवस्था के इस बिंदु तक उन्नत हो गया है।

आज्ञा चक्र को पार करने के बाद साधक का चित् मस्तिष्क के सहस्रार नामक तालु भाग में प्रवेश करता है। सिर के शिखर पर तालु अस्थि के भेदन के बाद योग घटित होने पर, वे साधक को स्नातकोत्तर (Post Graduate) उपाधि प्रदान करते हैं। यही आत्मसाक्षात्कार है। अचेतन मस्तिष्क में प्रवेश प्राप्त करने के बाद प्राप्त होने वाली उच्च उपाधियों को भी श्रीगणेश की स्वीकृति प्राप्त होनी आवश्यक है। यद्यपि स्नातकोत्तर समारोह में स्वयं आदिशक्ति ही उपाधि प्रदान करती है, फिर भी हर साधक को श्रीगणेश का आशीर्वाद प्राप्त होने के बाद ही वे ऐसा करती हैं।

व्यक्ति के सिर के शिखर पर सदाशिव का स्थान है। क्योंकि श्रीगणेश अपने परमेश्वरी माता-पिता के चरणों, उनके प्रियतम स्थान पर हमेशा समर्पित रहते हैं, अतः सम्माननीय महान शिशु के रूप में वे श्रीसदाशिव की गोदी में बैठते हैं। सदाशिव के स्थान के ऊपर, भगवान शिव के सिर पर श्रीगणेश अर्धबिन्दु के रूप में अर्धचन्द्र बनाते हैं और इसके प्याले से चहुँ ओर प्रणव की फुहार बरसती है। बिंदु अवस्था में वे पूर्णतः सूक्ष्म हो जाते हैं ताकि वे इस बिंदु में, जिसकी न कोई लम्बाई है न चौड़ाई, स्वतः केन्द्रित चेतना के पूर्ण घनत्व के साथ प्रवेश कर सकें। अन्त में वे (श्रीगणेश) वलयाकार रेखा हैं, जो आदिशक्ति की शक्ति वलय या 'पूर्ण स्थिति' को सीमित करती है। आदिशक्ति सर्वशक्तिमान परमात्मा (परमेश्वर) की शक्ति हैं, परन्तु उनकी शक्ति श्रीगणेश हैं। सृजन किए गये हर कण में वे अचेतन के रूप में विराजमान रहते हैं और आत्मसाक्षात्कार के बाद चेतना (प्रणव) रूप में।

स्वस्तिक और क्रूस (The Swastika and The Cross)

स्वस्तिक उनका प्रतीक है। सृजन के समय यह घड़ी की सुई की दिशा

(सीधा चक्कर) में घूमता है और विनाश के समय उलटे चक्कर में (बाई दिशा) में। घूमते हुए यह स्थिरता प्रदान करने वाली समान और विरोधी शक्तियों के साथ कार्य करता है। स्वस्तिक की चार रेखाएं श्रीगणेश की चार भुजाओं की तरह हैं जो अन्त (हाथ) में प्रतीकात्मक अस्त्र-शस्त्र और साजो सामान धारण किए हुए हैं। ईसामसीह के जीवन में क्रूस स्वस्तिक का प्रतीक है। वास्तव में क्रूस स्वस्तिक का व्यक्त (विकसित) रूप है। क्रूस की दो भुजाओं का कटाव बिंदु स्वस्तिक से ऊँचा है क्योंकि ईसामसीह के अवतरण के समय सृष्टि विकास के उच्च बिंदु तक पहुँच चुकी थी और मानव कहीं अधिक चेतना के साथ जन्म ले रहे थे।

श्रीगणेश के चार हाथ हैं। उनके अस्त्र-शस्त्र और साजोसामान ईसामसीह के शरीर में विलय हो गये हैं। अत: ईसामसीह का प्रतीक क्रूस कुछ भी धारण किए हुए नहीं है। ये अस्त्र-शस्त्र निम्नलिखित हैं :

१. ऊपर का दायां हाथ परशु (कुल्हाड़ा) धारण किए हुए है। ईसामसीह में श्रीगणेश का यह आयुध क्षमा का रूप ले लेता है। क्षमा मानव का महानतम आयुध है। सहजयोग में क्षमा के आयुध का उपयोग करने की विधि का वर्णन आगे चलकर करेंगे।

२. नीचे का बायां हाथ देवी अन्नपूर्णा का कटोरा लिए हुए है। इस कटोरे में मोदक भरे हुए हैं जो ईसामसीह के शरीर से एकरूप हो जाते हैं। ईसामसीह के जीवन में उन्होंने दर्शाया कि वे क्षुधा (भूख) पर विजय पा सकते हैं। उन्होंने चालीस दिनों का व्रत किया और शैतान भी उन्हें प्रलोभित करने में सफलता न पा सका। 'पर्वत पर उपदेश' (Sermon on the Mount) में उन्होंने पाव-रोटी और मछलियों (Loaves and Fishes) के चमत्कार के माध्यम से हज़ारों लोगों की भूख मिटाई।

३. नीचे का बाईं ओर का हाथ छोटे सर्प के रूप में कुण्डलिनी धारण किए हुए है। इसका अर्थ ये है कि वे ब्रह्माण्ड की कुण्डलिनी नियन्त्रित करते हैं। ईसामसीह के आगमन से बहुत लोगों की कुण्डलिनी जागृत हुई और कलियुग में सहजयोग के माध्यम से वे सब आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करेंगे। अपने प्रेम और समर्पण से उनका प्रभाव अपनी माँ पर भी है। अपनी सेवा से वे उन्हें सुख देते हैं और उनके अन्दर मातृ-सुलभ वात्सल्य की पूर्ति करते हैं। वे उन्हें गहन प्रसन्नता देते हैं। सभी सहजयोगियों को श्रीगणेश के पूजन का ज्ञान होना आवश्यक है ताकि श्रीगणेश उनके अन्दर जागृत अवस्था में रहें और वे उनकी अबोधिता की अनन्त कृपा में बने रहें।

अध्याय 13

स्वाधिष्ठान चक्र

कुण्डलिनी के निवास या स्थान मूलाधार से ऊपर स्वाधिष्ठान चक्र को स्थापित किया गया है। मानव में ये सूक्ष्म केन्द्र अपनी स्थूल अभिव्यक्ति में महाधमनी नामक केन्द्र (Aortic Plexus) को नियन्त्रित करता है। नाभि चक्र (सौर केन्द्र) के बाद इस चक्र का सृजन किया गया। नाभि से कमल की तरह निकल कर यह चक्र भवसागर केन्द्र में झूलता (घूमता) रहता है। स्वाधिष्ठान चक्र में क्योंकि छः पंखुड़ियाँ हैं, इन्हीं के समरूप महाधमनी केन्द्र में भी छः उपकेन्द्र हैं। अपनी छः पंखुड़ियों के माध्यम से यह इन छः ध्वन्यात्मक स्वरों का सृजन करता है : 'लम्, रम्, हम्, इम्, नम् और वम्' (Lam, rum, hum, em, num and vam)। कुण्डलिनी जागृति के दौरान ऊपर उठते हुए प्रणव किसी (स्वर) ध्वनि का सृजन नहीं करता। परन्तु केवल नाभि केन्द्र में सुनाई देने वाली ध्वनि की अभिव्यक्ति करता है। इस चक्र के देवी-देवताओं को पूजने का दिन बुधवार है क्योंकि सृजन के सात दिनों में बुधवार के दिन ही इसका सृजन किया गया था। सृजनात्मकता से सम्बन्धित कोई भी गतिविधि आरम्भ करने के लिए बुधवार का दिन मंगलमय होता है।

पृथ्वी तत्व ने स्वाधिष्ठान चक्र का सृजन किया और इसे अपना पीला रंग प्रदान किया। इस प्रकार, ध्यान-धारणा करते हुए अधिकतर लोगों में यह छः पीले रंग के तन्तुओं की तरह दिखाई देता है। जहाँ तक सृजनात्मकता का सम्बन्ध है हर व्यक्ति की मनोदशा के अनुरूप भिन्न लोगों में यह पांडु रंग (धुंधला पीला) से लेकर सरसों के रंग जैसा दिखाई पड़ता है। आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति में यह स्वर्ण (सुनहरा) रंग का होता है और अवतरणों में यह देदीप्यमान सूर्य के रंग का दिखाई देता है। गलत ढंग के (असहज) साधकों में यह गहरे नीले-काले रंगों में दिखाई देता है। इस रिक्ति

(खाली स्थान) के अन्दर झाँकने में सक्षम योगी को धुंधले-पीले रंग में ब्रह्मदेव स्पष्ट दिखाई देते हैं।

ब्रह्मदेव सर्वशक्तिमान परमात्मा के दोनों पक्षों का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह सृजनकर्ता - सूक्ष्म पक्ष (सौन्दर्य बोध) और भौतिकता के स्थूल पक्ष के सृजन की अभिव्यक्ति है। ब्रह्मदेव दाढ़ी मूछों वाले एक सन्यासी की तरह सन्त व्यक्तित्व दिखाई देते हैं। उनका शरीर पतला है और उभरी हुई विशाल आँखें उनकी प्रमुख विशेषता है। ब्रह्मदेव बिरले ही अवतरित होते हैं, केवल एक बार वे हज़रत अली, मोहम्मद साहब के दामाद, फ़ातिमा के पति के रूप में अवतरित हुए। कुछ प्राचीन ऋषियों ने उनके चार सिरों के अर्थ की व्याख्या करने का प्रयत्न करते हुए इन्हें सृष्टि की चार वेदों के रूप में अभिव्यक्ति कहा है। यद्यपि उनके चार सिरों का अर्थ इससे कहीं अधिक गहन और विस्तृत है। ब्रह्मदेव परम पिता (सर्वोच्च), ईश्वर, ब्रह्मा, परमात्मा की सृजनशक्ति के प्रतीक हैं। ब्रह्माण्ड में इस सृजनशक्ति की अभिव्यक्ति भौतिक स्तर पर होती है। सभी भौतिक पदार्थों में तीन आयाम होते हैं, परन्तु एक चौथा आयाम भी है जिसे केवल मानव ही देख और महसूस कर सकता है। यह चौथा आयाम भिन्न तन्तु-विन्यास (Texture) (संरचना), आकृतियों और रेखाओं के संतुलित तालमेल द्वारा सृजित 'सौन्दर्य बोध' आयाम है। पशुओं में सौन्दर्य विवेक नहीं होता। केवल मनुष्य ही कृतियों के भिन्न रंगों, रेखाओं की गतिविधियों और आकारों के विलय के सौन्दर्य को महसूस कर सकता है। सौन्दर्य विवेक के माध्यम से प्राप्त किए गये आनन्द की अनुभूति 'रस' (अनुभूतियों के सार) का सृजन करती है। 'रस' हमारी अन्तर्आत्मा में सौन्दर्य आनन्द की लहरियों की गति आरम्भ करने वाला प्रेरक भाव प्रदान करता है। ये आनन्द भिन्न आवृत्तियों और चैतन्य लहरियों वाले होते हैं। व्यक्ति को इनका विश्लेषण करने की आवश्यकता नहीं है। इस चक्र की भिन्न पंखुड़िओं को देखकर मैं दिव्य ज्ञानोदय के माध्यम से अभिव्यक्त सृजनात्मकता के क्षेत्र

में विद्यमान भिन्न प्रकार के आनन्दों की व्याख्या करने का प्रयत्न करूंगी।

ब्रह्मदेव की सृजनात्मक शक्ति उनकी संगिनी (शक्ति) सरस्वती के रूप में अवतरित होती हैं। वे ज्ञान और विद्या की देवी हैं। कई बार ये इस चक्र पर अकेली दिखाई देती हैं। मनुष्य को ज्ञान का सच्चा अर्थ समझाने के लिए उनकी ये छवि प्रकट होती है। प्राय: उनके एक हाथ में वीणा होती है जो इस बात की प्रतीक है कि ज्ञानवान व्यक्ति को ईश्वरी संगीत का ज्ञान होना आवश्यक है। भारतीय शास्त्रीय संगीत मूल-आदि-नाद (ब्रह्मनाद) पर आधारित है, इसका वर्णन मैंने 'सृजन' नामक अध्याय में किया है। अत: इस चक्र पर ये देवी वीणा के साथ दिखाई देकर ये सुझाती हैं कि यदि आप विद्वान हैं तो आपको संगीत का ज्ञान होना भी आवश्यक है। केवल इतना ही नहीं, विद्वान व्यक्ति को नीरस न होकर सृजनात्मकता के सौन्दर्य (माधुर्य) का आनन्द उठाने वाला होना चाहिए।

अपने दूसरे हाथ में वे माला धारण करती हैं। इस प्रकार ये सुझाती हैं कि ज्ञानार्थी व्यक्ति को परमात्मा में श्रद्धा होनी चाहिए और वह परमात्मा के शाश्वत प्रेम की सराहना करने वाला होना चाहिए। अत: साधक को, विद्या के भक्ति पक्ष में कुशल होना आवश्यक है। उसके अध्ययन का मुख्य उद्देश्य शाश्वत सत्य की खोज होना आवश्यक है। सच्चे भक्त की यही पहचान है कि वह विवेक खोजता है, सतही ज्ञान नहीं। अपने तीसरे हाथ में देवी सरस्वती ज्ञान की पुस्तक धारण करती हैं और इस प्रकार सुझाती हैं कि विद्वान व्यक्ति को ज्ञान साधना में खोजे गये शाश्वत सत्यों के विषय में ग्रन्थों का सृजन करना चाहिए।

सरस्वती सोने की कढ़ाई वाली लाल किनारीदार साड़ी धारण करती हैं। भारत का राष्ट्रीय पक्षी मोर (मयूर) उनका वाहन है। यह शानदार पंखों वाला आश्चर्यजनक पक्षी है। वाहन के रूप में मोर का चुनाव ये सुझाता है कि विद्वान व्यक्ति में सौन्दर्यात्मकता का पूर्ण विवेक होना चाहिए। आकाश में

जब बादल दिखाई देते हैं तो मोर नाचने लगता है। इस प्रकार यह पक्षी अपनी विशेष आदत का प्रदर्शन करता है। यह किसी कवि या नर्तक का चित्रण है, जो बादलों को देखकर आनन्द से नाचने और गाने लगता है। भविष्य के आशीर्वाद के समाचार के रूप में वह इसकी व्याख्या करता है, बिल्कुल वैसे ही जैसे सिर पर मंडराती वर्षा को देखकर किसान आनन्दित होता है। प्रकृति की इस अभिव्यक्ति से मयूर और किसान सामूहिक चेतना में समग्र हो जाते हैं। मयूर उस विद्वान की तरह है जो परमात्मा की कृपा को आकाश में आनन्दप्रदायी बादलों के रूप में देखता है और अपनी कामनापूर्ति के दृश्य को आकाश में देख कर आनन्द से नाच उठता है। मयूर का प्रतीक इस बात की ओर संकेत करता है कि मयूर की तरह से विद्वान को भी स्वप्नदर्शी होना चाहिए। केवल मोरनी ही नृत्य करती है, मोर नहीं। मोर जब परस्पर लड़ते हैं तो मोरनियाँ ऊब जाती हैं और उन्हें विजेता मोर का ही चुनाव करना पड़ता है। यह इस बात का सुझाव है कि विद्वानों को धर्म-सिद्धान्तों के लिए नहीं लड़ना चाहिए क्योंकि यह मर्यादाहीन लोगों का कार्य है।

स्वाधिष्ठान चक्र मनुष्यों में सृजनात्मकता के लिए ज़िम्मेदार है। ये भौतिक स्तर पर कार्य करता है और कलात्मक आनन्द प्राप्ति के लिए पदार्थों के आकार परिवर्तित करने में मनुष्य का सहायक है। मानसिक स्तर पर यह उसे सृजनात्मकता की योजनाएं, चित्र और छवियाँ बनाने के लिए अनूठे विचार प्रदान करता है। चेतन मस्तिष्क में विकीर्णित होकर यह मानव मस्तिष्क को अभौतिक (अलौकिक) धारणाओं के प्रति उघाड़ता है। पदार्थ के विषय में नवीन और मूल आविष्कारों, इसकी भिन्न प्रक्रियाओं, रासायनिक तथा भौतिक - को ग्रहण करने वाला वैज्ञानिक मस्तिष्क इस चक्र से अपनी प्रेरणाएं प्राप्त करता है।

विराट में यह चक्र पूरे भौतिक सृजन के लिए ज़िम्मेदार है। अन्तिम आकार में यह पूरे ब्रह्माण्ड का लघुरूप या सांचा है। ब्रह्माण्ड के पूर्ण विस्तार

के लिए इसमें अन्तर्रचित कार्यक्रम निहित है और इसके साथ-साथ कार्यक्रम की गहन सूक्ष्मताएं भी निहित हैं। सृष्टि के सारे आनन्ददायी गुणों को इस चक्र के देवी-देवताओं की जागृति के माध्यम से महसूस किया जा सकता है। ब्रह्मदेव द्वारा सृजित चीज़ों का मनुष्य पुनर्सृजन कर सकता है, परन्तु सृजन के मूलपदार्थ का वह स्वयं सृजन नहीं कर सकता। आत्मसाक्षात्कार के बाद इस चक्र पर ध्यान केन्द्रित करने वाला व्यक्ति अचानक महान कवि या कलाकार बन सकता है। श्रीब्रह्मदेव और सरस्वती की कृपा से मूर्तरूप या अमूर्त प्रकार की कलाकृतियों का सृजन हुआ है और कालचक्र में सार्वभौमिक रूप से इनका आनन्द उठाया गया है। उनकी संगिनी की अपने पूर्वजन्मों या वर्तमान जीवन में सेवा करने वाले लोगों पर ब्रह्मदेव की कृपा वर्षा होती है। वास्तव में ऐसे लोग रातों-रात अचानक जड़ पदार्थों में कलात्मकता और सौन्दर्य देखने लगते हैं।

मैं मरिका (Marica) के एक सज्जन को जानती हूँ जिनके पास एक बड़े आकार की हरित मणि (हीरा) (Jade) थी। आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करने के बाद उसने महसूस किया कि उस पत्थर से चैतन्य लहरियाँ निकल रही हैं। उसने ये भी देखा कि उस हरित मणि में वृत्ताकार सतहों में तीन रंग थे : हरा, गुलाबी और सफेद। इस मणि से उसने एक अद्वितीय फूलदान बनाया, जिसका हरे पत्तों और गुलाबी फूलों की रूपरेखा वाला सफेद रंग था। देवी सरस्वती की कृपा से सौन्दर्य सम्वेदना के माध्यम से सर्वसाधारण पत्थरों को भी इस प्रकार की अमूल्य कलाकृतियों में परिवर्तित किया जा सकता है। ब्रह्मदेव के कोई मन्दिर नहीं हैं क्योंकि पूजा स्वीकार करने के लिए वे कभी वहाँ होते ही नहीं। हमेशा वे अपनी सृष्टि को देखने में लगे रहते हैं। सृष्टि उनका प्रतिनिधित्व करती है और मानव विकास में यह उनकी साक्षीत्व शक्ति हैं। परन्तु पूर्ण सौन्दर्य का सृजन इस देवता का मुख्य कार्य है - पदार्थ में विविध संरचना, रंगों, रेखाओं और आकारों के माध्यम से प्रसारित होने वाला सौन्दर्य। विविधता सौन्दर्य का सार है और इन विविधताओं का तालमेल

(समन्वय) जागृत मस्तिष्क द्वारा महसूस किए जाने वाले आशिष का सृजन करता है। आनन्द के रूप में इसे कहीं अधिक महसूस किया जा सकता है। सृष्टि के सौन्दर्य की एक झलक के आनन्द की अनुभूति को अभिव्यक्त करने के लिए कलाकार अपनी कलाकृति बनाता है। सरस्वती के पुजारी बहुत से महान कलाकारों ने 'कलाकार' नामक नईं सूक्ष्म मानवजाति स्थापित करके ब्रह्मदेव के भौतिक सृजन को आगे बढ़ाया है। आदिशक्ति द्वारा प्रकृति में छलकाए गये आनन्द का आनन्द कलाकार उठाते हैं और इसकी रंगों, रेखाओं और आकारों की अभिव्यक्ति सार्वभौमिक भाषा में करते हैं। वे मानव जीवन को संगीत, कला, नृत्य तथा विविध कलाओं के उत्कृष्ट सृजन से भर देते हैं। ये सब, देवी सरस्वती के आशीर्वाद से होता है, जो पिंगला नाड़ी की शासक देवी महासरस्वती की छवि में है। सभी प्रयासों का सृजन करने के लिए मानव को आवश्यक प्रणव प्रदान करना भी इसी का कार्य है।

इस निष्कर्ष पर पहुँचना आवश्यक है कि हमारे रसास्वादन और आनन्द उठाने के लिए सारी मानवीय सृजनात्मक गतिविधियों की पराकाष्ठा उस गतिविधि के सूक्ष्म सौन्दर्य का सृजन होनी चाहिए। साधक को सृजनात्मकता की शक्ति का आशिष देने वाली देवी सरस्वती की पूजा से पहले श्रीगणेश की पूजा होनी चाहिए। वे अबोधिता का वरदान देते हैं और साधक को देवी की मर्यादाएं निभाने के लिए मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। विवेक का आशीर्वाद दे कर श्रीगणेश साधक के मार्ग की सारी बाधाएं दूर कर देते हैं। उनका आशीर्वाद कलाकार के लिए सुधारक ऊर्जा का कार्य करता है।

अबोधिता ही एकमात्र शुद्ध करने वाली शक्ति है जो व्यक्ति को कामुकता की दासता से मुक्त कर सकती है। अवैध यौनगतिविधियों में लिप्त कलाकार अपने आचरण को न्यायोचित ठहराने के लिए निश्चित रूप से पक्षपातपूर्ण कला का सृजन करेगा। यौन विकृतियों में डूबे हुए व्यक्ति को यद्यपि गुरु रूप में मान्यता प्राप्त हो जाए परन्तु वह अपनी कला पर स्वामित्व

प्राप्त नहीं कर सकता। शनैः शनैः एकाग्रता समाप्त होते जाने के कारण उसका सारा स्वामित्व समाप्त हो जाता है। इतना ही नहीं, मस्तिष्क को संकीर्ण बना लेने वाले या स्वयं को यौन गतिविधियों में लिप्त कर देने वाले व्यक्ति सृजन की पूर्ण अभिव्यक्ति का आनन्द नहीं उठा सकते। यह सरस्वती की सर्वव्यापी वास्तविकता की बहुभव्य अभिव्यक्ति है। उदाहरण के रूप में ऐसा व्यक्ति यदि किसी संगीत संगोष्ठी में जाता है, तो वह संगीतकार के मुख या शरीर से अधम उत्तेजना प्राप्त करने के लिए लालायित रहता है और इस प्रकार चेतना में संगीत का बिल्कुल भी आनन्द उठाने में अक्षम हो जाता है। अपनी प्रस्तुती के माध्यम से संगीतकार न तो उसे संतुष्ट कर पाएगा और न ही आनन्द प्रदान कर पाएगा। अपनी अधम आवश्यकताओं को उत्तेजित करने के लिए उसकी आँखें मुखाकृतियों और शरीरों को देखती हुई इधर-उधर घूमती रहेंगी।

पावनता के बिना कलात्मक कार्य करने का प्रयत्न करने वाले लोग वास्तव में अपनी कला के माध्यम से नकारात्मक या उत्क्रान्ति विरोधी चैतन्य लहरियों का सृजन करते हैं। सच्ची कला तो व्यक्त दिव्य आत्मा की अभिव्यक्ति में है, जो कलाकार और श्रोताओं, दोनों, में आशिष, शान्ति, आन्तरिक सन्तोष और आनन्द का सृजन करती है। ऐसी बहुत सी कलाकृतियाँ है जिनमें कामुकता तत्व विद्यमान है। इनमें यदि यह तत्व न होता तो ये कृतियाँ रोमांचक और असाधारण बन गई होतीं। श्रीगणेश केवल अहंकार मुक्ति ही प्रदान नहीं करते, परन्तु वे व्यक्ति को प्रति अहम् के बन्धनों के जाल से भी मुक्त कर देते हैं।

कोई लेखक या चित्रकार यदि अपनी कृति के माध्यम से निजी निराशा और कड़वाहट की अभिव्यक्ति कर रहा है, तो आत्मसाक्षात्कार के बाद आशीर्वाद के रूप में आशा की किरण ज्योतिर्मय करके श्रीगणेश ऐसे जीवन को अंधकार मुक्त कर सकते हैं। अन्यथा इस प्रकार की अंधकारमय पुस्तकें या चित्रकारियाँ ऐसी चैतन्य लहरियों का प्रसार करती हैं जो सच्ची स्वतन्त्रता

और विकास के विरुद्ध होती हैं। ये चैतन्य लहरियाँ ऐसी शैतानी प्रतिध्वनियाँ आरम्भ करती हैं कि इनसे परिवार, समाज या राष्ट्र तक नष्ट हो सकते हैं। इस प्रकार की प्रतिध्वनियाँ कला सृजन के आधार को ही नष्ट कर देती हैं, उसी आधार को जो मानवमात्र के विकास वैभव और अन्तिम उत्क्रान्ति के लिए होना चाहिए। वे परमात्मा की महिमा को कली के रूप में विकसित नहीं होने देते और दण्डस्वरूप विकास प्रक्रिया से बाहर फेंक दिए जाते हैं। इस प्रकार लम्बे समय में वे घिनौनेपन के सृजन द्वारा संघटित सृजन (Homogenous Creation) की एकता को विघटित करने के कारण बनते हैं। समन्वित (धार्मिक) प्रतीत होने वाली ऐसी कलाकृतियाँ अधार्मिक हैं।

इस प्रकार का सामंजस्य प्राप्त हो जाने के बाद ही मानव सृजित कृतियाँ पूर्णता की अवस्था प्राप्त करती हैं - पूर्णता जो सुन्दर है और शाश्वत है। यह उपलब्धि केवल तभी प्राप्त हो सकती है जब आत्मसाक्षात्कार के माध्यम से कलाकार चेतना के चतुर्थ आयाम में हो। यदि मूलाधार चक्र, प्रथम चक्र, पावनता और अबोधिता को प्रतिबिम्बित करता है, तो स्वाधिष्ठान चक्र सौन्दर्य की सृजनात्मकता की अभिव्यक्ति करता है।

अध्याय 14

श्री आदिशक्ति की शक्ति और तीन गुण

आदिशक्ति सर्वशक्तिमान परमात्मा की शक्ति हैं जो अकेली और समन्वित शक्ति हैं। यद्यपि वे सम्पूर्ण और सर्वव्यापी शक्ति के रूप में विद्यमान हैं, परन्तु उनकी अभिव्यक्ति तीन भिन्न शक्तियों के माध्यम से होती है। आदिशक्ति की तीनों शक्तियों को एक दूसरे से पूरी तरह अलग कर पाना सम्भव नहीं है। क्योंकि ये तीनों शक्तियाँ एक ही व्यक्तित्व से सम्बन्धित हैं और उन्हीं के तीन गुणों की अभिव्यक्ति हैं।

इसके अतिरिक्त उनकी शक्ति की अभिव्यक्ति की व्याख्या करना अत्यन्त कठिन कार्य है क्योंकि यह मानव बुद्धि से परे की बात है। उन्हें समझने के लिए मनुष्य के पास बहुत ही सीमित आयुध हैं। इसकी व्याख्या बाँसुरी के माध्यम से की जा सकती है। बाँसुरी में से हवा का एक ही प्रवाह गुज़रता है फिर भी यह सात स्वर उत्पन्न कर सकती है। इसी प्रकार आदिशक्ति की एक ही शक्ति तीन रूपों में व्यक्त होती है और उनका चौथा संघटित रूप तीनों शक्तियों का स्रोत है। प्रणव (रूह, अनहल्क, रुख, ओंकार या पावन रूह) संघटित पूर्ण रूप आदिशक्ति की शक्ति है। इससे हम समझ सकते हैं कि किस प्रकार ॐ (प्रणव) तीन भिन्न रूपों - अ, ऊ और म का संघटन है। ये शक्तियाँ निम्नलिखित हैं :-

- ❋ भौतिक शक्ति
- ❋ जीवन शक्ति
- ❋ धर्मशक्ति

भौतिक शक्ति

महासरस्वती रूप में यह आदिशक्ति की क्रियाशील मनोदशा -

रजोगुण, की अभिव्यक्ति है। वे 'आदि पिंगला नाड़ी' के माध्यम से कार्य करती हैं, ब्रह्मदेव जिसके शासक देवता हैं। इस वाहिका का उद्भव विराट शरीर (Primordial Being) के मस्तिष्क के बाएं भाग से होता है और आदि आज्ञाचक्र के रास्ते यह विराट शरीर की दाईं ओर जाती है। आदि मस्तिष्क (विराट) में ये ब्रह्माण्डीय मस्तिष्क (Universal Mind) की रचना करती है। ये मस्तिष्क सोचता है, आयोजन करता है और सृष्टि के भौतिक पक्ष का सृजन करता है। वानर देवता, हनुमान इस वाहिका पर गतिशील रहते हैं तथा विराट के पूर्वचेतन मस्तिष्क (Preconscious Mind) का प्रतिनिधित्व करते हैं।

महासरस्वती की दाईं वाहिका ब्रह्माण्डों, आकाशगंगाओं और सूर्य, चन्द्र समेत सभी सितारों के सृजन के लिए ज़िम्मेदार है। इस वाहिका पर विराट (आदिपुरुष) की सृजनात्मक गतिविधि के कारण अपसर्जित धुंएं की रचना होती है जो आदि अहंकार (Primordial Ego) कहलाने वाले विराट के मस्तिष्क की बाईं ओर 'आदि सामूहिक अतिचेतन मस्तिष्क' (Primordial Collective Supraconscious Mind) में एकत्र हो जाता है। इसे एक उपमा के माध्यम से बेहतर समझा जा सकता है। ऊर्जा प्रदान करने के लिए जिस उद्योग में ज्वलन (आग जलने की) क्रिया होती है, उससे प्रदूषित धुएं का सृजन होता है। धुएं को बाहर निकलने का यदि कोई रास्ता न मिले तो यह उद्योग के अन्दर ही एकत्र हो जाता है। आदि-पुरुष (विराट) के साथ भी ऐसा ही है, यहाँ बने धुएं को आदिपिंगला नाड़ी के ऊपर 'आदि मस्तिष्क' के बाईं ओर 'आदि अहंकार' पर ले जाया जाता है क्योंकि इसका सृजन इस अपसर्जित धुएं को एकत्रित करने के लिए ही किया गया है। इसी प्रकार आदि मस्तिष्क के दाईं ओर 'आदि प्रतिअहंकार' 'आदि ईड़ा नाड़ी' की गतिविधियों से सृजित धुएं को निष्कासित करता है।

महासरस्वती शक्ति

इस शक्ति द्वारा प्रणव को भौतिक शक्ति में परिवर्तित किया जाता है।

आकाश गंगाओं और सौर परिवार का सृजन करने के लिए आदिशक्ति अण्डाकार वृत्त (वलय के आकार में) यात्रा करती हैं और एक मार्ग बनाती हैं। (देखिए आकृति १)

जैसे आकृति १ में दिखाया गया है, वे अण्डाकार मार्ग पर चलती हैं और बार-बार उसी बिंदु पर लौट आती हैं। कई बार वे वृत्त (वलय) आकार में घूमती हैं और वृत्त पर तब तक घूमती रहती हैं जब तक वृत्त प्रणव से संपिंडित (ठोस) नहीं हो जाता। संपिंडन (ठोस होना) जब परिपूर्णता बिंदु पर पहुँचता है और वृत्त अब इसे अधिक सहन नहीं कर पाता, तो यह विस्फुटित हो जाता है। विस्फुटित होकर यह ठोस पुंज निराली कोणिकताओं वाले टुकड़ों में छिन्न भिन्न हो जाता है। इस प्रकाशमान घूमती हुई शक्ति की गति के संवेग से गोल पुंज के टुकड़े भी समान गति प्राप्त कर लेते हैं और शक्ति के संवेग के साथ घूमने लगते हैं। इन टुकड़ों की कोणिकताएं छोटे-छोटे टुकड़ों में टूट जाती हैं और परिक्रमण तथा घर्षण के कारण वे चिकने और गोल आकार के बन जाते हैं। दोनों का सम्मिश्रण (संयोग) बनाने के लिए मूल अण्डाकार गति और गोलाकार गति परस्पर मिल जाते हैं। इस प्रकार ये गोलाकार पिण्ड सूर्य के मध्य भाग से अण्डाकार गति में उसके चहुँ ओर घूमने लगते हैं।

सूर्य घूमता है, परन्तु यह आदि पिंगला नाड़ी पर स्थिर है। प्रणव की कुण्डलाकार गति से हमारी आकाश गंगाओं का सृजन हुआ। इस प्रकार बहुत बार भिन्न स्तरों और कालों में ब्रह्माण्डों का सृजन और विनाश हुआ।

हमारे परिवार में मानव के सृजन के लिए पृथ्वी को मंच के रूप में चुना गया। पृथ्वी का सृजन और सौर परिवार में इसका स्थापन अत्यन्त मानवीय ढंग से हुआ। आरम्भ में आज जो पृथ्वी है वह सूर्य से टूटी और इसे बहुत दूर, आदि ईड़ा नाड़ी पर स्थापित, चाँद पर ले जाया गया।

इस स्थिति में पृथ्वी बहुत तेज़ी से ठण्डी हो गई और पूरी तरह जम गई।

महासरस्वती की कृपा ने इसे जल से शराबोर कर दिया, या हम कह सकते हैं कि अपने प्रेम के अश्रुजल से उन्होंने ऐसा किया। पुनः इसे सूर्य से कम दूरी की स्थिति में लाया गया ताकि सूर्य किरणें इस उपग्रह की बर्फ़ीली शीतलता को कम कर सकें। जमने पर पृथ्वी आकार में सिकुड़ गई थी और बर्फ़ से पूरी तरह ढक गई थी। सूर्य के बहुत समीप लाए जाने पर बर्फ़ पिघली और जल ने पृथ्वी की पूरी सतह को ढक लिया। जल के नीचे, पृथ्वी के हृदय के अन्तर्निहित लावे ने घूमावदार सतह की रचना की, जैसे कछुए का आवरण होता है, और ऊपर की ओर धकेलकर यह जल से बाहर निकल आया। लावा और गरम गैस का सम्पर्क जब ठण्डे जल से हुआ तो ठण्डी होकर यह कठोर हो गई। लावे ने जब निकलने का प्रयत्न किया और हिम दरारों का सृजन हुआ तो बाद में पृथ्वी के पटल (Crust) की रचना हुई।

इन हिम दरारों में से लावा रिस निकला और इस प्रकार पर्वतों का सृजन हुआ। सूर्य की गरमी के नीचे सिक कर पृथ्वी कठोर हो गई। अब लावे ने ज़ोर मारा और भूमध्य तथा नीचे के गोलार्ध पर पृथ्वी में दरारें उत्पन्न कर दी। पुनः पृथ्वी को चाँद के समीप ले जाया गया और नई बनी बड़ी-बड़ी दरारें बर्फ़ से ढक गईं। गरम और ठण्डा करने की ये प्रक्रिया बहुत बार की गई। इस प्रकार समुद्रों का सृजन किया गया।

तब पृथ्वी को व्यवस्थित कर के सूर्य और चाँद के बीच, सही स्थान पर लाया गया जहाँ जीवन उत्पन्न किया जा सके और कायम रखा जा सके। इसके बहुत बाद में पृथ्वी की जमने और तपने की प्रक्रिया ने जीवन बीज, अमीनो एसिड (amino acids) उत्पन्न किए। समुद्रों के जल में विद्युत चुम्बकीय चैतन्य लहरियों के सूर्य की ऑक्सिजन से सम्मिश्रण से जीवन के अस्तित्व का आरम्भ हुआ। सूर्य की किरणों के कारण विद्युत चुम्बकीय चैतन्य लहरियाँ जीवन की धड़कने (प्राण) बन गईं। पहली बार आदिशक्ति की भौतिक और जीवन की दो शक्तियों ने मिलकर समन्वित ढंग से कार्य किया।

यह जीवन (प्राण) का आरम्भ था, परन्तु जीवन के सृजन के बाद भी पृथ्वी को ऐसी उपयुक्त स्थिति में पुन: व्यवस्थित किया गया जहाँ सूर्य के समीप जीवन चलता रहे और फले-फूले। आदि माँ-श्रीआदिशक्ति ने अपने दिव्य प्रेम और पूर्ण करुणा के साथ यह सुन्दर और कोमल व्यवस्थापन किया।

स्वाधिष्ठान चक्र के अध्याय में स्पष्ट व्याख्या की गई है कि किस प्रकार आदि माँ ने आदि नाभि चक्र से निकले आदि स्वाधिष्ठान चक्र का सृजन किया। आदिविष्णु की नाभि से एक कमल उपजा और इसी कमल के शिखर से आदि ब्रह्मदेव ने जन्म लिया। वे आदि स्वाधिष्ठान चक्र के शासक देव हैं और सृजन की अपनी भूमिका निभाने के लिए वे अपनी ईश्वरी शक्ति का उपयोग करते हैं। यह चक्र भवसागर में घड़ी की सुई की दिशा में गोल गति में झूलता (घूमता) रहता है। जीवन के भौतिक पक्ष की देखभाल करने के ज़िम्मेदार देवता, आदि ब्रह्मदेव, आदिशक्ति की शक्ति के माध्यम से भौतिक पदार्थों का सृजन करते हैं।

स्वाधिष्ठान चक्र के अध्याय में भी उनका विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। मानव में वे भौतिक पदार्थ और इसके सृजन में निहित भौतिक ज्ञान (विज्ञान) और सौन्दर्य बोध (कला) जागृत (अनावृत) करते हैं। विविधता और सामंजस्य के सृजन के माध्यम से वे आदिशक्ति के सौन्दय-बोध की अभिव्यक्ति करते हैं। प्रकृति के सारे सौन्दर्य का सृजन उनके माध्यम से होता है। आदिशक्ति का एक पक्ष (शक्ति) आदि सरस्वती उनकी संगिनी और शक्ति है। वे सम्वेदनशील कलाकृतियों को उत्पन्न करने वाले आध्यात्मिक आनन्द की लहरियाँ स्थापित करने वाले पूर्ण सौन्दर्य-बोध का मूर्तरूप हैं। वे मनुष्यों को भी ज्ञान प्रदान करती हैं और इस प्रकार उन्हें अपने सृजन के सौंदर्य के मूल्य का आकलन करने की आज्ञा देती हैं।

यह झूलता हुआ आदि स्वाधिष्ठान चक्र वृत्ताकार घूमता है, इसका केन्द्र नाभि चक्र पर है। इसके द्वारा वर्णित वृत्त 'आदि भवसागर' (Adi Void)

कहलाता है और पृथ्वी तथा शेष सौर-परिवार समेत पूरा भौतिक ब्रह्माण्ड (Physical Universe) इसमें समाहित है। दो बिन्दुओं पर ये वृत्त भी दो आदि नाड़ियों का प्रतिस्पंदन (काटना) करता है। आदि पिंगला नाड़ी को जहाँ ये वृत्त काटता है वहाँ सूर्य को स्थापित किया गया है और आदि ईड़ा से जिस बिन्दु पर ये गुजरता है उस कटाव पर चाँद को स्थापित किया गया है। इस कारण से पिंगला नाड़ी सूर्य नाड़ी कहलाती है और ईड़ा नाड़ी चन्द्र नाड़ी के नाम से जानी जाती है। क्षीरसागर अवस्था में वे ऊपर की ओर (Vertically) भी गतिमान होती है परन्तु भवसागर में ये केवल संकेन्द्रिक (Concentrically) रूप से चलती हुई दिखाई देती हैं। 'ह' सूर्य है और 'ठ' चन्द्र, अतः हठयोग का अर्थ है इन दो नाड़ियों (वाहिकाओं) का मिलन। तीनों वाहिकाओं पर सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी को इस प्रकार स्थापित किया गया है :-

- नाभि केन्द्र (आदि नाभि चक्र) जहाँ आदि पिंगला नाड़ी को स्पर्श करता है, वहाँ सूर्य को स्थापित किया गया है।
- चन्द्र को 'आदि अनाहत चक्र' (बायें हृदय चक्र) पर स्थापित किया गया है।
- पृथ्वी को कुण्डलिनी के निवास (मूलाधार) के पीछे स्थापित किया गया है।

'आदि-मस्तिष्क' (Primordial Brain) का बायाँ भाग आदि अहंकार का प्रतिनिधित्व करता है। विराट के दाईं ओर आदि पिंगला नाड़ी है जो अतिचेतन मस्तिष्क (Supra-conscious Mind) का सृजन करती है। अहंकार पूर्वक कार्य करने वाले सभी लोगों को मृत्यु के बाद अतिचेतन संस्तर (Plane) पर रखा जाता है। सोचने, योजनाएं बनाने तथा अति की सीमा तक अपने अहंकार की अभिव्यक्ति करने वाले सभी लोग मृत्यु के बाद अतिचेतन मस्तिष्क के क्षेत्र में चले जाते हैं। बहुत अधिक त्याग और अनुशासन में लिप्त हो जाने वाले लोगों में भी अतिचेतन में प्रवेश करने की

शक्तियाँ विकसित हो जाती हैं। मृत्यु के बाद अत्यन्त अहंकारी आत्माओं के रूप में, इस भाग में उनका अस्तित्व बना रहता है। बाह्य रूप से चाहे वे विनम्र प्रतीत हों, परन्तु उनके अन्दर अहंकार भयंकर अनुपात में बढ़ता है। आगे चल कर वे परपीड़न-कामुकों (Sadists) के रूप में जन्म लेते हैं। यदि जन्म न लें तो ये मृत आत्माऐं अहंकारी लोगों में प्रवेश करके उन्हें शक्तियाँ प्रदान करती हैं। ब्रह्माण्डीय (Cosmic) अतिचेतन मस्तिष्क में सात क्षितिजीय संस्तर (Horizontal Strata) हैं और दायीं ओर पिंगला नाड़ी के समानान्तर और ऊपर सात शीर्ष (Vertical) वाहिकाएं (गायत्री, सावित्री आदि) हैं। योग मार्ग अपना कर साधक जब साधना के प्रयास करता है तो वह अतिचेतन मस्तिष्क पर चला जाता है। किसी सद्गुरु के मार्गदर्शन में ऐसा साधक यदि कृत्रिम सभ्यता से दूर, जंगल में साधना करता रहे तो वह बहुत सी बुलन्दियों पर पहुँच सकता है। परन्तु इसमें वर्षों लगते हैं। यह प्रलोभनों की बाधाओं से परिपूर्ण मार्ग है। जैसे पुस्तक में वर्णन किया जा चुका है, हठयोग और राजयोग की विधियों में इस बाधाओं से भरे मार्ग से गुज़रना पड़ता है।

अहंकारी आत्माएं, जो जन्म नहीं लेतीं, इन नकली हठयोगियों और दिखावे के राजयोगियों के मस्तिष्क में प्रवेश करके उन पर नियन्त्रण कर लेती हैं। वे इन्हें सिद्धियाँ कहलाने वाली शक्तियाँ प्रदान करती है और इन मृत-आत्माओं की सहायता से ये लोग कार्यान्वयन (materialization) की धूर्तता (चालाकियों) का प्रदर्शन करते हैं जैसे सोना या भस्म आदि भौतिक पदार्थ बना देना या इनका स्थानान्तरण कर देना आदि। सिद्धियों वाले लोग आत्मसाक्षात्कारी नहीं होते। उन्हें आत्मसाक्षात्कार देना भी बहुत कठिन होता है। अधिकतर, उनके गुरु विकास प्रक्रिया से बाहर फेंके गए राक्षस होते हैं। बहुत ही कम लोग हैं जो वास्तव में सिद्ध (महान आत्मा) हैं।

परमात्मसाक्षात्कार की अवस्था तक पहुँचने वाले आत्मसाक्षात्कारी जिन्हें ब्रह्मदेव अपनी शक्तियाँ प्रदान करते हैं, बहुत ही बिरले (कम) हैं और

वे अपने करतबों और सिद्धियों का कभी प्रदर्शन नहीं करते क्योंकि उनके लिए ये शक्तियाँ बहुत अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं। इनमें श्री हनुमान और ईसामसीह जैसे देवता भी सम्मिलित हैं। अपने स्वभाव के एक अंश के रूप में उन्हें ये शक्तियाँ प्राप्त होती हैं और ब्रह्मदेव की कृपा से, इनके माध्यम से वे सूर्य, वर्षा और अन्य तत्वों को नियन्त्रित करते हैं।

इन देहविहीन आत्माओं की सहायता से हवा में उड़ना, जल पर चलना, पृथ्वी में दबे रहना, सूर्योदय को रोक देना या समुद्रों के जल को पी जाना आदि करतब भी किए जा सकते हैं। सच्चे सिद्धों और ढोंगियों में अन्तर करना आसान है। सिद्ध पुरुष अपनी शक्तियों का उपयोग अपनी बेहतरी, लोकप्रियता या भौतिक स्मृद्धि के लिए नहीं करते।

जो आत्मसाक्षात्कारी नहीं हैं वो ढोंगी हैं और वही मृत आत्माओं की सिद्धियों का उपयोग करतब दिखाने के लिए करते हैं। कुछ बहुत ही शक्तिशाली और समर्पित पत्नियाँ (पतिव्रताएं) भी हैं जिन्होंने अपने पतियों के लिए जिद्दपूर्ण स्वार्थी प्रेम की अभिव्यक्ति द्वारा ऐसी शक्तियाँ प्राप्त कर ली हैं। कुछ आत्मसाक्षात्कारी लोगों के अतिरिक्त बाकी सब अपनी उद्देश्य पूर्ति के लिए अतिचेतनक्षेत्र की आत्माओं की सहायता लेते हैं। पिंगला नाड़ी को कार्यान्वित करके अहंकार को बढ़ाने के लिए वे अपनी पूरी शक्ति का उपयोग करते हैं। शनैः शनैः उनमें भावनाओं का अन्त हो जाता है और शुष्क स्वभाव हो कर वे अन्य लोगों के अभिशप्त करने और भस्मीसात करने तक की क्षमता भी प्राप्त कर लेते हैं। ईश्वरी-प्रेम को समझने का विवेक उनमें नहीं रह जाता। इस प्रकार के एकपक्षीय अमानवीय दृष्टिकोण से आत्मसाक्षात्कार प्राप्त कर पाना बहुत ही कठिन है। ऐसे अधिकतर लोग अन्ततः शैतानी स्वभाव के बन जाते हैं। त्याग वृत्ति का कठोरतापूर्वक पालन करने वालों में से बहुत कम ही मोक्ष पा सकते हैं। प्रेम के माध्यम से सन्तुलित त्याग करने वाले लोगों की ही रक्षा हो सकती है। ऐसे लोग बहुत ही कम हैं। वे ही सच्चे योगी हैं

क्योंकि जंगलों में रह कर वे अपनी शक्तियाँ सुरक्षित रखते हैं। प्रकृति माँ के समीप रह कर, अपने गुरु के मार्गदर्शन में वे हठयोग के छ: नियमों का पालन करते हैं।

विवाहित लोगों के लिए हठयोग और राजयोग वर्जित हैं क्योंकि अनुयायिओं को इस कठोर मार्ग का अनुसरण करने के लिए अपनी पूरी ऊर्जा समर्पित करनी पड़ती है। उन्हें ऐसे गुरु का मार्गदर्शन प्राप्त होना चाहिए जो आत्मसाक्षात्कारी हो, अत्यन्त पवित्र और स्नेहमय जीवन व्यतीत करता हो तथा अपने शिष्यों से धन न लेता हो। सच्चे योगी आदिशक्ति की भिन्न रूपों में पूजा करते हैं। गुरु, जो स्वयं विकसित आत्मा हो और जो अपने शिष्यों से प्रेम और सावधानी पूर्वक व्यवहार करे वही उनके भावनात्मक पक्ष का पोषण कर सकता है। पूर्ण समर्पण के बावजूद भी इस मार्ग के साधक हज़ारों वर्षों तक घिसटते रहते हैं। अन्त में, तंग आकर, वे स्वत: सहजयोग के प्रति समर्पित हो जाते हैं। सहजयोग, प्रणव की सर्वव्यवापी शक्ति के माध्यम से, उनमें आदिशक्ति की कृपा प्रसारित करता है। इस मार्ग से पूर्ण शुद्धिकरण करके जिन योगियों ने आत्मसाक्षात्कार प्राप्त किया है उनकी संख्या बहुत कम है परन्तु वे उच्च गुणवत्ता के योगी हैं।

हठयोग में साधक कठोर त्याग द्वारा शरीर और मन को स्वच्छ करता है, जब कि सहजयोग में साधक पर चैतन्य लहरियों की कृपा होती है और चैतन्य लहरियों से ही उसका शुद्धिकरण होता है तथा शुद्धिकरण को गति प्राप्त होती है। यह बिल्कुल वैसा ही है जैसे अपने गन्तव्य तक पैदल चलना या पैदल चलने पर लगे समय के एक छोटे से भाग में कार द्वारा अपनी यात्रा को पूर्ण कर लेना।

अतिचेतन आत्माएं विराट के शरीर के दाएं भाग में पाई जा सकती हैं। ये आत्माएं मृत्यु के बाद वहाँ जाती है और बार-बार पृथ्वी पर जन्म लेती रहती है। उनमें से कुछ दूसरी ओर की अति में जाकर बाईं वाहिका के जीवन

को अपना लेती हैं। इस वाहिका पर कार्य करते रहने वाले अतिचेतन व्यक्तियों को बाद में सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं जिन्हें वे अपने भौतिक लाभ के लिए उपयोग करते हैं। ऐसे अति वाले लोग विकास प्रक्रिया से निकलकर नरक में जा गिरते हैं। उनमें क्योंकि न तो कोई धर्म होता है और न चक्रों का शासक कोई देवी-देवता, वे पुनः राक्षसों के रूप में जन्म लेते हैं। सर्वशक्तिमान परमात्मा की योजना से बाहर स्वच्छन्द कार्य करने के कारण वे अहंकारी और विषाक्त (Malignant) हो जाते हैं और कई बार तो स्वयं को परमात्मा के बन्दे बताते हैं। वे झूठे वायदे करते हैं परन्तु कोई भी ज़िम्मेदारी नहीं उठाते।

जीवन (अस्तित्व) शक्ति

यह शक्ति आदिशक्ति की उनके महाकाली पक्ष में इच्छा-तमोगुण- की शक्ति है। इस शक्ति द्वारा प्रणव को जीवन-शक्ति में परिवर्तित किया जाता है। यह आदिशक्ति की सृजन की इच्छा की अभिव्यक्ति है। 'इच्छा' का अर्थ है कि यह बिना कोई मूर्त रूप लिए आदिशक्ति के हृदय में जन्म लेती है। ये कहा जा सकता है कि अभी तक यह अभिव्यक्ति के प्रकाश में नहीं आई। इसलिए इसे अन्धकार मनोदशा (तमोगुण) के नाम से जाना जाता है। 'इच्छा' आदिशक्ति के ईश्वरी प्रेम का भाव है, जो उन्हें सृजन-भाव प्रदान करता है। तो यह आदिशक्ति की भावनात्मक अभिव्यक्ति है, जो महाकाली शक्ति कहलाती है। कालक्रमानुसार कार्यान्वित होने वाला यह प्रथम गुण है।

महाकाली वाहिका (आदि ईड़ा नाड़ी) आदि मस्तिष्क के दाईं ओर से आरम्भ होती है और 'आदि आज्ञा चक्र' को काटती हुई 'आदि हृदय' के पास से गुज़र कर, मनुष्य में श्रोणीय केन्द्र को नियन्त्रित करने वाले आदि मूलाधार चक्र तक जाती है। आदि मूलाधार चक्र का एक उपकेन्द्र (पंखुडी) मानव में यौनभावों का नियन्त्रण करता है। यह वाहिका विराट के 'आदि-सामूहिक-अवचेतन-मस्तिष्क' का प्रतिनिधित्व करती है। भगवान शिव इसके शासक देवता हैं और उनका स्थान (आदि ईड़ा नाड़ी) जीवन वाहिका का नियन्त्रण

करने वाले 'आदि अनाहत चक्र' के बायें कक्ष में हैं। आदि अनाहत चक्र मानव में हृदय केन्द्र (Cardiac Plexus) का नियन्त्रण करता है। इस वाहिका की गतिविधि से निकलने वाला धुआँ (भभक) (Fumes) विराट के मस्तिष्क में एकत्र होता है और 'आदि-प्रति-अहंकार' की रचना करता है। पृथ्वी पर मृत्यु पाने वाली हर चीज़ 'आदि प्रति अहंकार' के माध्यम से आदि सामूहिक अवचेतन मस्तिष्क में एकत्र हो जाती है। 'आदि-सामूहिक-अवचेतन-मस्तिष्क' विराट के बाईं ओर स्थित है। मृत्यु होने पर सभी मनुष्य, पशु और अनुभव इस क्षेत्र में चले जाते हैं।

हृदय अवयव पर भगवान शिव का नियन्त्रण है और सदाशिव रूप में यह सर्वशक्तिमान परमात्मा का 'साक्षी पक्ष' है। वे परमात्मा के इरादों के प्रति पूरी तरह चेतन हैं। विराट के शरीर में आदि पुरुष का हृदय जीवन्त वलय है। यह ईश्वरी (साक्षी) शक्ति को साढ़ेतीन कुण्डलों की लहरों में प्रसारित करता है। सर्वशक्तिमान परमात्मा की उपस्थिति से जब तक हृदय निरन्तर धड़कता रहता है सृष्टि का अस्तित्व बना रहता है। सृजन के खेल को परमात्मा जब समाप्त करना चाहते हैं तो 'आदि हृदय' की धड़कन को बन्द करके इसे नष्ट करना भगवान शिव का कार्य है। शिव के क्रोध की अभिव्यक्ति करने वाले भयानक तांडव नृत्य से शिव पूरी सृष्टि समाप्त कर सकते हैं। अपने क्रोध द्वारा वे सुई के कांटे की उल्टी दिशा में लहरियाँ प्रसारित करते हैं और जब ऐसा होता है तो विराट का शरीर विघटित (विलय) हो जाता है।

महाकाली शक्ति

भगवान शिव हृदय (अवयव) के शासक हैं और वे संसार (जीवन्त संसार) की देहविहीन (मृत) आत्माओं के आक्रमण से रक्षा करते हैं। उनकी संगिनी और शक्ति पार्वती कई बार 'आदि अनाहत चक्र' के मध्य कक्ष में चली जाती हैं। सन्तों को परेशान करने तथा उनकी हत्या करने वाले राक्षसों का वध करने के लिए प्राय: उन्होंने भवसागर की रिक्ति (Void) में अवतरण

लिए हैं। 'आदि-अवचेतन-मस्तिष्क' की रचना कई क्षितिजीय (Horizontally) गतिशील वाहिकाओं से हुई हैं। ये सात संस्तरों के मृत-क्षेत्र (परलोक) का सृजन करती हैं जहाँ मृत आत्माएं तब तक निवास करती हैं जब तक वे पृथ्वी पर पुनः जन्म नहीं ले लेतीं। कर्मों के अनुरूप इन्हें इन संस्तरों में रखा जाता है। इन वाहिकाओं की कई समानान्तर उपवाहिकाएं भी हैं जो हस्थी, डाकिनी, राकिनी, शाकिनी आदि नामों से प्रसिद्ध हैं। अतः वहाँ एकत्र हुए पूर्वजीवनों तथा पूर्वअनुभवों का एक विशाल तन्त्र है।

इस वाहिका पर महाकाल रूप में भगवान शिव द्वारा की जाने वाली आदिपुरुष (Primordial Being) की गतिविधि से धुएं का सृजन होता है, जो आदि मस्तिष्क के दाईं ओर 'आदि प्रतिअहंकार' में एकत्र हो जाता है। यह विराट शरीर के बाएं भाग में स्थित 'आदि सामूहिक अवचेतन मस्तिष्क' से जुड़ा हुआ है। अतः 'आदि मस्तिष्क' का बायाँ भाग 'आदि अतिचेतन मस्तिष्क' से ढका हुआ है और 'आदि अहंकार' का प्रतिनिधित्व करता है, जब कि 'आदि मस्तिष्क' का दायाँ भाग 'आदि अवचेतन मस्तिष्क' से आच्छादित है जो विराट के 'आदि प्रति अहंकार' का प्रतिनिधित्व करता है।

पृथ्वी पर मृत्यु पा कर, अकर्मण्यता और आलस्य लिप्त सभी देहविहीन आत्माएं आदि सामूहिक अवचेतन मस्तिष्क में समाहित हो जाती हैं। विकृत यौनाचार, नशे और शराब में लिप्त रहनेवाली आत्माओं को मृत्यु के बाद भैरव (सेंट माइकल) आदि ईड़ा नाड़ी के बाईं ओर के आखरी किनारे पर फेंक देते हैं। वे भगवान शिव के सहयोगी हैं और चन्द्रवाहिका के लिए जिम्मेदार हैं। ये अपराधी लोग बार-बार जन्म लेते हैं और सुधरने के लिए और इन लिप्साओं की दासता से मुक्ति पाने के लिए इन्हें एक के बाद एक अवसर दिया जाता है।

परन्तु परमात्माविरोधी गतिविधियों में निरन्तर लिप्त रहने वाली आत्माएं दल-दल में गहरी धंसती चली जाती हैं। परमात्मा की मर्यादाओं का

पालन न करके, विराट से सम्बन्ध तोड़ कर स्वच्छन्द रूप से कार्य करने वाली आत्माएं विषाक्त (Malignant) हो जाती हैं। अन्तत: उन्हें नरक में डाल दिया जाता है और वे शैतानी और भ्रष्ट व्यक्तियों के रूप में जन्म लेती हैं। वे अपनी कुण्डलिनी खो देती हैं और उनमें आत्मा भी नहीं होती। ऐसे लोग यदि अहंकारी मूल के हों तो ये अक्खड़ और अपनी डींग मारने वाले होते हैं और यदि ये 'अन्तरिक्षीय अवचेतन क्षेत्र' (Cosmic Subconscious Realm) के हों तो अत्यन्त चालाक और धूर्त होते हैं। अन्य लोगों के मानस (Psyche) में प्रवेश करके ये अपनी तरह की लिप्साओं का आनन्द लेने वालों को भूतबाधित करते हैं। ये लोग काली विद्या और तान्त्रिकता-विज्ञान में भी कुशल होते हैं।

कलियुग में ऐसी बहुत सी भ्रष्ट और राक्षसी आत्माओं ने जन्म ले लिया है और मनुष्यों को फुसला और सम्मोहित करके उन्हें अपने शिकंजे में लेने के लिए ये नाना प्रकार के भौतिक चमत्कारों का प्रदर्शन करते हैं। यद्यपि वे स्वयं को सन्त और परमात्मा के बन्दे दर्शाते हैं परन्तु उनका मुख्य लक्ष्य महिलाएं और पैसा होता है। वे शराब का खुला उपयोग करते हैं और अपने शिष्यों में स्वच्छन्द संभोग की वकालत करते हैं। आसुरी साम्राज्य स्थापित करने के उद्देश्य से वे पृथ्वी पर आते हैं। पकड़ में आए लोगों के अहं और प्रति अहं पर वे नियन्त्रण कर लेते हैं। निम्नलिखित तीन मार्गों के माध्यम से वे अपने प्रवेश का रास्ता खोजते हैं :

१. सम्भोग के माध्यम से मूलाधार चक्र में प्रवेश का मार्ग

२. भोजन या पदार्थों के माध्यम से नाभि चक्र में प्रवेश का मार्ग

३. आँखों से प्रेम खिलवाड़ करके आज्ञा चक्र में प्रवेश का मार्ग

वे किसी भी चक्र पर स्थापित होकर शारीरिक या मानसिक हानि पहुँचा सकते हैं। प्रभावित व्यक्ति किसी न किसी प्रकार की अति की ओर चला

जाता है। आधुनिक समय में टूटते हुए समाज और धाराशायी होते हुए मानवीय मूल्यों के फलस्वरूप इनका प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है।

ऐसे लोगों के लिए ब्रह्मा, विष्णु और महेश के त्रिमूर्ति रूप, श्री दत्तात्रेय ने नरक का सृजन किया था। विराट के शरीर के बाहर श्रीगणेश की सूंड के निचले भाग में इस क्षेत्र का प्रक्षेपण किया गया है। नरक के सात संस्तर हैं और हर संस्तर में सात स्तर हैं। बहुत से धर्मग्रन्थों में इनका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वहाँ रहने वाले बहुत से राक्षसों ने शिव या ब्रह्मदेव को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया और कुछ वरदान प्राप्त कर लिए। इन वरदानों से उन्हें विशेष शक्तियाँ मिल गईं। परलोक 'आदि ईड़ा नाड़ी' वाहिका के नीचे स्थित है, परन्तु नरक (नरक लोक) 'आदि मूलाधार चक्र' के ठीक नीचे मध्य में है। नरक के पात्र 'ब्रह्माण्डीय-सामूहिक-अवचेतन-मस्तिष्क' (प्रेतलोक) और 'ब्रह्माण्डीय सामूहिक-पूर्व-चेतन-मस्तिष्क' (परलोक) का कष्ट भोगते हैं। अपनी सूंड से फुंफकार कर श्रीगणेश सभी अहंकारी और धूर्त लोगों को नरक में धकेल देते हैं। उनकी फुंफकार के लिए उपयोग की गई शक्ति की मात्रा इस बात का निर्णय करती है कि हर राक्षस को नरक के कौन से क्षेत्र में निवास करना है।

धर्मशक्ति

धर्म की शक्ति महालक्ष्मी रूप में आदिशक्ति की रहस्योद्घाटक मनोदशा - सत्वगुण - की अभिव्यक्ति है। अपने स्नेह एवं प्रेम से वे पदार्थ को रूप और गुण प्रदान करती हैं। ये ऐसा है मानो उनका आश्वस्त करने वाला प्रेम, अपने धर्म के माध्यम से, पदार्थ को अपने सारे गुणों को एक साथ बनाए रखने पर बल दे रहा हो, बिल्कुल वैसे ही जैसे सोने का डला करती है। यह पीले रंग की है, चमकती है और इसके अपने विशेष गुण होते हैं। आवश्यक नहीं कि हर पीली या चमकने वाली चीज़ सोना हो, परन्तु वास्तविक सोना तो सोना है। सोने पर दाग न पड़ना ही सोने का धर्म है।

महालक्ष्मी शक्ति

महालक्ष्मी के मध्यमार्ग (आदि-सुषुम्ना नाड़ी) पर आदिशक्ति आदि सत्व गुण (रहस्योद्घाटक मनोदशा) की अभिव्यक्ति करती हैं। यह सारे पदार्थ-पुंजों में गुरुत्वाकर्षण केन्द्र के माध्यम से कार्य करता है, जब कि प्रणव की सर्व-समन्वयन-शक्ति भौतिक अभिव्यक्ति की धुरी के माध्यम से कार्य करती है। सजीव अस्तित्व में भी धर्म शरीर की मध्य धुरी के माध्यम से कार्य करता है। विराट के शरीर में यह नाभि केन्द्र -आदिनाभि चक्र - के माध्यम से कार्य करता है।

भौतिक पक्ष, पदार्थ का स्थूल (जड़) भाग है। दिव्य शक्ति, प्रणव, आदिशक्ति की एकमेव समन्वित शक्ति है। उनकी तीनों शक्तियाँ सभी सजीव और निर्जीव अस्तित्वों में विद्यमान हैं, परन्तु धर्म की संयोजक ऊर्जा (Sythesising Energy) छिपी रहती है। यद्यपि प्रणव अपनी कार्यान्वयन क्षमता की अभिव्यक्ति करता है और पदार्थ में केवल भौतिक शक्ति के रूप में व्यक्त होता है, प्रणव के दो अन्य पक्ष पदार्थ के हर कण में सुप्तावस्था में बने रहते हैं - अस्तित्व (जीवन) और धर्म के रूप में। अस्तित्व को विद्युत चुम्बकीय शक्ति के रूप में महसूस किया जाता है और सभी जीवधारियों में इसकी प्राण रूप में अभिव्यक्ति होती है। हर तत्व को व्यक्तिगत गुण प्रदान करने में धर्म की अभिव्यक्ति होती है। समन्वित शक्ति (प्रणव) के स्रोत को गुरुत्वाकर्षण के केन्द्र या गुरुत्वरेखा के साथ-साथ पदार्थ के हर कण में स्थापित किया गया है। पदार्थ का सूक्ष्म भाग वह शक्ति है, जो पदार्थ के अन्दर, इसके केन्द्र में स्थापित की गयी आत्मा की साक्षी शक्ति के रूप में विद्यमान है। विकास प्रक्रिया के माध्यम से धीरे-धीरे सूक्ष्म सुस्पष्ट और गतिशील हो जाता है। केवल मनुष्यों में आत्मारूप में सूक्ष्म पूर्ण रूप से अभिव्यक्त है। यह हृदयचक्र में स्थापित है परन्तु केवल आत्मसाक्षात्कार के बाद ही साधक इसकी अनुभूति कर सकता है। अत: परमात्मा के ये तीन पक्ष

हैं आदि पुरुष में जिनका प्रतिनिधित्व होता है। चौथा पक्ष सर्वशक्तिमान परमात्मा (परमेश्वर) की समन्वित शक्ति है जिसे महाआदिपुरुष (विराट) के शिखर पर स्थापित किया गया है। आदि पुरुष परमात्मा का मानचित्र (प्रक्षेपण) है जो कभी अवतरित नहीं होता परन्तु अपनी शक्ति (आदिशक्ति) की लीला का साक्षी बनकर सर्वव्याप्त, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान रूप में वैकुण्ठ अवस्था में विद्यमान रहता है।

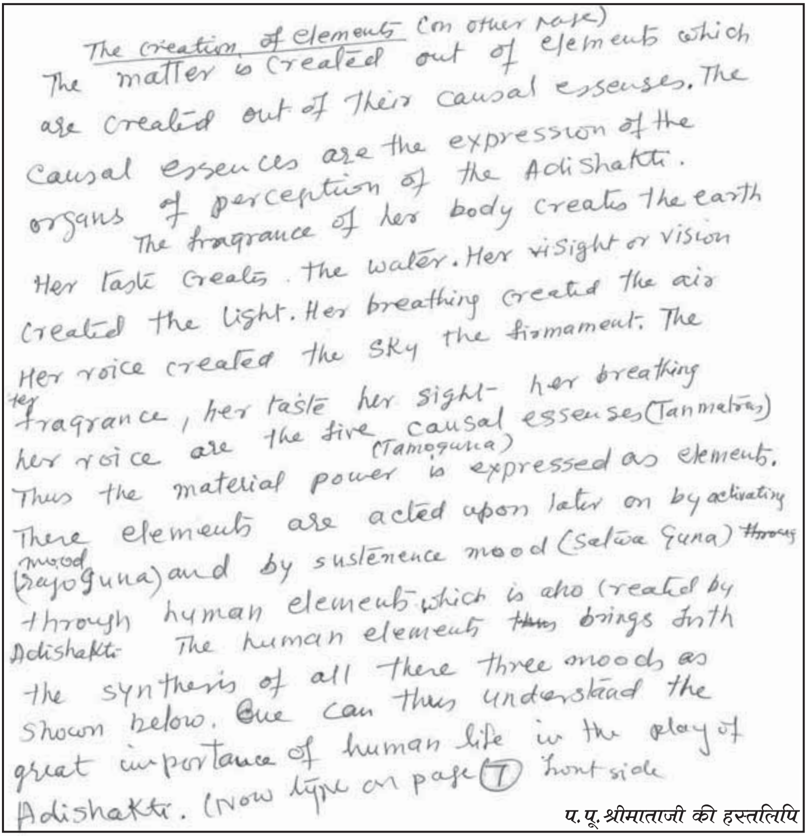
The creation of elements (on other page)
The matter is created out of elements which
are created out of their causal essenses. The
causal essences are the expression of the
organs of perception of the Adishakti.
The fragrance of her body creates the earth
Her taste creates the water. Her sight or vision
created the light. Her breathing created the air
Her voice created the sky the firmament. The
her fragrance, her taste her sight- her breathing
her voice are the five causal essenses (Tanmatras)
Thus the material power (Tamoguna) is expressed as elements.
These elements are acted upon later on by activating
mood (Rajoguna) and by sustenence mood (Satwa Guna) through
human elements which is also created by Adishakti
The human elements ~~thus~~ brings forth
the synthesis of all these three moods as
shown below. One can thus understand the
great importance of human life in the play of
Adishakti. (Now type on page (T) front side

प.पू.श्रीमाताजी की हस्तलिपि

तत्वों का सृजन

पदार्थ का सृजन तत्वों में से किया जाता है और तत्वों की रचना उनके

कारणात्मक तत्वों (सार) से होती है। कारणात्मक तत्व आदिशक्ति की ज्ञानेन्द्रियों (Organs of Perception) की अभिव्यक्ति हैं :

- ❊ उनके शरीर की सुगन्ध ने पृथ्वी का सृजन किया।
- ❊ रस (स्वाद) ने जल का सृजन किया।
- ❊ उनकी दृष्टि के कटाक्ष (Sight of vision) ने प्रकाश या अग्नि का सृजन किया।
- ❊ उनके प्रकाश ने वायु का सृजन किया।
- ❊ उनकी आवाज़ ने आकाश (नभ) का सृजन किया।

उनकी सुगन्ध, रस (स्वाद), दृष्टि, श्वास और आवाज़ (स्वर) पाँच कारणात्मक तत्व (तन्मात्राएं) हैं जिनके माध्यम से, तत्वों की रचना द्वारा उनकी भौतिक शक्ति की अभिव्यक्ति होती है। बाद में आदिशक्ति द्वारा सृजित मानवीय तत्वों के माध्यम से, इन तत्वों पर गुण कार्य करते हैं। जैसे आगे विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है, ये मानवीय तत्व इन तीनों गुणों का संयोजन करते हैं। इससे आदिशक्ति की लीला में मानव जीवन का महान महत्व स्पष्ट होता है।

पृथ्वी (धरा) तत्व

सुगन्ध के कारणात्मक तत्व से पृथ्वी तत्व का सृजन किया गया है। पृथ्वी का शरीर भौतिक शक्ति की अभिव्यक्ति है। पृथ्वी का धुरी पर घूमना और गुरुत्वाकर्षण शक्तियाँ गतिशील मनोदशा या रजोगुण के प्रभाव से घटित होता है। पृथ्वी की धर्म शक्ति (सत्वगुण) इसके सभी निवासियों के धारक के रूप में अभिव्यक्त होती है। उनके धारक रूप की अभिव्यक्ति उनकी चुम्बकीय धुरी के माध्यम से होती है। इसलिए संस्कृत में पृथ्वी माँ को 'धरा' कहा गया है। चुम्बकीय शक्तियों की अभिव्यक्ति इतने सूक्ष्म ढंग से होती है कि केवल कवि ही इनका वर्णन कर सकते हैं। प्रणव की सर्व-समन्वयन-शक्ति की

अभिव्यक्ति पृथ्वी की सुगन्ध से होती है। जब कि पृथ्वी माँ स्वयं को सभी प्रकार की वनस्पति के रूप में अभिव्यक्त करती हैं। प्रणव की अभिव्यक्ति सभी फूलों की सुगन्ध के रूप में होती है। सुगन्ध के कारणात्मक तत्व की अभिव्यक्ति, अन्ततः पृथ्वी माँ के माध्यम से होती है, विशेष रूप से मधुमक्खियों को आकर्षित करने वाले फूलों से। मधुमक्खियाँ फूलों से प्रेम करती हैं और पराग एकत्र करने के अपने कार्य में कोमलता बनाए रखने के लिए बहुत सावधान रहती हैं।

सुगन्ध महत्वपूर्णतम तत्व है, जो एक व्यक्ति को दूसरे की ओर आकर्षित करता है और प्रेम को आकर्षित करने और इसकी अभिव्यक्ति करने के लिए उपयोग होता है। आमतौर पर मनुष्य बनावटी इत्र, परफ़्यूम और गुलदस्ते आदि उपयोग करके आकर्षित करने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु ईश्वरी प्रेम प्रसारित करने वाले आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति को इस निम्नस्तर तक जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। अपनी चुम्बकीय शक्ति के माध्यम से आदिशक्ति भिन्न तत्वों के कणों को व्यवस्थित करती हैं। मनुष्य पदार्थ को चुम्बकीय शक्ति, प्रकाश और विद्युत या इसके विपरीत भौतिक शक्ति में परिवर्तित कर सकता है। परन्तु विद्युत को प्रेम में परिवर्तित नहीं किया जा सकता, यद्यपि जब कुण्डलिनी उठती है तो सहजयोग इस समन्वयता का सृजन कर सकता है। जब यह घटना घटित होती है, तो साधक के शरीर से निकली हुई फूलों की मधुर सुगन्ध और महक की अनुभूति की जा सकती है। यह सामन्जस्य पृथ्वी तत्व के उस कारणात्मक तत्व की अभिव्यक्ति करता है, जो सभी मनुष्यों में विद्यमान है तथा जिससे मूलाधार चक्र बना है।

जल तत्व

सृजित तत्वों में दूसरा, जल तत्व, आदिशक्ति के स्वाद के कारणात्मक तत्व से बनाया गया। यह रस कहलाता है। अन्य सभी तत्वों की तरह ये भी दूसरों पर कार्य करता है। उदाहरण के रूप में, इसे एक नया गुण 'चमक' प्रदान

करने के लिए प्रकाश इस पर कार्य करता है। तमोगुण की इच्छा मनोदशा जब इस तत्व पर कार्य करती है, तो समुद्रों, नदियों और कुँओं के सामान्य जल के रूप में इसकी अभिव्यक्ति होती है। परन्तु 'रजोगुण' की गतिशील मनोदशा इस पर कार्य करती है, तो वाष्प बने जल से यह वर्षा और बर्फ़ में परिवर्तित हो जाता है। गर्म करने या जमाने आदि अन्य गतिविधियों से जल वाष्प या बर्फ़ में परिवर्तित हो जाता है। सत्वगुण की धारक (धर्म) शक्ति जब इस पर कार्य करती है, तो जल को सजीव बना देती है, जैसे जिह्वा पर स्वाद, पाचन प्रणाली के सार (रस), रक्त का तीखा खारा स्वाद, वीर्य की गुणवत्ता और शरीर को ठण्डा, कोमल, लचीला, सुडौल और सुन्दर बनाने वाला पसीना। शुद्धिकरण का गुण जल की धारक (धर्म) शक्ति का मुख्य लक्षण है। जब प्रणव इस पर कार्य करता है, तो सामान्य जल को एक नया आयाम प्रदान करता है। दिव्य चैतन्य लहरियों के माध्यम से आशीर्वादित हो जाने पर वही जल व्यक्ति को पावनता प्रदान कर सकता है। दिव्य जल प्रवाहित करने वाली गंगा नदी राधा और कृष्ण के प्रेम की अभिव्यक्ति है। इसमें इतनी दिव्य चैतन्य लहरियाँ हैं। किसी बोतल में गंगा जल भर कर यदि तीन महीनों के लिए भी छोड़ दें तो उसमें अन्य जल की तरह कीटाणु उत्पन्न नहीं होंगे। बोतल का जल ज्यों का त्यों स्वच्छ और पारदर्शी बना रहेगा।

आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति द्वारा चैतन्यित किए जाने पर जल रोगनाशक गुण सम्पन्न हो जाता है। अधिकतर यह सूर्य केन्द्र को नियन्त्रित करने वाले नाभि चक्र की अतिक्रियाशीलता के कारण उत्पन्न होने वाले रोगों से मुक्ति प्रदान करता है। इस जल से पेट के सभी रोग दूर किए जा सकते हैं क्योंकि नाभि चक्र का सृजन जल तत्व से ही हुआ है। बाप्तिस्मा (साक्षात्कार) के लिए जॉन द बैप्टिस्ट (John The Baptist) ने जल का उद्योग किया था। वे क्योंकि सच्चे महान आत्मसाक्षात्कारी थे इसलिए उनके चरणों के स्पर्श ने जॉर्डन नदी को चैतन्यित कर दिया और उन्होंने इस जल का उपयोग उन लोगों

की कुण्डलिनी जागृत करने के लिए किया जो उनके पास साक्षात्कार के लिए आए।

झरने के जल से H2O परमाणुओं के दो अणुओं को आक्सीजन और हाइड्रोजन गैस में अलग करके विद्युत चार्ज एकत्र किया जा सकता है। वास्तव में आक्सीजन और हाइड्रोजन को बांधनेवाले विद्युत चार्ज की अभिव्यक्ति विद्युत शक्ति के रूप में होती है। यद्यपि जल विद्युत का सृजन करता है, बिजली आक्सीजन और हाइड्रोजन को पानी में परिवर्तित कर सकती है। परन्तु विद्युत को सोचने और प्रेम करने वाले प्रणव में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। पानी यदि किसी आत्मसाक्षात्कारी की दिव्य चैतन्य लहरियों से चैतन्यित किया गया हो, तो यह सोच सकता है और प्रेम भी कर सकता है। कोई राक्षसी प्रवृत्ति का व्यक्ति यदि इस जल को पी ले तो उसे उल्टी हो जाएगी और यदि कोई सन्त इसे पीएगा तो उसके पेट के रोग समाप्त हो पाएंगे। कुण्डलिनी जागृति होते हुए साधक का चित् समन्वयन प्रक्रिया में खिंचता है और सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होता चला जाता है। यह इतनी सूक्ष्म शक्ति बन जाता है कि इससे प्रकाश, विद्युत, स्वर, चुम्बकीय या जलचलित (Magnetism or Hydraulic) शक्ति की अभिव्यक्ति होती है।

प्रकाश / अग्नि तत्व

प्रकाश या अग्नि तत्व का सृजन आदिशक्ति की दृष्टि के कारणात्मक तत्व से होता है। अतः आदिशक्ति की दृष्टि अग्नि का कारणात्मक तत्व है। तमोगुण की 'इच्छा- मनोदशा' के प्रभाव में अग्नि वह ऊर्जा बन जाती है, जो लकड़ी या कोयले को राख कर सकती है। पृथ्वी के शरीर के अन्दर विद्यमान अग्नि भी तमोगुण से प्रभावित है और इसी के कारण भूकम्प आते हैं। रजोगुण की क्रियाशील मनोदशा के प्रभाव से अग्नि को भट्टी की अग्नि के रूप में खाना बनाने या गरम करने की मानवीय गतिविधियों के लिए उपयोग किया जा सकता है। सत्व गुण की रहस्योद्घाटक मनोदशा की अभिव्यक्ति सजीव

वस्तुओं के शरीर की ऊर्जा के रूप में होती है, जैसे तापमान या ज्वर (बुखार)। प्रणव जब अग्नि तत्व को आशीर्वादित करता है, तो यह पावन अग्नि बन जाती है। चर्च की मोमबत्तियों, मस्जिद की अगरबत्तियों, पारसी अग्नि मन्दिरों में पूजी जानेवाली पावन अग्नि या ऐसे मन्दिर जहाँ आत्मसाक्षात्कारी लोग मिलकर ध्यान धारणा करते हैं, के प्रकाश या अग्नि में अद्‌भुत चैतन्य लहरियाँ होती हैं। ये अग्नियाँ और प्रकाश दिव्य चैतन्य लहरियाँ प्रसारित करते हैं। भिन्न अस्त्रों (अग्निबाण) जिनका उपयोग प्राचीनकाल में राक्षसों का वध करने के लिए किया गया, में यही दिव्य अग्नि थी। आत्मसाक्षात्कारी व्यक्तियों (आत्मजों) के घरों की रसोइयों या ध्यानकक्षों में जलने वाली अग्नियाँ भी पावन अग्नियाँ होती है क्योंकि इन योगियों की नकारात्मक चैतन्य लहरियों को ये अग्नियाँ अवशोषित कर लेती हैं। इनमें आसुरी शक्तियों का वध करने की सम्भाव्यता (शक्ति) होती है। हिंदुओं के यज्ञ आत्मसाक्षात्कारी व्यक्तियों (योगियों) के चैतन्य को आत्मसात कर सकते हैं और यज्ञ क्रिया में की गई प्रार्थनाओं के अनुरूप उन पर आशीष कृपा होती है। यद्यपि यज्ञ करवाने के लिए उपयुक्त ब्राह्मण (ब्रह्मज्ञानी) का होना आवश्यक है। ऐसा व्यक्ति द्विज अर्थात् योगी या आत्मसाक्षात्कारी होना चाहिए। केवल आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति ही सच्चा ब्राह्मण, ईसाई, पारसी, सिख या मुसलमान होता है बाकि सब किसी भी धर्म का उपदेश देने के अधिकारी नहीं होते क्योंकि अभी तक उनका सम्बन्ध परमात्मा की जीवन्त शक्ति से नहीं हुआ होता। अतः धर्म के नाम पर अनात्मसाक्षात्कारी लोगों द्वारा किए गये कर्मकाण्ड कृत्रिम और अर्थहीन होते हैं। अनुष्ठान करने के लिए व्यक्ति का अधिकारी होना आवश्यक है और यह अधिकार परमात्मा केवल आत्मसाक्षात्कार के बाद ही प्रदान करते हैं।

कोई साधक जब आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करता है, तो प्रणव पंचतत्वों के अस्तित्व की अभिव्यक्ति करता है। सहजयोगी अपनी चैतन्य लहरियों से

विद्युत सम ऊर्जा के रिसाव की अनुभूति करता है। ये चैतन्य लहरियाँ प्रणव की दिव्य लहरियाँ होती हैं, परन्तु वे भी व्यक्ति के स्वभाव के विद्युत भाग की अभिव्यक्ति करती हैं। ये चैतन्य लहरियाँ भी चुम्बकीय होती हैं तथा चमक और प्रकाश प्रसारित करती हैं। जब ये घटना घटित होती है तो व्यक्ति हृदय की धड़कन (नाद) को सुन सकता है और प्रकाश और रंगों के भिन्न आकार देख सकता है।

साधना के दो चरम (Extreme) मार्ग हैं। पहला जहाँ साधक हठ करके हृदय में बिना प्रेम भाव के त्याग करता है और कठोरता पूर्वक स्वयं को अनुशासित करता है। दूसरा मार्ग जहाँ साधक मनोवेगों में लिप्त होकर अपनी इच्छाओं की तृप्ति करता है। पहले मार्ग पर वह यौन-सम्बन्धों और इच्छाओं से दूर भागता है और दूसरे मार्ग से वह इनकी ओर दौड़ता है। इन दोनों में से किसी भी मार्ग से साधक को परमात्मा का साम्राज्य प्राप्त नहीं होगा। मध्यमार्ग से दाएं (त्याग और अनुशासन) या बाएं मार्ग (लिप्साओं) की अति में चले जाना साधक को धर्म के धारक (sustenance) मार्ग से विचलित कर देता है और व्यक्ति में अधार्मिक व्यक्तित्व विकसित हो जाता है। पदार्थ को यदि धर्म विहीन कर दिया जाए तो पदार्थ अपदार्थ बन जाता है। इसी प्रकार धर्महीन हो जाने पर मानव अमानव बन जाता है। हाइड्रोजन के परमाणुओं की धारक शक्ति को तोड़कर मनुष्य ने हाइड्रोजन बम्ब बना लिया। इसी प्रकार मानव के अन्दर से भी जब धारक शक्ति निकल जाती है तो वह विषैले व्यक्तित्व का हो जाता है, दूसरों की परवाह किए बिना वह स्वेच्छा से कार्य करने लगता है। ऐसा व्यक्ति समग्रता के स्रोत से पूरी तरह हट जाता है और बार-बार जन्म लेकर स्वयं को वास्तविकता से और सामूहिकता से और अधिक दूर करता चला जाता है। ईश्वरी प्रेम की सर्वव्यापक शक्ति से यदि आसुरी शक्तियाँ एक बार मार्ग बना लें तो बड़ी संख्या में अबोध लोगों को प्रलोभित करके जाल में फँसाने के लिए केवल एक राक्षसी स्वभाव का

व्यक्ति काफ़ी है। इससे हिटलर और उसके अनुचरों का शैतानी आचरण स्पष्ट होता है। हिटलर ऐसा ही राक्षसी स्वभाव का व्यक्ति था जो असंख्य मृत आत्माओं को पृथ्वी पर आकर निष्कपट लोगों को भूतबाधित करने का साधन (आवरण) बना।

वायु तत्व

वायु तत्व का सृजन आदिशक्ति के श्वास लेने के परिणाम स्वरूप हुआ और यह आदिशक्ति के स्पर्श का कारणात्मक तत्व है। वायु-आक्सीजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, कार्बन डायक्साइड तथा अन्य गैसों का सम्मिश्रण है और तमोगुण के प्रभाव के परिणाम स्वरूप है। मानवीय गतिविधियों और जीवन के लिए उपयोग होने वाली वायु रजोगुण से प्रमाणित होती है। जिस वायु से व्यक्ति श्वास लेता है, वह प्राण (प्राण वायु) कहलाती है और यह सत्वगुण से प्रभावित होती है। इस प्रकार की वायु के तीन रूप होते हैं : अपान, समान और उदान। अपान पेट के सबसे नीचे के भाग में गैसों के रूप में विद्यमान होता है। आत्मसाक्षात्कारी व्यक्ति जब श्वास लेता है, तो उसके आस-पास की वायु पावन हो जाती है, क्योंकि यह उस व्यक्ति से चैतन्य लहरियाँ आत्मसात करती है। इसलिए यह पावन बन जाती है। जिन देशों में महान अवतरणों ने जन्म लिया है (अवतार भूमि) वहाँ की वायु में अद्‌भुत चैतन्य होता है। ऐसे देशों में लोग सन्तोषमय जीवनयापन करते हैं। हो सकता है, कि उनकी भौतिक स्थिति बहुत अच्छी न हो, परन्तु वे इसकी शिकायत नहीं करते। उनकी निराशा क्रान्ति का कारण नहीं बनती और वे उग्र प्रतिक्रियात्मक विधियाँ नहीं अपनाते।

वायु, शरीर को जीवन और हल्कापन प्रदान करती है। मनुष्य में जब कुण्डलिनी उठती है तो व्यक्ति को शरीर में वायु प्रवाह जैसे आड़ोलन की अनुभूति होती है। क्योंकि कुण्डलिनी जीवन शक्ति है (गौरी के महाकाली शक्ति होने के कारण) और प्राण, प्राणवायु का वहन करती है। कुण्डलिनी में

प्राण अवशिष्ट (Residual) मानव चित् या जीवन शक्ति (प्राण) सहित चेतन मस्तिष्क है। इतना ही नहीं, आत्मसाक्षात्कार के बाद साधक अपने शरीर के सामान्य वज़न के साथ रहते हुए भी हल्कापन महसूस करता है। सिर का शिखर (ब्रह्मरन्ध्र) खुल जाता है, प्राण मानव चित् से एकरूप हो जाता है और सर्वव्यापी ईश्वरी शक्ति से इसका सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। बाद में व्यक्ति का चित् ईश्वरी शक्ति में विलय हो जाता है और साधक में सामूहिक चेतना जागृत हो जाती है। ऐसा व्यक्ति अन्य लोगों में अपनी चेतना संचारित कर सकता है और अपने मध्य नाड़ी तन्त्र पर अन्य लोगों की चेतना को महसूस कर सकता है। वायुतत्व के माध्यम से यह ईश्वरी शक्ति की अभिव्यक्ति की पराकाष्ठा है। प्रणव का प्राण भाग एक ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है जहाँ यह पूरी मानव चेतना में वायु की तरह फैल जाता है। बाद में, यही प्रणव, मानव चित् के साथ सभी जीवित और निर्जीव अस्तित्वों में व्याप्त हो जाता है।

अंतरिक्ष/आकाश तत्व

अंतरिक्ष या आकाश तत्व का सृजन आदिशक्ति की आवाज़ (स्वर) के सार तत्व से किया गया। संसार के सारे स्वरों का सृजन चोट (थपक) से हुआ और झरनों की आवाज़ें, नदियों के कोलाहल, पर्वतों का उभार ये सभी क्रियाएं तमोगुण की इच्छा मनोदशा से प्रभावित हैं। आदि कुण्डलिनी के माध्यम से प्रणव के आड़ोलन से सृजित स्वर दो प्रकार के होते हैं : पहला, जो चक्रों के माध्यम से ऊर्ध्वगामी होता है, और दूसरा जो चक्रों की भिन्न पंखुड़ियों के माध्यम से स्वर सृजन करते हुए स्पन्दित होता है। ऊपर की ओर जाने वाला समन्वित प्रणव का स्वर होता है और दूसरा मूल (analysed) प्रणव होता है। मानव द्वारा उपयोग किए जाने वाले स्वर, जैसे वाद्ययन्त्रों के साथ उपयोग होने वाले और संगीत के लिए मनुष्य की आवाज़ से सृजित स्वर रजोगुण से प्रभावित होते हैं।

स्वर की भौतिक ऊर्जा तब पूर्णत: दिव्य बन जाती है जब कोई आत्मसाक्षात्कारी इसे ताल (थपक) या उच्चारण के माध्यम से उत्पन्न करता है। उदाहरण के रूप में अनात्मसाक्षात्कारी लोगों द्वारा उच्चारण किए गये मन्त्र या देवी-देवताओं का सम्बोधन उनके सम्पर्क देवी-देवताओं से बनाने में बाधा उत्पन्न करते हैं और ऐसी अनधिकृत साधना से देवी-देवता बहुत नाराज़ हो जाते हैं। मानव को ये समझ लेना बहुत आवश्यक है कि परमात्मा तक पहुँचने के लिए कुछ मर्यादाएं हैं जिनकी अनभिज्ञता क्षम्य नहीं है। उदाहरण के रूप में कोई अनात्मसाक्षात्कारी व्यक्ति यदि श्रीकृष्ण का नाम जपे चला जाता है तो उसे गले की समस्याएं हो सकती हैं और अन्तत: कैन्सर रोग भी हो सकता है। आत्मसाक्षात्कारी लोगों या योगियों द्वारा परमात्मा की पूजा या मन्दिरों में देवी-देवताओं के आह्वान के लिए उपयोग किए गये स्वर ईश्वरी चैतन्य लहरियों को वहन या प्रतिबिम्बित करते हैं। मन्त्र ईश्वरी स्वर हैं और शास्त्रों की काव्यमय भाषा स्वर तत्व की पूर्ण ईश्वरी अभिव्यक्ति पर आधारित हैं। 'ईसा प्रार्थना' (The Lord's Prayer) और 'नाम' शुद्ध मन्त्र हैं। पारसी अवेस्था (Avestha) ग्रन्थ (ज़ोरास्ट्र के अनुयायियों के) और हिन्दुओं के संस्कृत श्लोक ईश्वरी शब्द हैं जो ईश्वरी चैतन्य लहरियों से परिपूर्ण हैं। इन शब्दों का उच्चारण यदि अनात्मसाक्षात्कारी लोग करते हैं तो यह अर्थहीन है और उन्हें परमात्मा योग प्रदान नहीं करता। अपावन लोग यदि इनका उच्चारण करें तो देवी-देवताओं के क्रोध के पात्र बन सकते हैं। ऐसे व्यक्ति अवचेतन या अतिचेतन क्षेत्र में गिर सकते हैं। ईश्वरी शक्ति, समग्र ऊर्जा शब्द के रूप में अभिव्यक्त होती है और ॐ या लोगोस (Logos) या अनाहलक (Anahalk) भी कहलाती है।

भौतिक शक्ति पर कार्य करने वाले वैज्ञानिक के लिए ईश्वरी शक्ति को समझ पाना बहुत कठिन है। उसे ये समझ लेना चाहिए कि सृजन लीला केवल भौतिक शक्ति के विषय में ही नहीं है, इसमें ईश्वरी शक्ति और

अवतरण शक्ति भी सम्मिलित हैं और इसके अन्दर प्रेम पक्ष, विचार पक्ष, सृजन पक्ष और अन्त में भौतिक पक्ष समाहित हैं। सृजन में महामानव की सभी प्रेममय मनोदशाएं निहित होती हैं। आदिशक्ति ने अपने स्वामी सर्वशक्तिमान परमात्मा, अपने बच्चों और सृष्टि के प्रति अपने प्रेम की रोमांचक अभिव्यक्ति करने के लिए प्रकृति का सृजन किया। सृष्टि केवल नीरस, नि:स्वाद, सम्वेदनहीन पदार्थों, मृत पदार्थों या विद्युत जैसी भौतिक ऊर्जा से ही नहीं बनी है।

इतिहास की भिन्न अवस्थाओं में आदिशक्ति के अवतरणों के साथ सम्बन्धित देवी-देवता भी अवतरित हुए। इन देवी-देवताओं ने भी मानव अवतरणों के रूप में अपनी अभिव्यक्ति की। भिन्न देवी-देवताओं और भिन्न अवतरणों के उपयोग द्वारा अदिशक्ति ने अपनी सर्वव्यापक ईश्वरी शक्ति को भिन्न गुणों (मनोदशाओं) में परिवर्तित किया। यह वैसा ही है जैसे जीवन वृक्ष के अन्दर से गुज़रता हुआ रस जड़ों, डालियों, फूलों, बीजों और कांटों का निर्माण करता है। इस ईश्वरी शक्ति का गतिशीलता की भिन्न मनोदशाओं में परिवर्तन करने के लिए भिन्न देवी-देवता ज़िम्मेदार हैं।

‘सृजन’ विषय पर दिनांक २०/०२/१९७७ को दिल्ली में श्रीमाताजी द्वारा दिया गया प्रवचन....

आज हमने ‘सृजन’ विषय पर बात करने का निर्णय किया है, परन्तु हमारे आयोजक मेरे लिए श्यामपट और चॉक की व्यवस्था नहीं कर पाए हैं। मैं नहीं जानती, बिना रेखाचित्र बनाए मैं इसकी व्याख्या करने का प्रयत्न करूंगी।

यह अत्यन्त कठिन विषय है, परन्तु आपके लिए मैं इसे सुगम (बोधगम्य) बनाने का प्रयत्न करूंगी और ये अनुरोध भी करूंगी कि ‘सृजन’ जैसे दुर्गम विषय को समझने के लिए आप अपना पूरा चित् इस पर बनाए रखें।

आज एक अन्य आशीर्वाद भी है।

आज का महानतम आशिष ये है कि आपमें से बहुत से लोग चैतन्य लहरियों को अनुभव कर सकते हैं। केवल इतना ही नहीं, आप ये भी जानते और महसूस करते हैं कि चैतन्य लहरियाँ सोच सकती हैं और प्रेम कर सकती हैं – ये बहुत बड़ा वरदान है। नि:सन्देह आपमें से कुछ लोगों को ये प्राप्त नहीं हो पाई हैं, परन्तु जिन्हें प्राप्त हो गई हैं, वो जानते हैं कि ये (चैतन्य लहरियाँ) आयोजन करती हैं, क्योंकि ये कुण्डलिनी उठाती हैं, ये उस स्थान पर जाती हैं जहाँ इनकी आवश्यकता होती है, करुणा के कारण ये शरीर के उस भाग में पहुँचती हैं जहाँ पर कमी होती है। वे समझती हैं, अपने सर्वव्यापी स्वभाव का आयोजन करती हैं और प्रेम करती हैं। जब–जब भी आप इनसे प्रश्न करते हैं, ये आपके प्रश्नों का उत्तर देती हैं – आपको उनसे उत्तर प्राप्त होते हैं। ये जीवन्त चैतन्य लहरियाँ हैं। ये परमेश्वरी देन हैं। परमेश्वर को ब्रह्म कहा जाता है – ब्रह्म तत्व – परमेश्वरी सिद्धान्त।

हम कह सकते हैं कि सृजन की प्रक्रिया शाश्वत प्रक्रिया है अर्थात् बीज पेड़ बनता है और पेड़ बीज बनता है और फिर बीज पेड़ बन जाता है। ये प्रक्रिया चलती रहती है – ये शाश्वत है। अत: इसका न तो कोई आरम्भ (आदि) है और न ही कोई अन्त। यह चलता ही रहता है। इसी कारण इसके अस्तित्व की भिन्न अवस्थाएं हो सकती हैं – आप कह सकते हैं ‘अस्तित्व की अवस्थाएं’। अत: प्रथम, ‘प्रथम–अस्तित्व’ ब्रह्म हैं, जहाँ किसी चीज़ का अस्त्वि नहीं है। हम कहते हैं, ‘कुछ नहीं’ (Nothing)। जब हम कहते हैं, ‘कुछ नहीं’ तो ये एक सम्बन्धसूचक शब्द है। जब हमारा अस्तित्व ही नहीं है तो हमारे लिए सभी कुछ ‘कुछ नहीं’ है। अवश्य कुछ है, परन्तु वह हम नहीं हैं। इसलिए प्रासंगिकतावश हम कहते हैं ‘यह कुछ नहीं है’। यह केवल ‘ब्रह्म’ शब्द है, यदि आप चाहें तो एक शक्ति (ऊर्जा) के विषय में सोच सकते हैं, विद्यमान शक्ति के एकरूप के विषय में सोच सकते हैं। परन्तु यह शक्ति

(ऊर्जा) एक बिन्दु पर संचित होती है और एक केन्द्रक (Nucleus) की रचना करती है। ऊर्जा जो सोचती है, वितरित होती है, एक बिन्दु पर संचित होती है, एक बिन्दु पर संकेन्द्रण (Concentration) करती है, ऐसा आप कह सकते हैं। ये बिन्दु ही वह बिन्दु है जिसे हम सदाशिव कहते हैं। ये इसलिए घटित होता है क्योंकि वह शक्ति इच्छा करती है, सोचती है, व्यवस्था करती है और प्रेम करती है। जब ये सृजन करना चाहती है, इस शक्ति में जब सृजन की इच्छा जागृत होती है, उस समय एक केन्द्रक का सृजन होता है। इस केन्द्रक को हम सदाशिव कहते हैं। केन्द्रक कभी लुप्त नहीं होता। आप किसी नीहारिका (Nebula) के विषय में सोच सकते हैं। कहने का अभिप्राय ये है कि आप किसी सम्बन्धित (Relative) चीज़ के विषय में सोच सकते हैं, किसी ऐसी चीज़ के विषय में नहीं सोच सकते जिसका पूर्ण आकार हो। अत: विचारों से आप पूरे विषय को धारणात्मक नहीं बना सकते। परन्तु यदि आप किसी ऐसी अवस्था के विषय में सोच सकें जहाँ ये मात्र ऊर्जा हो, कोई सृजन न हो, परन्तु विद्युतीय ऊर्जा नहीं, चुम्बकीय। यह उन सब तत्वों का सम्मिश्रण है, सामंजस्य है, जो लयबद्ध होकर एकरूप (समग्र) हो जाते हैं। एकबिन्दु पर आकर यह जामन (लावा) की तरह एकरूप हो जाती है, एक बिन्दु पर आकर और इसे हम केन्द्रक कह सकते हैं। इस बिन्दु को हम 'सदाशिव' कहते हैं। ये सदाशिव ईश्वर हैं सर्वशक्तिमान परमात्मा (God Almighty) हैं।

अब हम इसे परमात्मा कहते हैं क्योंकि अब भी इसकी एक सीमा है – क्योंकि अभी हम इसे एक नाम दे सकते हैं, परन्तु यदि यह मात्र ऊर्जा (शक्ति) है, तो हम इसे केवल 'ब्रह्म' कहेंगे। आप ऐसे कह सकते हैं: जब पानी बर्फ़ बनता है तो बर्फ़ पिण्ड का आकार धारण करती है, पानी और बर्फ़ में अन्तर किया जा सकता है। परन्तु अब भी यह सम्बन्धित है, सम्बन्धित सूझबूझ (समझ)। इस अवस्था में सर्वशक्तिमान परमात्मा परमेश्वर एक साक्षात् रूप धारण करते हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि ये ब्रह्म नहीं हैं, यह व्यक्तित्व है। व्यक्तित्व का अपना एक परिमल होता है, अपना परिमल होता है, आप कह सकते हैं कि यह प्रकाश है। यह प्रकाश परमेश्वरी प्रेम है। यह (परमेश्वरी प्रकाश) भिन्न आकार धारण करता है परन्तु सदाशिव ज्यों की त्यों बने रहते हैं।

अब सृजन की इच्छा परिमल (प्रकाश) को स्थानांतरित कर दी जाती है। ये परिमल परमात्मा की शक्ति है। ईश्वर से पूर्व भी कुछ चीज़ें थीं और उनसे परे भी कुछ चीज़ें हैं। सर्वशक्तिमान परमात्मा से परे भी कुछ चीज़ें हैं, जिन्हें वे नियंत्रित नहीं कर सकते। सर्वप्रथम तो सर्वशक्तिमान परमात्मा अपने शाश्वत स्वभाव पर नियंत्रण कर सकते। शाश्वतता उनका स्वभाव है, इसे वे रोक नहीं सकते। वे अपने रूप परिवर्तित करते चले जाएंगे, ये उनका स्वभाव है...... स्वभाव मात्र है।

अपने शाश्वतता स्वभाव को वे परिवर्तित नहीं कर सकते। सदा–सर्वदा वे बने रहेंगे।

शाश्वत उनका स्वभाव है और अपने स्वभाव को वे नियंत्रित नहीं कर सकते।

उदाहरण के रूप में, परमात्मा आपसे आपकी सत्य प्राप्ति की स्वाधीनता नहीं छीन सकते। वे ऐसा नहीं कर सकते। एक बार जो उन्होंने दे दिया है, उसे वे वापिस नहीं लेंगे। अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता में आपको इसे चुनना होगा। इसे स्वीकार करने के लिए परमात्मा आपको विवश नहीं करेंगे। बहुत से लोग यही आशा करते हैं, परन्तु वे भयंकर गलती करते हैं। इस अवस्था में समस्या पूर्ण विनाश या पूर्ण पुनरुत्थान की है। ये निर्णय मानव पर छोड़ दिया गया है कि वे सत्य को स्वीकार करना चाहते हैं या असत्य के पीछे दौड़ते रहना चाहते हैं।

अत: अपना मार्ग चुनने की आपको पूरी स्वतंत्रता दी गई है। मैं परमात्मा के विस्तृत विवरण की गहराईयों में नहीं जाऊंगी क्योंकि यह विषय बहुत ही सूक्ष्म है और इसके लिए बहुत अधिक चित् की आवश्यकता है। इस विषय पर मैंने पहले बहुत से लोगों को बताया है और परमात्मा के स्वभाव के विषय में भी मैंने बताया है, लोग जानते हैं। परन्तु परमात्मा साक्षी हैं। वे साक्षी रूप में साक्षी हैं। वो किस चीज़ के साक्षी हैं? वे सृष्टि के साक्षी हैं और जो शक्ति सृष्टि का सृजन करती है वह 'शक्ति' है, उनकी शक्ति हैं, उनकी संगिनी हैं। अब, हम मानव ये बात नहीं समझते कि पति–पत्नी इतने एकरूप हो सकते हैं। समझने के लिए आप सूर्य और उसकी किरणों, चाँद और चाँदनी का उदाहरण ले सकते हैं – ये दोनों पूर्णत: एक हैं। या शब्द और अर्थ। इसी प्रकार शिव और शक्ति दोनों एकरूप हैं। उदाहरण के रूप में आप पिता भी हो सकते हैं और माँ भी। आप पिता हो सकते हैं, भाई हो सकते हैं, पुत्र हो सकते हैं – एकही मानव के तीन रूप। इसी प्रकार आप अपनी आत्मा (self) हो सकते हैं और अपनी शक्ति भी। आप जानते हैं कि आप, आपकी आत्मा और आपकी शक्ति भिन्न हैं, परन्तु आप एक हैं। आपमें लिखने की शक्ति है, परन्तु आप अपनी शक्ति नहीं हैं। न ही आपकी शक्ति 'आप' है। इसी प्रकार शिव और शक्ति भी व्यक्तरूप से दो व्यक्तित्व हैं, परन्तु वे एक अद्वितीय व्यक्तित्व के अंग–प्रत्यंग हैं। उन्हें ब्रह्म नाम से जाना जाता है।

परन्तु इन नारकीय तान्त्रिकों ने – वे बार–बार यहाँ आ जाते हैं–शिव और शक्ति के पारस्परिक सम्बन्धों को बिगाड़ कर प्रस्तुत किया है, इसलिए नहीं कि वे मानव थे इसी कारण उन्होंने ये सारे अटपटे विचार स्थापित किए और इन सभी मूर्खतापूर्ण चीज़ों की बात की, परन्तु इसलिए क्योंकि वे लोग यौन–बिन्दुओं के अतिरिक्त कुछ भी नहीं थे। वे इससे ऊपर बिल्कुल भी नहीं हैं। वे अत्यन्त भ्रष्ट, रोगी और पतित लोग थे। वे इतने भयंकर रोगग्रस्त हैं कि किसी में भी उन्हें इसके अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं पड़ता। अश्वमेध यज्ञ को भी कामुकता से सम्बन्धित वर्णित किया गया है। जिस चीज़ को भी वे देखते हैं उसी में उन्हें वासना नज़र आती है। ये उस व्यक्ति की तरह से हैं जो कामुकता के चश्मे के प्रकाश से देख रहा हो। उसके लिए सभी कुछ वासनात्मक बन जाता है। वे इतने भ्रष्ट और इतने पतित लोग

हैं कि परमात्मा को भी वे यौन बिन्दु की स्थिति में ले आते हैं। जब तक वे इस स्तर पर नहीं ले आते, जीवित नहीं रह सकते। जैसे वे हैं, किस प्रकार वे स्वयं को न्यायोचित ठहराएंगे? शिव और शक्ति का वासना से कुछ लेना–देना नहीं है। सूर्य और उसका प्रकाश क्या है? क्या इनमें कोई कामुकता छिपी है? इन पतित तांत्रिकों के पास कामुकता के अतिरिक्त कुछ और है क्या? क्या वासना के अतिरिक्त कोई और सम्बन्ध ही नहीं है?

अत: शिव सर्वशक्तिमान परमात्मा हैं। हमें उन्हें सदाशिव कहना चाहिए।

मैं थोड़ा सा चित्र बनाने का प्रयत्न करूंगी, देखते हैं किस प्रकार कार्यान्वित होता है। (आकृति १)

अब इस प्रकार से केन्द्रक का बनना।

अब, आप कह सकते हैं, यह केन्द्रक के अवशेष हैं, जो अपनी शक्ति को वलय का आकार दे देते हैं। किस प्रकार आकार देते हैं? आप कह सकते हैं, वह पीछे की ओर हटता है। जब वह पीछे की ओर हटता है, तो क्या घटित होता है (सृजन के लिए सदाशिव शक्ति को स्वयं से दूर धकेलते हैं–वलय टूटता है...)

इस प्रकार यह पूरी चीज़ यहाँ बनी रहती है और ये सारे पिण्ड इसके इर्द–गिर्द एक आवरण (कोश) की रचना करते हैं तथा इसके ऊपर से लहरें बहती हैं और इस आवरण (कोश) के अन्दर स्थापित हो जाती हैं। अब स्थिति ये है कि एकाग्रता (Concentration) के कारण आवरण के अन्दर एक अन्य केन्द्रक बन जाता है – यही शक्ति है, और यही सदाशिव है। यही महाशक्ति है, आदिशक्ति और यही सदाशिव हैं।

अब यहाँ एक बार जब शक्ति अपना व्यक्तित्व धारण कर लेती है या हम कह सकते हैं कि उनका (शक्ति का) अहं स्थापित हो जाता है, तो वे शिव से भिन्न व्यक्तित्व हो जाती है। क्योंकि पूरी प्रक्रिया एक लीला का सृजन करने के लिए है ताकि साक्षी (सदाशिव) इसे देख सकें। केवल उन्होंने ही इस लीला को देखना है। शक्ति ने ही सृजन करना है। अत: वे अपने अहं को एक बिन्दु पर संचित करती है और शक्ति बन जाती है, वहाँ पर अपना पद ग्रहण करती हैं तथा शक्ति रूप में जो पहला कार्य वो करती हैं वह है अपने स्वामी के चहुँ ओर परवलय में जाना, उनकी प्रदक्षिणा करना। ये बात समझ ली जानी आवश्यक है। वे शक्ति हैं, 'परमात्मा की शक्ति'। पूरी सृष्टि का सृजन इसलिए है कि सर्वशक्तिमान परमात्मा इसे साक्षी रूप से देखें। शक्ति की लीला को देखने वाले वो एकमात्र दर्शक हैं। यदि उन्हें खेल पसन्द न आया, उदाहरण के रूप में यदि ये उनकी इच्छानुरूप नहीं है या सृजित लोग उनकी इच्छानुरूप नहीं हैं, तो वे तुरन्त अपनी आँखें बन्द करके खेल को नकार कर अपना क्रोध दर्शा कर या खेल को रोक कर, एकदम से इस लीला को रोक देते हैं। वे इसे तुरन्त रोक सकते हैं। इसी कारण उन्हें प्रलयंकर कहा जाता है।

सभी कुछ उन्हें रिझाने के लिए है, और यदि इससे उन्हें प्रसन्नता नहीं प्राप्त होती तो वे इसे रोक सकते हैं। अत: सर्वप्रथम उन्हें प्रसन्न किया जाना आवश्यक है जो साक्षी हैं। इसी कारण वे (शक्ति) उन्हें माला पहनाती हैं। परवलय की स्थिति में प्रदक्षिणा करती हैं और यह प्रदक्षिणा आदिशक्ति का प्रतीक है। यह उनके लिए एक प्रकार का प्रमाणपत्र है, और जैसे संस्कृत में कहते हैं, एक प्रकार का वरदान है – वरदान कि 'अपने कार्य में आगे बढ़ती चलो।' यह उन्हें दी गई स्वीकृति है। जब वे यह प्रदक्षिणा पूर्ण करती हैं तो स्वीकृति मिल चुकी होती है और इसी कारण से वे प्रदक्षिणा में हैं। यहाँ पर पुरुषों का महिलाओं पर और महिलाओं का पुरुषों पर स्वामित्व जमाने का प्रश्न नहीं आता, यह तो मूलत: हमारे मस्तिष्क की उपज है।

इसके विषय में जब हम सोचते हैं तो हम पुरुषों और महिलाओं के विषय में सोचते हैं, परन्तु यहाँ ऐसा कुछ भी नहीं है। यह पूर्ण समग्रता है। क्या हम किसी एक जोड़े के विषय में भी सोच सकते हैं जो पूर्णत: एकरूप हो? नहीं सोच सकते, क्योंकि हम सब अधूरे हैं। परन्तु यदि आप अपनी कल्पना को उस बिन्दु तक विकसित कर पाएं कि वे दोनों एक दूसरे के लिए बने हैं और उनमें से जो क्रियाशील है वे 'आदिशक्ति' हैं, और वे सर्वशक्तिमान परमात्मा को प्रसन्न करने के लिए गतिशील हैं, उस परमात्मा को जो आदिशक्ति की लीला के एकमात्र साक्षी हैं और जिन्हें सर्वप्रथम प्रसन्न किया जाना आवश्यक है। अत: वे स्वयं को उनके समक्ष समर्पित करती हैं और प्रदक्षिणा के माध्यम से उनकी स्वीकृति लेती हैं।

अब प्रदक्षिणा अत्यन्त महत्वपूर्ण चीज़ है। आप जानते हैं कि हर चीज़ वलयाकार में यात्रा करती है, कभी सीधी नहीं चलती। उदाहरण के रूप में, आप यदि किसी से प्रेम करते हैं तो हमारा प्रेम उस व्यक्ति तक पहुँचता है और प्रेमरूप में पुन: हमारे पास लौट आता है। परन्तु यदि आप किसी से घृणा करते हैं तो हमारी घृणा उस व्यक्ति के चहुँ ओर घूमकर भयानक घृणा के रूप में हमारे पास लौटती है। अत: प्रदक्षिणा की गई परन्तु, आप कह सकते हैं, 'परवलय क्यों?' प्रश्न ये हो सकता है कि, 'परवलयिक क्यों होना चाहिए, वृत्त क्यों नहीं?' कारण ये है कि परवलय किसी दूसरे बिन्दु के चहुँ ओर घूमने का सबसे छोटा मार्ग है, ये सबसे छोटा है और इसलिये ये परवलय है।

हमारे सामान्य जीवन में भी ऐसी घटनाएं देखी जा सकती हैं कि आप किसी से जो व्यवहार करेंगे, सशक्त होकर वही व्यवहार लौटकर आपके पास आएगा, आप चाहे अच्छा करें या बुरा। इसलिए हमारी कर्म तथा पुण्य करने की धारणाएं बनी हुई हैं। क्योंकि जो कुछ भी हम अपने माध्यम से प्रवाहित करते हैं वही लौटकर हमारे पास आता है। इसी प्रकार यदि हम पूरे विश्व को आशिष दें तो पूरे विश्व की आशिष लौट कर हमारे पास आएगी।

जैसा मैंने आपको बताया है, ये प्रक्रिया इतनी सरल नहीं है, कि इसे रेखाओं में व्यक्त

किया जा सके, क्योंकि यह एक बहुत बड़े आयाम की जीवन्त प्रक्रिया है। परन्तु आपके समझने के लिए इसे सरल बनाने का प्रयत्न कर रही हूँ।

अब, ये परवलय है, जब वे (शक्ति) परवलयिक गति धारण करती है और शिव इसको स्वीकार करते हैं – तो यह जीवन्त प्रक्रिया है। एक बार फिर ये समझ लेना आवश्यक होगा कि यह जीवन्त प्रक्रिया है। यह भी इतनी ही मानवीय है जितने हम हैं। दोनों (शक्ति और शिव) उतने ही मानवीय हैं जितने हम हैं। हमें कहना चाहिए कि वे हम मानवों की अपेक्षा हजारों गुना अधिक मानवीय हैं।

तो यहाँ पर पत्नी, जो संगिनी है, कहती है : 'इसी प्रकार (इस स्थिति में) मैं बहुत प्रसन्न हूँ। इससे आगे मैं कुछ नहीं करूंगी।' क्योंकि सृजन का कार्य उसके लिए सुगम नहीं है। वे अपने पति से अलग नहीं होना चाहतीं। सृजन शिशु को जन्म देना है, और वे कहती हैं, 'अभी मैं बच्चे उत्पन्न नहीं करना चाहती क्योंकि (अलग होकर) मैं तुम्हें खो दूंगी।' अत: शक्ति शिव के और समीप आती हैं और शिव उन्हें पीछे धकेल कर गायब हो जाते हैं, वलय के टूट जाने के कारण वहाँ से निकल जाते हैं।

अब शक्ति इस रूप में हैं (टूटी हुई वलय)। इस प्रकार 'ॐ' का आरम्भ होता है। परवलय सर्वप्रथम ॐ का रूप धारण करता है। तब वे स्वयं को नीचे की ओर धकेल कर कुछ समय के लिए ध्यान में चली जाती हैं। आप कह सकते हैं, ये देखने के लिए कि उन्हें किस प्रकार कार्य करना है।

देखिए, उनकी इच्छा को जगाया जाना आवश्यक था। इच्छा जागृत हुए बिना वे सृष्टि का गर्भ धारण नहीं करतीं। तो इस प्रक्रिया में एक कल्प का समय लगा – उनके ये सोचने में कि सृजन किस प्रकार किया जाना चाहिए, काफ़ी समय लगा। शक्ति ने बहुत से ब्रह्माण्डों का सृजन किया, केवल एक ही ब्रह्माण्ड का नहीं। उन्होंने ब्रह्माण्डों के बाद ब्रह्माण्डों का सृजन किया और मैं आपको दर्शाऊंगी कि इतने सारे ब्रह्माण्डों का सृजन उन्होंने किस प्रकार किया। उनमें से कुछ अभी भी बचे हुए हैं, कुछ नष्ट हो गए हैं। परन्तु आज हमारे सामने ये ब्रह्माण्ड है, ये पृथ्वी, इस पृथ्वी पर भारत और भारत में दिल्ली और यहाँ बैठकर आप ये सब सुन रहे हैं। ये इस प्रकार है। तो इस क्षण, जो कुछ है वह न भूत है न भविष्य। मैं आपको वर्तमान क्षण के विषय में बता रही हूँ, जिसमें हम यहाँ विद्यमान हैं। परन्तु हमसे पूर्व भी आदिशक्ति ने बहुत से ब्रह्माण्डों का सृजन किया और उन्होंने और भी बहुत से कार्य करने का प्रयत्न किया। अन्तत: उन्होंने यह प्रयास किया। पहले उन्होंने पृथ्वी का सृजन किया और फिर हमारा। उन्होंने किस प्रकार ये कार्य किया, इसे हम बाद में देखेंगे (जानेंगे)। इस समय हम मात्र इतना देखेंगे कि वे अपनी तीनों शक्तियों को किस प्रकार धारण करती हैं। सृजन का निर्णय लेने पर उन्हें तीन शक्तियाँ प्रदान की जाती हैं। उनके पास परमात्मा प्रदत्त तीन

शक्तियाँ हैं। एक शक्ति से, सर्वप्रथम, जीवन है, जीवित रहने की इच्छा है – वे (शक्ति) परमात्मा के साथ जीवित रहना चाहती है। दूसरी शक्ति सृजन के लिए है और तीसरी शक्ति संपोषण के लिए है। पहली शक्ति जीवन–शक्ति है, दूसरी सृजन–शक्ति और तीसरी विकास की शक्ति है या संपोषण शक्ति जिसके माध्यम से शनै: शनै: आप किसी चीज़ का पोषण करते हैं और आप भी कुछ बन जाते हैं। ये तीन शक्तियाँ वे धारण करती हैं। संक्षिप्त में, हम कह सकते हैं, वे तीन शक्तियाँ बनाती हैं – महाकाली, महासरस्वती और महालक्ष्मी। इन तीनों शक्तियों को वे अपने अन्दर धारण करती हैं।

अब, पुन: वे अपनी परवलय शैली का उपयोग करती हैं। मान लो, मैं इस घर में इस मार्ग से आई हूँ, ये मार्ग मैं जानती हूँ। फिर मैं दूसरे मार्ग का उपयोग करती हूँ, उसे भी जान जाती हूँ। मैं पूरे मार्ग को, सभी कुछ जानती हूँ। अब, मैं ये मार्ग जानती हूँ और उस ज्ञान से इसके विषय में सभी कुछ जानती हूँ। अब मैं कोई और कार्य कर सकती हूँ। तो वे पुन: अपनी परवलयिक गतिविधियों (Parabolic Movements) का उपयोग करती हैं। वास्तव में उनके तीन आड़ोलन महाकाली, महासरस्वती और महालक्ष्मी के – हर समय आदिशक्ति से एकरूप होने के लिए होते हैं। वे उन्हें अलग करके तीन वाहिकाओं में डाल सकती हैं। उन्हें सम्मिश्रित और लयबद्ध करके परवलय के रूप में वे इनका उपयोग कर सकती हैं। क्या आप ये बात समझ पाए? इसी कारण जब हम बन्धन डालते हैं तो कहते हैं 'एक परवलय डाल दो।' ये परवलय है क्योंकि चैतन्य लहरियाँ इसमें (परवलय में) हैं। इसमें तीनों शक्तियाँ प्रवाहित हो रही है।

अत: आप जानते हैं, हमारे पास तीन शक्तियाँ हैं – महाकाली शक्ति (इसे लिखने की मुझे आवश्यकता नहीं है)। महाकाली शक्ति के माध्यम से वे इच्छा करती है। जैसा मैंने आपको बताया है, ये परमात्मा का भावनात्मक पक्ष है, आप ऐसा कह सकते हैं। वे परमात्मा के भावनात्मक पक्ष का प्रतिनिधित्व करती हैं। वे इच्छा करती हैं। ये परमात्मा की इच्छा है, सर्वशक्तिमान परमात्मा की जो मात्र दर्शक हैं, वे साक्षी हैं, और ये शक्ति (महाकाली) उस साक्षी को आपके हृदय में स्थापित करती हैं, इसे वे आपके हृदय में प्रतिबिम्बित करती है और इसका प्रकाश हर समय ज्योतित रहता है ताकि आप अपने कर्मों को देख सके (कि आप क्या कर रहे हैं)। – आपके सृजन के बाद आपकी लीला को देखने के लिए।

उनकी महासरस्वती शक्ति अब परवलय में गतिशील होती हैं। वे किसी भी कोण में गतिशील हो सकती हैं, किसी भी बिन्दु से वे ३६०° में जा सकती हैं। कई बार वे एक ही बिन्दु पर गोल–गोल घूमती हैं। जब वे एक ही बिन्दु पर घूमती हैं तो उनकी महासरस्वती शक्ति का संपिंडन (दृढ़ीकरण) (consolidated) हो सकता है। आप कह सकते हैं कि यह घनीभूत (dense) हो जाती है। अंग्रेजी भाषा के साथ यही समस्या है, यह भी घनीभूत हो जाती हैं।

इतनी घनीभूत कि ये चटक जाती हैं।

ये सभी दरारें (चटकनें) महाकाली शक्ति, महासरस्वती शक्ति की गतिविधि के आड़ोलन में आ जाती है क्योंकि ये गोल–गोल दिशा में घूम रही हैं। उस गति के आड़ोलन में आ कर ये भी गतिशील हो उठती हैं। उदाहरण के रूप में ये, ये और ये (तीनों) भाग गतिशील हो उठते हैं और जब ये गतिशील होते हैं तो गोलाकार हो जाते हैं। अपनी कोणिकताएं खोकर ये गोल हो जाते हैं। मैं आपको संक्षिप्त रूप में बताती हूँ कि ये गोल हो जाते हैं। तीनों गोलों को पुन: परस्पर घर्षण के लिए छोड़ दिया जाता है और इस प्रकार हम कह सकते हैं (अन्य सभी ब्रह्माण्डों को भूल जाएं जहाँ अन्य शैलियों का भी सृजन किया गया था) परन्तु इस ब्रह्माण्ड के विषय में हम कह सकते हैं कि इस प्रकार इसका सृजन हुआ।

हमेशा आपको याद रखना है कि ये शक्ति सोचती है, समझती है, आयोजन करती है और प्रेम करती है तथा इसका अपना एक व्यक्तित्व (Identity) है।

तो वे (शक्ति) पृथ्वी का सृजन करती हैं। पृथ्वी का सृजन सुगमता से नहीं हुआ। सूर्य का एक भाग इस प्रकार आप कह सकते हैं हाथ से, अलग किया गया। ये समझना भी आवश्यक होगा कि सूर्य इतना शीतल क्यों हुआ? सूर्य क्योंकि बहुत गरम है, उसका एक भाग अलग करके उसे बहुत दूर ले जाया गया, इसे सूर्य से इतनी दूरी पर ले जाया गया जहाँ ये पूरी तरह जम जाए (बर्फ़ की तरह)। चाँद की तरह से ही इसे बहुत दूर ले आया गया जहाँ ये पूरी तरह जम गया और पुन: इसे सूर्य के समीप लाया गया, लोलक (Pendulum) की तरह। एक बार फिर यह शीतल दिशा में गया और फिर इसे गर्म दिशा में लाया गया। इसे उस बिन्दु तक लाया गया, उस मध्य बिन्दु तक, जहाँ पृथ्वी की रचना हुई, रचना हुई–मैं पुन: कह रही हूँ–यह प्राकृतिक संयोग नहीं है, सोच समझकर, मानव के रहने योग्य तापमान इस पर बनाया गया। यह कार्य आदिशक्ति ने किया। माँ ने। सोच–समझकर उन्होंने ये कार्य किया। ऐसी माँ की कल्पना करना भी सुगम नहीं है। परन्तु उन्होंने ये कार्य किया और पृथ्वी को उस स्तर पर ले कर आईं जहाँ जीवन आरम्भ हो सके। तो सूर्य और चाँद के सम्मिश्रण आपको चाँद से हाइड्रोजन और सूर्य से ऑक्सीजन प्रदान करता है, जल, सर्दी और गर्मी (Freezing and Heating) प्रदान करता है। ये जमने और तपने की क्रिया आपको जल प्रदान करती है। जल में कुण्डलाकार पृथ्वी बनाई गई ताकि ऊपर की ओर जा सके और सर्दी–गर्मी आरम्भ हो सके। इस तापन और शीतलीकरण द्वारा अमिनो एसिड्स (Amino-acids) के रूप में जीवन अस्तित्व धारण करता है।

ये सारा कार्य सोच–समझकर किया गया। मेरा कहने का अभिप्राय ये है कि ये कार्य संयोगवश नहीं हुआ। इस विषय में भी व्यक्ति को एक बार सोचना चाहिए कि 'किस प्रकार ये संयोग नहीं है?' यदि आप महान जीव–वैज्ञानिक Donooha (अस्पष्ट) को पढ़ें – मेरे

विचार से वो महानतम जीव–वैज्ञानिकों में से एक थे जिन्होंने इतनी गहनतापूर्वक गणना की कि भौतिक पदार्थ में से सामान्य अमीबा का सृजन करने में कितना समय लगना चाहिए और वे इस परिणाम पहुँचे कि अब तक जो समय व्यतीत हुआ है उससे भी कहीं अधिक समय एक अमीबा के सृजन पर लगना चाहिए। संयोग के सिद्धान्त के अनुसार अरबों–अरब वर्षों की आवश्यकता है। संयोग का नियम है, परन्तु मैं नहीं जानती कि इसे विस्तारपूर्वक आपको बताऊं या नहीं। परन्तु संयोग का नियम ये है कि किसी परखनली में यदि आपके पास पचास लाल कंकड़ हैं और पचास सफ़ेद कंकड़ और परखनली को हिलाकर आप यदि इन्हें पूर्ण अव्यवस्थित स्थिति में लाना चाहें तो बहुत समय लगता है और इसे पुन: अपनी पूर्व अवस्था में लाने के लिए, व्यवस्थित स्थिति में, तो और भी अधिक समय की आवश्यकता पड़ेगी। तो एक व्यवस्थित जीवन्त जीवद्रव्य (Protoplasm), का सृजन करने के लिए भी एक कोशाणु को अब तक बीते समय से कहीं अधिक समय लगाना पड़ा होगा। कहीं अधिक, कई गुणा अधिक, अरबों–अरब गुना। पृथ्वी को चाँद से अलग होने में पाँच अरब वर्ष लगे और शीतल होने में इसे केवल दो अरब वर्ष लगे। अत: वो (वैज्ञानिक) कहते हैं कि ये समझ से परे है – केवल एक चीज़ जो इसकी व्याख्या कर सकती है, हम कह सकते हैं, कि इसके पीछे कोई बाज़ीगर अवश्य है और ये बाज़ीगर जिसके विषय में हमारे ऋषियों–मुनियों को ज्ञान था, 'आदिशक्ति', 'आदि माँ' के अतिरिक्त कोई नहीं है। 'सदाशिव' 'आदिपिता' हैं और 'आदिशक्ति' 'आदि माँ' हैं। क्या हम उनके यौन–सम्बन्धों के विषय में बात करेंगें? क्या तान्त्रिकों के साथ–साथ हम भी यही करेंगे? क्या अपने माता–पिता को श्रद्धांजलि देने का यही तरीका है?

हमें समझना होगा कि यह अत्यन्त अत्यन्त रहस्यमय विषय है, यहाँ हम अपने आदि–माता–पिता के परम–पावन प्रेम की बातें कर रहे हैं, यह अत्यन्त–अत्यन्त पावन विषय है। हम पावन लोग नहीं हैं, अभी भी हमारे अन्दर बहुत सा लोभ और वासना भरी हुई है, परन्तु परमात्मा इन सब चीज़ों से परे हैं। अत: उनके विषय में बातचीत करते हुए हमें ये समझना होगा कि हमें ये कार्य महान श्रद्धापूर्वक, उनके प्रति नतमस्तक होकर करना होगा। ये हमारा सौभाग्य है, हम भाग्यशाली हैं कि हम इन दोनों आदि–माता–पिता के विषय में कुछ जान पाए, जिन्होंने सृष्टिरूपी अपने बच्चे का सृजन किया।

तो एक बार फिर उनमें से एक चटक गया और सूर्यमण्डल (सौर परिवार) बन गया और सूर्यमण्डल में, जैसे आप जानते हैं, पृथ्वी, चन्द्रमा और ये सभी चीज़ें होती हैं। मैंने आपको बताया है कि पृथ्वी का सृजन किस प्रकार हुआ। पृथ्वी के सृजन के पश्चात् सर्वप्रथम अमीनो एसिड्स बनाए गए, वनस्पति का आरम्भ हुआ और फिर मानव की उत्पत्ति हुई।

अब पदार्थ – भी अत्यन्त व्यवस्थित होते हैं। पदार्थ अव्यवस्थित नहीं होता, ये व्यवस्थित तो है, परन्तु यह आयोजित नहीं है – इसमें अन्तर है। क्रमबद्ध चीज़ें निर्जीव हैं, निर्जीव हो सकती हैं। आप पाँच पत्थरों को क्रमबद्ध तरीके से रख सकते हैं, परन्तु ये आयोजित नहीं हैं क्योंकि ये जीवन्त नहीं हैं। दोनों में अन्तर है। तो सर्वप्रथम क्रमबद्ध चीज़ों को स्थापित किया गया। शायद आप जानते होंगे .... आठ भिन्न प्रकार के तत्वों का सृजन किया गया था और श्रीगणेश के माध्यम से इन्हें इनके उचित स्थानों पर स्थापित किया गया। आप जानते हैं कि कार्बन समय–समय पर दिखाई देने वाले तत्वों के मध्य में है अर्थात् कोई तत्व जिसकी एक संयोजकता है, दो संयोजकताए हैं, तीन संयोजकताएं हैं और चार संयोजकताएं हैं, तीन से अधिक हैं, तब आपको एक उ (कार्बन) मिलता है, जिसकी चार संयोजकताएं हैं। तब पुन: आपको घटती हुई एक, दो, तीन और चार संयोजकताएं मिलती हैं – यह पूरी आठ हैं।

इसी प्रकार पूरे पदार्थ का आयोजन किया गया। पदार्थ के आयोजन के लिए किसी देवता के सृजन की आवश्यकता थी और सर्वप्रथम जिस देवता का सृजन किया गया वो थे श्रीगणेश। आइए देखते हैं कि आदिशक्ति ने किस प्रकार उनका सृजन किया।

आपने देखा है कि आदिशक्ति के एक भाग–महासरस्वती – ने पदार्थ का सृजन किया। पदार्थ का सृजन महासरस्वती ने किया। महाकाली ने इन्हें अस्तित्व प्रदान करना है। अस्तित्व किस प्रकार प्राप्त होता है? जीवन के माध्यम से या, आप कह सकते हैं, आपके गुणों के माध्य से–जो भी कुछ आप हैं उसके माध्यम से प्राप्त होता है। तो महाकाली उन पदार्थों को अस्तित्व प्रदान करती हैं – मानव को या जीवन्त चीज़ों को नहीं, परन्तु पदार्थ को वे श्रीगणेश नामक देवता के माध्यम से अस्तित्व प्रदान करती हैं।

विराट के हृदय में, जैसे आप देखते हैं, यहाँ विराट प्रवेश कर जाते हैं – इसके विषय में मैं आपको बाद में बताऊंगी परन्तु विराट के हृदय में, 'आदि पुरुष', पूर्ण 'आदि पुरुष' – के हृदय में महाकाली स्थापित हैं। वो क्या करती हैं? वो साढ़े तीन बार हृदय से (परवलय में) जाती हैं : एक ऊपर, एक नीचे – इस प्रकार – साढ़े तीन बार और नीचे आकर साढ़े तीन परवलय समाप्त करती हैं। साढ़े तीन। और अब वे इसके अन्त तक पहुँचती हैं। आप यदि इस प्रकार साढ़े तीन परवलय बनाएं और इन्हें सीधा बीच में से काटें तो कटने पर आपको सात केन्द्र प्राप्त होते हैं।

(यहाँ कोई ऐसा व्यक्ति भी है जो ठीक प्रकार रेखाचित्र बना सके? आप इसे इस प्रकार बना सकते हैं।)

वे नीचे, यहाँ पर आती हैं और नीचे यहाँ पर (आदि मूलाधार) आकर वे बेंधन करती हैं। आप देख सकते हैं कि सात बिन्दुओं को ये शक्ति यहाँ पर काटती है। इस बिन्दु (मूलाधार

चक्र) पर शक्ति प्रथम देवता का सृजन करती है, (थोड़ा सा नीचे) श्रीगणेश का। ये कार्य एक दिन में नहीं होता, एक वर्ष में नहीं होता, एक युग में भी नहीं होता, इसे करने में बहुत से कल्प लगते हैं। पहला कदम श्रीगणेश के सृजन का है, मूलाधार उनका (शक्ति) निवास है और (उसके नीचे) वे श्रीगणेश को स्थापित करती हैं। श्रीगणेश इसमें (पूरे तन्त्र) अपना चैतन्य प्रवाहित करते हैं। शक्ति द्वारा सृजित किए गए पूरे तन्त्र से वे गुजरते हैं। इस चित्र में महासरस्वती के कार्य को दर्शाया गया है। अपने सारे कार्यक्रमों को लेकर वे आती हैं, इस प्रकार वे आती हैं और इन्हें सम्पन्न करती हैं और यहाँ पर वे पुन: मिल जाती हैं। अत: श्रीगणेश उनके माध्यम से अपना चैतन्य प्रवाहित करते हैं।

सर्वप्रथम श्रीमहाकाली, श्रीगणेश का सृजन करती है और तब महासरस्वती आती हैं। इन सारे पदार्थों का सृजन करके वे भी श्रीगणेश से जुड़ जाती हैं। इस प्रकार श्रीगणेश की चैतन्य लहरियाँ महासरस्वती के पूरे सृजन में प्रवाहित होने लगती हैं।

इस सारे सृजन से पहले, श्रीआदिशक्ति को भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं का पूरा विचार और स्पष्ट झलक दिखाई दे जाती है। वे अपनी योजनाओं को कार्यान्वित करती हैं, सर्वप्रथम महालक्ष्मी शक्ति आकर श्रीगणेश का सृजन करती हैं। अब आप समझ सकते हैं कि हम लोगों का पावन होना कितना महत्वपूर्ण है। उन्होंने पृथ्वी पर सर्वप्रथम पावनता का सृजन किया। सबसे पहले बच्चे के साथ अपने सम्बन्ध स्थापित किए, क्योंकि पूरी सृष्टि का सृजन शिशु रूप में होना था।

इसी कारण सर्वप्रथम श्रीगणेश का सृजन हुआ। तत्पश्चात् – यहाँ से आदिशक्ति की दूसरी शक्ति महासरस्वती चल पड़ती हैं और आकर श्रीगणेश से जुड़ जाती हैं। इस प्रकार श्रीगणेश से जुड़ने के बाद वे इसके माध्यम से अपना चैतन्य प्रवाहित करती हैं। महासरस्वती द्वारा सृजित पदार्थों, जैसे हमारी पृथ्वी माँ, में से श्रीगणेश के चैतन्य प्रवाहित होने से, इसके अन्दर धुरी (Axis) चलती है। किसी ने ये धुरी देखी नहीं है परन्तु कहा जाता है, कि एक धुरी है जिस पर पृथ्वी घूमती है। एक प्रकार की धुरी है।

अब, महाकाली की ये शक्ति, हम कह सकते हैं, श्रीगणेश की शक्ति – पृथ्वी माँ की धुरी के बीच से गुजरती है। पृथ्वी माँ में चुम्बकीय शक्तियाँ हैं। इस प्रकार, इसके माध्यम से यह इसकी गति, इसके आड़ोलन को नियंत्रित करती हैं और हमारी देखभाल भी करती है। हम ये क्यों नहीं सोचते कि पृथ्वी में डाला हुआ एक छोटा सा बीज भी स्वत: अंकुरित हो जाता है।

अब आपने देखा है, आपमें से बहुत से लोग भिन्न कष्टों और रोगों से पीड़ित थे और पृथ्वी माँ ने स्वयं आपकी समस्याएं ले ली हैं। उन्होंने ये समस्याएं आत्मसात कर ली हैं। ये वास्तविकता है। सहजयोग में आप देख सकते हैं, कि आत्मसाक्षात्कार के बाद यदि आपको

कोई समस्या हो, आपका सिर यदि भारी हो तो ये ठीक होने लगता है, परन्तु यदि आप आत्मसाक्षात्कारी हैं तो, अन्यथा ये आपकी बात नहीं सुनती, क्योंकि आपका गतिशील होना आवश्यक है, आपके पास आदिशक्ति का प्रमाणपत्र होना चाहिए कि आप आत्मसाक्षात्कारी हैं अन्यथा क्यों ये आपको स्वीकार करें? आप पृथ्वी को अपने मस्तक से स्पर्श करें, अपने दोनों हाथ पृथ्वी माँ पर रखें और आपको लगेगा कि आपके कपाल से सारा भारीपन खींच लिया गया है। बहुत से लोगों के साथ ऐसा हुआ है, टाँगों से भी पृथ्वी माँ समस्याएं खींच (सोख) सकती हैं।

पृथ्वी माँ, वास्तव में श्रीआदिशक्ति की माँ हैं, आप ऐसा कह सकते हैं। कहा जाता है, कि वे माँ हैं, क्योंकि उनका सृजन इस प्रकार हुआ है कि वे पूरे विश्व का भार स्वयं पर ले लेती हैं। पूरे विश्व का भार वे नियंत्रित करती हैं। आपका सारा वजन संभाल सकती हैं, वे 'धरा' हैं (अर्थात् धारण करने वाली)

अब वज़न का अर्थ वह वज़न नहीं जिसे हम तोल सकें, ये बात नहीं है। वज़न का अर्थ आपके पाप और पुण्य भी हैं, इसमें सभी कुछ निहित है। आपमें यदि पापों का वज़न बहुत अधिक है तो पृथ्वी माँ को कष्ट होता है। पृथ्वी पर जब बहुत अधिक पाप होने लगते हैं तो पृथ्वी माँ को सहायता माँगनी पड़ती है और तब किसी अन्य देवता – जैसे साक्षात् श्रीविष्णु को पृथ्वी पर अवतरित होकर पृथ्वी माँ की पापों के इस भारी वज़न से रक्षा करनी पड़ती है। ये सत्य है, मैं आपको कोई पौराणिक कथा नहीं सुना रही, यह वास्तविकता है। चैतन्य लहरियाँ प्राप्त करने के बाद आप उसका सत्यापन कर सकते हैं। चैतन्य लहरियाँ प्राप्त करने से पूर्व आप पृथ्वी माँ से इस बात का पता नहीं लगा सकते। आप यदि आत्मसाक्षात्कारी हैं, और यदि आप जानना चाहते हैं तो साक्षात्कार के बाद पृथ्वी माँ पर खड़े होकर उनसे पूछें, 'हे पृथ्वी माँ, क्या आप मेरे दोषों को दूर कर देंगी? क्या आप मेरे कर्म ले लेंगी? मुझे आत्मसाक्षात्कार मिल गया है।' तुरन्त पृथ्वी माँ सोखने लगती हैं। आपको हैरानी होगी, आपको अत्यन्त हल्केपन का एहसास होगा। आपको पृथ्वी माँ का उपयोग करना होगा। इस प्रकार पृथ्वी माँ का सृजन हुआ।

परन्तु आदिशक्ति ने अपनी महासरस्वती शक्ति के माध्यम से पंचतत्वों का सृजन भी किया है। सभी चीज़ों के सृजन से पूर्व उन्होंने तन्मात्रा का सृजन किया। इसके सूक्ष्म विवरणों में यदि मैं जाऊंगी तो आपके लिए इसे समझ पाना कठिन होगा। परन्तु सर्वप्रथम उन्होंने कारणात्मक सारतत्वों (Causal essences) का सृजन किया। परन्तु यदि मैं इस प्रकार कहूँ तो कुछ गलत न होगा – यदि मैं कहूं कि अपनी एक दृष्टि मात्र से (कटाक्ष मात्र) से उन्होंने 'प्रकाश' का सृजन किया। अपने श्वास लेने भर से उन्होंने 'वायु' का सृजन किया क्योंकि उनकी इच्छा अन्तिम इच्छा है और उन्होंने इच्छा की कि 'वायु' होनी चाहिए, और 'वायु'

का सृजन किया। इसी प्रकार उनकी अपनी सुगन्ध है, उन्होंने कारणात्मक 'गन्ध' का सृजन किया, इसका सृजन उन्होंने पृथ्वी माँ में किया। उन्हीं से, केवल उन्हीं से, उनकी इच्छा से, उनकी चाहत से, उनके लिए इसका सृजन हुआ और पूरे ब्रह्माण्ड में इसका सृजन किया गया और इसी ब्रह्माण्ड को बाद में पृथ्वी, चाँद, सूर्य तथा अन्य सभी कुछ बना दिया गया। वास्तव में ये उनकी इच्छा मात्र थी जिसके कारण ये सारी चीज़ें बनीं।

हमारे लिए ऐसे किसी व्यक्तित्व के बारे में सोचना असम्भव है जिसकी इच्छा मात्र ये सारा सृजन कर सकती हो। परन्तु जब हम किसी ऐसे व्यक्ति के विषय में सोचते हैं जो विश्व की सभी शक्तियों से ऊपर है, जो सर्वोच्च हैं, वे (शक्ति) अपनी इच्छानुरूप कुछ भी कर सकती हैं! क्या हम ऐसा नहीं सोच सकते? हम ऐसे किसी मानव के विषय में नहीं सोच सकते। हम परमात्मा के विषय में सोचते हैं जिन्हें हम 'सर्वशक्तिमान' कहते हैं, परन्तु उनकी शक्तियों की बात करते हुए हमें हँसी आ जाती हैं! ऐसा कैसे हो सकता है?

परन्तु वो जो चाहे कर सकती हैं – उनकी इच्छा मात्र से पूरी सृष्टि का, विश्व भर में दिखाई देने वाली सभी चीज़ों का सृजन हुआ, केवल उनकी इच्छा मात्र से। उन्होंने आकाश का सृजन किया, इन सभी पंचतत्वों का सृजन किया जिनके विषय में आप जानते हैं। तत्पश्चात् उन्होंने अपना दूसरा रूप आरम्भ किया जिसे हम महालक्ष्मी रूप कहते हैं।

इससे पूर्व, मैं सोचती हूँ मुझे पदार्थ (Matter) में श्रीगणेश के अस्तित्व के विषय में आपको बताना चाहिए। पदार्थ में वे चैतन्य लहरियों के रूप में कार्य करते हैं, महासरस्वती की चैतन्य लहरियों के रूप में।

ये विद्युत चुम्बकीय चैतन्य लहरियाँ हैं, महासरस्वती की चैतन्य लहरियाँ विद्युत चुम्बकीय हैं। हम कह सकते हैं कि ये विद्युत चुम्बकीय (Electro Magnetic) हैं और इनमें ध्वनि भी है और इनमें पंचतत्वों की अभिव्यक्ति भी होती है। आप इन्हें रिकार्ड कर सकते हैं – क्योंकि यदि आप सल्फरडॉयक्साइड लें, उदाहरण के रूप में – एक सल्फरडॉयक्साइड ...... और दो ऑक्सीजन और एक सल्फर और इसे ठीक प्रकार से उच्च शक्ति के सूक्ष्मदर्शी यन्त्र (Microscope) से देखें – आप प्रयास कर सकते हैं, मैं नहीं जानती लोगों ने ऐसा करने का प्रयास किया है या नहीं, परन्तु पता लगाने के लिए आप ऐसा कर सकते हैं – और इसे अत्यन्त उच्चशक्ति के सूक्ष्मदर्शीयन्त्र के नीचे रखें तो आप देख पाएंगे कि ऑक्सीजन और सल्फर में से सल्फर निश्चल है, परन्तु इन दोनों से चैतन्य प्रवाहित हो रहा है। ये चैतन्य प्रवाहित कर रहे हैं। इन दोनों पिण्डों के बीच चैतन्य लहरियाँ चल रही हैं। इन चैतन्य लहरियों में सामंजस्य (symmetric) भी हो सकता है और असामंजस्य (Asymmetric) भी, ये समतल भी हो सकती हैं और असमतल भी, और इस तरह से समीप आते हुए ये विस्तृत भी हो सकती हैं।

अत: हम पाते हैं कि चैतन्य लहरियाँ तीन प्रकार की हैं। और चौथा पक्ष साक्षात् श्रीगणेश के अतिरिक्त कुछ भी नहीं, श्रीगणेश, जो नियंत्रण कर रहे हैं।

यदि आप देखना चाहें तो ये सब आप अपनी आँखों से देख सकते हैं, चाहे आप आत्मसाक्षात्कारी हों या न हों। सूक्ष्मतम परमाणु में जिसे Molecule कहते हैं, उसमें भी ये चैतन्य लहरियाँ कहाँ से आती हैं? परमाणु में चैतन्य लहरियाँ कहाँ से आती हैं? क्या आप इसकी व्याख्या कर सकते हैं?

यह इतना सूक्ष्म है – परासूक्ष्म।

श्रीगणेश की शक्तियाँ अत्यन्त अत्यन्त सूक्ष्म हैं, ये पदार्थ में प्रवेश करती हैं और इस प्रकार की चैतन्य लहरियों का सृजन करती हैं। इन्हें आप देख सकते हैं, रिकार्ड कर सकते हैं – छोटे से परमाणु के अन्दर भी विद्युत चुम्बकीय चैतन्य लहरियाँ हैं।

अत:, जैसा मैंने आपको बताया, इनमें, आवर्त नियम में, तत्वों के आवर्त (नियतकालिक) नियम (Periodic Laws) से आप ये पता लगा सकते हैं कि सभी तत्व आठ प्रकार से विभाजित किए जा सकते हैं। आइए देखते हैं कि बिना किसी व्यक्ति की उपस्थित के सभी तत्व किस प्रकार आठ भागों में विभाजित हो सकते हैं। (इन तत्वों के आवश्यक रेखाचित्र की व्यवस्था के बिना क्या आप कुछ कर सकते हैं?) इसके विषय में सोचें। देखिए, जब हम परमात्मा को चुनौती देते हैं, तो हमें समझना चाहिए कि विश्व की हर चीज़ भली–भाँति आयोजित है, आठों तत्व अच्छी तरह से विस्तृत हैं, भली–भांति स्थापित हैं। इनके आचरण की एक विशेष शैली है। हर तत्व की संख्या और प्रोटोन भिन्न हैं और ये संख्याएं इस प्रकार भली–भांति गिनी हुई हैं कि अन्त में – अन्तिम चक्कर – सभी प्रोटोन के अन्तिम चक्करों की संख्या आठ होनी चाहिए। यदि ये संख्या आठ नहीं है, यदि ये आठ से कम है, तो संयोजकता की समस्या उत्पन्न हो जाती है। ये इतनी अच्छी तरह से आयोजित है कि, चाहे आप इसका अध्ययन करें, कोई यदि थोड़ा सा रसायनशास्त्र जानता हो तो यह अत्यन्त अद्‌भुत चीज़ है। हम इसे स्वीकृत मान लेते हैं। पदार्थों का भली–भांति आयोजित होना हम अपना अधिकार मान लेते हैं। परन्तु सारी संयोजकताएं इन आठ प्रोटोन की अन्तिम आयोजन की सुव्यवस्था पर निर्भर करती हैं।

ये सारा कार्य महासरस्वती की शक्ति द्वारा किया जाता है। परन्तु चैतन्य प्रसारक शक्ति, ...। अब देखें, एक चैतन्य प्रसारक शक्ति भी है। ये सारा कार्य, जैसा मैंने बताया महासरस्वती शक्ति द्वारा किया जाता है। वे सृजन करती है। अब यह चैतन्य प्रसारक शक्ति ...... इसका अस्तित्व है, पदार्थ का भी अस्तित्व है। अस्तित्व होना आवश्यक है। इसके अस्तित्व के बिना किसी चीज़ का भी अस्तित्व नहीं रहेगा। अत: केन्द्रक पर विराजमान श्रीगणेश के माध्यम से कार्यशील महालक्ष्मी शक्ति प्रदान करती है। वे (श्रीगणेश) हर अणु

और परमाणु के केन्द्रक पर विराजमान हैं। क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि ये सब कितना होगा? इसका परिणाम (अन्त) आप नहीं समझ सकते।

अब देखें – स्वर्ण जैसा एक तत्व लें, इसमें कितने परमाणु हैं? क्या आप इसकी गणना कर सकते हैं? आप कह सकते हैं, हाँ इसमें अणु हैं परन्तु आप इनकी गणना नहीं कर सकते। तो श्रीगणेश की कितनी तस्वीरें होगी? इसे इसी प्रकार पाया जा सकता है।

मैं आपको एक अन्य चीज़ भी बताऊंगी। अनन्त प्रतिबिम्ब किस प्रकार पकड़े जा सकते हैं और शिव और आदिशक्ति जैसी दो शक्तियाँ क्यों हैं? कारण ये है कि इसे अनन्त प्रतिबिम्बों का सृजन करना है। अनन्त प्रतिबिम्बों का सृजन किस प्रकार किया जाएगा? क्या आप जानते हैं? भौतिक विज्ञान जानने वाला कोई व्यक्ति है?

दो दर्पणों के बीच में यदि आप कोई चीज़ रख दें तो अनन्त प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ते हैं। अत: आदिशक्ति प्रथम दर्पण हैं और द्वितीय दर्पण यह सृष्टि है। और इस प्रकार पृथ्वी पर आपको अनन्त प्रतिबिम्ब प्राप्त होते हैं। इसी कारण आपको अनन्त प्रतिबिम्ब प्राप्त होते हैं। इसलिए एक अन्य प्रतिबिम्बक का सृजन करना पड़ा, इसलिए तीन अस्तित्व बनाने पड़े – एक सर्वशक्तिमान परमात्मा, दूसरे आदिशक्ति और तीसरे पूरा ब्रह्माण्ड।

इसे इसी प्रकार होना था, अन्यथा अनन्त प्रतिबिम्बों का सृजन नहीं किया जा सकता। अब जिस भी व्यक्ति ने यह कार्य किया होगा, वह अवश्य चतुर रहा होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है। जब मानव सोचता है कि अपनी बुद्धि से वह परमात्मा को जान सकता है, तो उसे समझना होगा कि इस बुद्धि से आप वहाँ तक कैसे पहुँच सकते हैं? वे तो सर्वोच्च हैं।

हमारा सृजन करने के लिए उन्होंने कितना परिश्रम किया। पदार्थ के सृजन के बाद परमात्मा, या मुझे कहना चाहिए, उनकी शक्ति महालक्ष्मी पृथ्वी पर अवतरित हुईं। महालक्ष्मी संभरण (सम्पोषण) में सहायक हैं। संभरण अर्थात् इन सभी तत्वों का सूक्ष्म अवलोकन।

जब वे पदार्थ का सृजन करते हैं, पदार्थ का सृजन भिन्न प्रकार से होता है, भिन्न उद्देश्यों के लिए इनका सृजन होता है। तो चरम उद्देश्य क्या है?

सृजन का चरम उद्देश्य मानव का सृजन है – इस सृष्टि की कल्पना करें।

आप लोग इतने महान हैं कि आपके लिए ये सभी कष्ट सहन किए गए। मानव इतना महान है कि ये सारे कष्ट सहन किए गए। सारे पदार्थ, हर चीज़ का उपयोग आपके सृजन के लिए किया गया। यही चरम लक्ष्य है। एक प्रकार का मंच सजाया गया, और आप आए, आप कह सकते हैं कि सहजयोगी मंच पर आए।

केवल मानव उपकरण का सृजन किया गया। परमात्मा मानव उपकरण का सृजन

क्यों करना चाहते थे? क्योंकि वे चाहते थे कि ऐसा उपकरण हो जो उन्हें महसूस कर सके, समझ सके, जो श्रीकृष्ण की तरह मुरली की धुन से प्रेम प्रवाहित कर सके।

हमारे (शरीररूपी) उपकरणों के माध्यम से वे अपनी भक्ति संचारित करना चाहते थे। परन्तु ये कार्य वे निर्जीव उपकरणों के माध्यम से नहीं करना चाहते थे, जीवन्त उपकरणों के माध्यम से करना चाहते थे। मान लो, यदि ये समझ सके, प्रेम कर सके, इसमें मानव मस्तिष्क हो और मेरी आवाज़ इसके अन्दर से ऐसे गुज़र सके जैसे ये (बाँस की तरह) खाली है, तब हम कह सकते हैं कि यह आत्मसाक्षात्कारी है। परन्तु यह जीवन्त नहीं है। आप जीवन्त हैं। इतनी कठिनाई से आपको विशेष रूप से मेरे लिए बनाया गया है और अत्यन्त सावधानी से, कोमलतापूर्वक, एक के बाद एक को कार्यान्वित किया गया है।

अब हमें शीघ्रता से उत्क्रान्ति पक्ष की बात करनी होगी, क्योंकि आप जानते हैं, यह बहुत लम्बा विषय है। अत: अब हमें महत्वपूर्णतम पक्ष, 'उत्क्रान्ति' पर आना होगा, इसे समझना होगा, क्योंकि (अभी तक) हम उत्क्रान्ति को विज्ञान के माध्यम से ही जानते हैं।

जब ये तीनों शक्तियाँ अस्तित्व में आ जाती हैं – ये पृथ्वी, ब्रह्माण्ड या किसी अन्य चीज़ के सृजन से पूर्व – सर्वप्रथम उन्हें इनकी एक उपयुक्त तस्वीर बनानी तथा इसकी पर्याप्त सूझ–बूझ प्राप्त करनी आवश्यक थी। जैसे किसी कार्य को करने से पूर्व हमें उसकी योजना बनानी होती है। हमारे पास एक योजना–आयोग है, सर्वप्रथम हम योजना–आयोग में बैठते हैं। इसी प्रकार, सर्वप्रथम उन्हें एक मंच बनाना पड़ा जहाँ पर योजना बनाई जा सके। इस मंच को हम वैकुण्ठ अवस्था कह सकते हैं। यह प्राचीनतम नहीं है, इसका सृजन बाद में किया गया। सर्वप्रथम योजनावस्था है जो वैकुण्ठ अवस्था कहलाती है। इस अवस्था में सभी अवतरणों का सृजन किया गया। अवतरणों का सृजन पृथ्वी के सृजन के बाद नहीं किया गया, यह गलत धारणा है। सभी अवतरणों का सृजन वैकुण्ठ अवस्था में किया गया। उस समय जब आपके चक्षुओं का ही अस्तित्व नहीं था। पृथ्वी का भी कोई अस्तित्व नहीं था तथा किसी ऐसी चीज़ का भी अस्तित्व नहीं था जिसे आप अपनी आँखों से देख सकें। परन्तु जीवन की एक अवस्था, पहली अवस्था, वैकुण्ठ नामक अवस्था, का अस्तित्व था। इस वैकुण्ठ अवस्था में पूरे ब्रह्माण्ड की, पूरी विश्व व्यवस्था की योजना बनाई गई और इसके विषय में पूरे निर्णय लिए गए।

अत: सर्वप्रथम आने वाले अवतरण श्रीशिव थे क्योंकि उनके बिना किसी चीज़ का अस्तित्व ही न बन पाता। परन्तु उन्हें (श्रीशिव) कहाँ स्थापित किया जाए, उन्हें कहीं पर तो प्रतिबिम्बित होना था।

यदि श्रीशिव को किसी पर प्रतिबिम्बित होना था तो उस प्रतिबिम्बक का सृजन भी आवश्यक था। अत: उन्हें एक आदिपुरुष, एक विशाल अस्तित्व जिसे आप विराट कह

सकते हैं, के सृजन के विषय में सोचना पड़ा। उन्होंने विराट का सृजन किया। ये विराट होंगे, अदि पुरुष (Primordial Being) का पूर्ण रूप। मैं इन्हीं के विषय में आपको बता रही हूँ, इस प्रतिबिम्बक के विषय में। सर्वप्रथम। सर्वशक्तिमान परमात्मा को प्रतिबिम्बित होना है – तो सबसे पहले हमें आदि–पुरुष – विराट का सृजन करना होगा।

विराट में उन्होंने भिन्न अवतरणों का सृजन किया। अवतरणों का सृजन मनुष्यों में से नहीं किया गया। मैं नहीं जानती लोग ऐसा क्यों सोचते हैं – मनुष्यों से अवतरणों का सृजन नहीं किया जा सकता। उनका सृजन पहले किया गया। मानव के अमीबा अवस्था से मानव अवस्था तक विकास की बात ठीक है, परन्तु अवतरणों का कोई विकास नहीं होता। उनका सृजन आरम्भ से ऐसे ही किया जाता है।

जैसे आपने देखा है विराट में – मैंने आपको विराट की एक तस्वीर दिखाई है – तीनों शक्तियाँ – महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती – आज्ञा चक्र पर मिलीं। और वहाँ उन तीनों ने दो–दो बच्चों को जन्म दिया। ये कथा नहीं है, ये सत्य है – भाई–बहनों के रूप में। भाई–बहनों का अर्थ ये है कि ये सम्बन्ध अस्थायी प्रकार का तो है परन्तु यह सूक्ष्म स्वभाव का है। फिर उनके विवाह हुए, अन्तर्सम्पर्क (Inter Communication) घटित हुआ। महालक्ष्मी, महासरस्वती और महाकाली ने कुल मिलाकर छ:बच्चों का सृजन किया, जिनके परस्पर विवाह हुए। अन्तर्विवाह हुए। इन अन्तर्विवाहों से उन्हें एक व्यक्तित्व प्राप्त हुआ जो गतिज (Kinetic) था और जिसमें संभाव्य शक्ति (Potential Energy) थी। ऐसा सम्मिश्रण था। इन अवतरणों को भिन्न चक्रों पर स्थापित किया गया। ऊपर, आज्ञा चक्र से नीचे की ओर लाकर उन्हें भिन्न चक्रों पर स्थापित किया गया। ये अवतरण, आप जानते हैं, विराट के भिन्न चक्रों पर स्थापित किए गए हैं।

बहुत से लोग इस बात को नहीं समझेंगे और ये बातें सुननी उन्हें अच्छी भी नहीं लगेंगी, क्योंकि मानव इतने अहंकारी हैं कि उन्हें ये बात समझ नहीं आती कि एक परमात्मा हैं जो सर्वशक्तिमान हैं। सारे कार्य करते हैं, सभी कार्य करने के उनके अपने ही तरीके हैं। मैं सत्य कह रही हूँ या असत्य, इसका सत्यापन आप चैतन्य लहरियों पर कर सकते हैं। आप स्वयं देख सकते हैं कि अवतरणें का सृजन किस प्रकार किया गया। इन सभी अवतरणों को यहाँ, विराट अवस्था में, इस प्रकार स्थापित किया गया कि दूसरी ओर प्रतिबिम्ब का सृजन हो सके। शिव को शक्ति से अलग कर दिया गया, क्योंकि वे आरम्भ में ही अलग हुए थे, उन्हें विराट के शिखर पर सदाशिव की पीठ के रूप में स्थापित कर दिया गया। इसी प्रकार, हमारे सिर के शिखर पर भी सदाशिव की पीठ है। हम प्रतिबिम्बक के प्रतिबिम्ब (Reflection of the reflector) हैं। अत: हमारी शैली भी वैसी ही है, हमारे सिर पर भी सदाशिव की पीठ है। उन्हें केवल यहीं स्थापित किया गया है। माँ के गर्भ में कुण्डलिनी जब भ्रूण में प्रवेश करती है,

उस समय सदाशिव की पीठ, या हम कह सकते हैं, सदाशिव अपनी पीठ से उतरकर हृदय में आ जाते हैं और हृदय की पहली धड़कन सुनाई देती (आरम्भ होती) है। यह भी बिल्कुल वैसी ही है जैसे विराट में घटित हुआ। परन्तु वैकुण्ठ–अवस्था तक इसका सृजन नहीं हुआ था। यहाँ पर दूसरे प्रतिबिम्बक का सृजन नहीं हुआ था। यहाँ पर दूसरे प्रतिबिम्बक का सृजन नहीं हुआ था, केवल पहला प्रतिबिम्बक था। अत: सर्वप्रथम, केवल विराट का सृजन किया गया, और योजनावस्था में, विराट के शरीर में, अदिशक्ति ने सबसे पहले इन अधिकारियों, आप कह सकते हैं चक्रों के शासकों का सृजन किया।

परमात्मा साक्षी हैं और आदिशक्ति लीला कर रही हैं, और वे ही इन चक्रों का सृजन करती हैं। चक्रों पर शासन करने के लिए वे इन देवी–देवताओं को स्थापित करती हैं।

अब, विराट अवस्था के अन्दर अस्तित्व है, सृष्टि है, सृष्टा शक्ति (Creative force) है तथा विकासात्मक शक्ति है।

यह सब वैकुण्ठ अवस्था में है, हम कह सकते हैं, क्योंकि ये प्रथम प्रतिबिम्बन की अवस्था है। ये हमारे अन्दर नहीं है, हम इसे अनुभव नहीं कर सकते–इस वैकुण्ठ अवस्था को, क्योंकि यह प्राथमिक अवस्थाओं में से है।

तत्पश्चात् एक अन्य अवस्था का सृजन किया गया, तब तीसरी अवस्था का सृजन हुआ, फिर चौथी का – भवसागर अवस्था का – वह अवस्था जिसमें हम सबका जन्म हुआ।

सर्वप्रथम, चौथी अवस्था में, – क्या आप किसी चतुर्स्तरीय व्यक्तित्व के विषय में सोच सकते हैं जो दर्पण के सामने खड़ा हो? अब, सर्वप्रथम दिखाई देने वाला, सर्वोच्च है। इसी कारण भवसागर सर्वप्रथम (Topmost) दिखाई पड़ता है। परन्तु यदि आप अपनी अवस्था की गहराई में जा पाएं तो अन्य तीन को भी महसूस कर सकते हैं। परन्तु सर्वप्रथम जिसे आप देख और महसूस कर सकते हैं वह भवसागर है। तो, आपका जन्म भवसागर में होता है। इस अवस्था में आप भवसागर अवस्था में होते हैं। इस भवसागर अवस्था में आपका सृजन किया गया और इसी में आपको विकसित होना है।

इस समय आपको विकसित करने के लिए महालक्ष्मी शक्ति गतिशील होती हैं। आप पहले से ही जानते हैं कि विकास किस प्रकार हुआ, परन्तु मैं आपको ये बताऊंगी कि हमारे पुराणों के अनुसार मानव का विकास किस प्रकार घटित हुआ और यह सत्य है।

मानव का विकास, अमीबा से आरम्भ हुआ, ऐसा आप कह सकते हैं, क्योंकि जीवन का आरम्भ जल में हुआ। जैसा मैंने आपको बताया, सर्वप्रथम जल का सृजन हुआ। जल में अमीनो–एसिड्स (Amino Acids) बने, अमीबा बने, मछलियाँ बनी और जब मछलियाँ बनी तो छोटी मछलियों को लगा कि जीवित रहना कठिन है क्योंकि बड़ी मछलियाँ उन्हें खा

जाने का प्रयत्न करती हैं। यह सब पारस्परिक (Reciprocal) था। इस विनाश से वे पूरी तरह तंग आ चुकी थीं। इस समय स्वयं श्रीविष्णु, जो स्वयं विकासात्मक शक्ति हैं, मत्स्य अवतार में इस पृथ्वी पर अवतरित हुए। उन्होंने कुछ मछलियों की तट तक आने में सहायता की। उनमें सागर को पार करने का साहस था और मत्स्य रूप में वे उनकी अगुआ थीं। तत्पश्चात् अन्य कुछ मछलियाँ भी सागर को पार करने लगीं। विकास की ये पहली अवस्था थी, जिसे हम जानते हैं। विकास की अवस्था में, जैसे आप जानते हैं, बाद में इन मछलियों ने रेंगने वाले जीवों का रूप धारण कर लिया, परन्तु, वे रेंगने वाले जीव किस प्रकार बने? उनका नेतृत्व करने वाला कोई तो होगा। एक बार फिर ये कार्य श्रीविष्णु ने किया, जो कूर्म (कछुआ) रूप में पृथ्वी पर अवतरित हुए और वैकुण्ठावस्था में इस बार उन्होंने बहुत से कार्य किए। कूर्म अवतार में पृथ्वी पर अवतरित होने से पूर्व वैकुण्ठावस्था में जब पृथ्वी का सृजन हुआ तो पूरे विराट की योजना बनाई गई और योजना तथा सृजन के फलस्वरूप कुछ कचरा बन गया – एक प्रकार का रद्दी पदार्थ।

ये रद्दी पदार्थ संदूषित हो गया, या हम कह सकते हैं कि अनदेखी होने के कारण एक ओर से, सड़ गया। इसके माध्यम से कुछ शैतानी शक्तियाँ विकसित होने लगीं तथा आसुरी शक्तियाँ विकसित होने लगीं तथा आसुरी शक्तियों और अच्छी शक्तियों में भयानक युद्ध हुआ। वास्तव में ये घटना तीसरी अवस्था में घटित हुई, वैकुण्ठावस्था में नहीं, तीसरी अवस्था में। क्योंकि जब योजना आरम्भ हुई, कार्यान्वियन आरम्भ हुआ, तभी इन आसुरी शक्तियों का भी आरम्भ हुआ।

लोग कह सकते हैं, कि 'परमात्मा ने आसुरी शक्तियों का सृजन क्यों किया?' उन्होंने ये कार्य नहीं किया, संयोगवश ऐसा हो गया। क्योंकि दूसरी अवस्था में जब कुछ देवताओं का सृजन किया गया–ये भी अभी तक विकसित नहीं थे, इनका सृजन मात्र हुआ था, वे इस सारे कार्य और सभी तत्वों के प्रभारी थे, क्योंकि कार्यक्षेत्र में जाकर कार्यान्वियन करने के लिए अधिकारी भी बनाने पड़ते हैं। कार्य करते हुए, सृजित देवी–देवताओं में से कुछ भटक गए और आसुरी शक्तियाँ बन गए। एक प्रकार का अपशिष्ट उत्पाद (Waste product) पनप गया। इस अपशिष्ट उत्पाद से आसुरी शक्तियों का आरम्भ हुआ और इन आसुरी शक्तियों ने इस प्रकार कार्य किया कि कूर्मावतार के समय में राक्षसों और देवों में युद्ध हुआ। सभी अच्छे लोग, जो तत्वों के प्रभारी थे, परमात्मा के कार्यालय में कार्य करने वाले सभी लोग, इन आसुरी शक्तियों से युद्ध करने लगे। उस समय स्वयं परमात्मा ने इसका समाधान किया, आप जानते हैं अमृत मनवंतर में क्या हुआ – ये बात लोगों को समझ नहीं आती कि भवसागर में अमृत मनवंतर (मंथन) किस प्रकार हो सकता है – ऐसा नहीं हुआ। जिस अवस्था में ये घटित हुआ वह भवसागर अवस्था नहीं थी। ये घटना भवसागर में नहीं घटित हुई।

अब हम भवसागर अवस्था में हैं। भवसागर अवस्था में वही कूर्म अवतार जो जन्म लेकर पृथ्वी पर आए और हमें रेंगने वाले जीव बनने की सूझ–बूझ प्रदान की, हम भी इसी प्रकार विकसित हुए। तो सारी विकास प्रक्रिया काफ़ी समय ले गई। मैं इसके विस्तार में नहीं जाऊंगी, परन्तु अन्तत: एक मानव का सृजन हुआ। ये सारा कार्य महालक्ष्मी शक्ति ने किया जिन्होंने श्रीविष्णु के माध्यम से कार्य किया और जिसके विषय में मैंने आपको बताया है कि विकास किस प्रकार घटित हुआ और आपको किस प्रकार बनाया गया।

अब क्या होने वाला है? आप इस बिन्दु तक पहुँचते हैं (आज्ञा), इस बिन्दु पर जहाँ ईसामसीह आए – ईसामसीह भी अवतरण थे – और उनकी माँ साक्षात् श्रीराधा जी थीं, साक्षात् महालक्ष्मी, कोई अन्य नहीं। वे मानव को इस अवस्था तक लाए।

इसके बाद, अब मानव ने क्या बनना है? उसे उस अवस्था में प्रवेश करना है जहाँ वह निर्विचार हो जाए अर्थात् जहाँ भवसागर की चेतना शेष न रहे, इससे ऊपर उठ जाएं। इस अवस्था से आप सर्वव्यापी अचेतन की अवस्था में डुबकी लगा लेते हैं। यहाँ पर भी उसी शक्ति का साम्राज्य है, जो तीनों शक्तियों का समग्र रूप है। यह तीनों शक्तियों का संश्लेषण हैं – यह आदिशक्ति की शक्ति है। आदिशक्ति की शक्ति सर्वव्यापी है – सर्वत्र विद्यमान है, परन्तु हम इसे महसूस नहीं कर पाते। क्यों? क्योंकि हमारी स्थिति अत्यन्त स्थूल है। हम कह सकते हैं, एक नली, जिसके अन्दर तीनों ओर नलियाँ हैं। इनमें से केवल एक बाह्य नली का उपयोग किया जा सकता है, क्योंकि अन्दर की सभी नलियाँ बन्द हैं। जब सबसे अन्दर की नली खुलती है तब आप पूरी तरह आत्मसाक्षात्कारी हो जाते हैं। दूसरी नली के खुलने पर आप सर्वशक्तिमान परमात्मा की सर्वव्यापी शक्ति को महसूस कर सकते हैं, इसे हम सर्वव्यापी शक्ति कहते हैं। अचेतन।

परन्तु अब ये आपके लिए अचेतन नहीं है क्योंकि अब आपमें इसकी चेतना है।

इस प्रकार आप परमात्मा से वार्तालाप (सम्पर्क) आरम्भ कर सकते हैं। होता ये है कि यहाँ प्रतिबिम्ब है, प्रतिबिम्बक है और प्रतिबिम्बन – कार्य है, यहाँ से आप इस क्षेत्र में उन्नत होते हैं। आप इस अवस्था तक उन्नत होते हैं। आप ये बन नहीं जाते परन्तु इस क्षेत्र तक उन्नत हो जाते हैं। यहाँ से आप इस क्षेत्र में प्रवेश करते हैं और यह क्षेत्र आदिशक्ति की सर्वव्यापी शक्ति से परिपूर्ण है।

इस अवस्था तक पहुँचे बिना, आपको एक अवतरण की अवस्था तक उठना होता है, और ये बहुत बड़ा फासला है। परन्तु मैं कह सकती हूँ कि महावीर और बुद्ध दोनों इस ऊँचाई तक उन्नत हुए। परन्तु उनके शिष्यों को देखिए।

उदाहरण के रूप में बुद्ध के शिष्य। उन्होंने शिव को भुला दिया, सभी देवी–देवताओं को भुला दिया, मानो वे इनके विषय में कुछ अधिक जानते ही न हों। और जिस प्रकार

इन्होंने कुछ प्रतिमाओं में दर्शाया है, कि एक देवी शिव और पार्वती से ऊपर खड़ी हुई है और संहार करने का प्रयत्न कर रही है। वह श्रीगणेश को चोट पहुँचा रही है। ये सभी कुछ अत्यन्त मूर्खतापूर्ण है। कहने का अभिप्राय ये है कि उन्होंने सारे कार्य करने वाली, एक संघटित धारणा, एक संघटित मस्तिष्क वाली संघटित शक्ति की छवि को पूर्णत: नष्ट कर दिया।

समग्रता के अभाव में ये राक्षस बन गए और इन्होंने आसुरी शक्तियाँ बना लीं।

जैसा मैंने आपको बताया, ये बहुत कठिन विषय है और सबसे बुरी बात ये है कि मैंने अंग्रेजी भाषा में इसकी व्याख्या करने का प्रयास किया है। अपनी योग्यतानुसार मैंने भरसक प्रयत्न किया है, फिर भी यदि आपके कोई प्रश्न हों, तो कभी आप पूछ सकते हैं। इनके विषय में मुझे लिख सकते हैं, हम इनका समाधान करेंगे।

(कल.....) अब केवल ये बात है – मैं आपको इसके विषय में बताना चाहती थी कि अब आपको 'निर्विचार चेतना' प्राप्त हो गई है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। आपमें से अधिकतर को निर्विचार चेतना प्राप्त हो गई है। आपको चैतन्य लहरियाँ प्राप्त हो गई हैं, परन्तु आपको निर्विकल्प में छलांग लगानी होगी। निर्विकल्प में। और ये छलांग आपको गहन ध्यान–धारणा और गहन अनुभूतियों (exposure) द्वारा लगानी होगी। अन्यथा, आप जानते हैं, जरा सी निर्विचारिता की अवस्था प्राप्त करने का कोई लाभ नहीं है। आपको, निर्विकल्प में छलांग लगानी होगी। यह वह अवस्था है, जैसे मैंने आपको बताया, प्रतिबिम्बक से थोड़ी सी आगे की अवस्था।

परन्तु अब भी आपमें से बहुत से लोग, ऊपर–नीचे होते रहते हैं। जैन धर्म में इसे सतोरी (Satori) अवस्था कहते हैं – जहाँ व्यक्ति ऊपर–नीचे होता रहता है, बाधाओं की पकड़ में आ जाता है, ये वो करने में लगा रहता है। इस अवस्था पर नियंत्रण करना होगा। तब आप निर्विकल्प अवस्था प्राप्त कर पाएंगे। निर्विकल्प अवस्था पर पहुँच कर आप बाधाओं से बहुत अधिक प्रभावित नहीं होते। तब आप चिन्ता नहीं करते। अभी तक मुझे एक भी मनुष्य ऐसा नहीं मिला। मैं अत्यन्त महान सन्तों और साक्षात्कारी लोगों से मिली हूँ और कह सकती हूँ कि वो निश्चित रूप से आत्मसाक्षात्कारी हैं। उनका प्रकृति पर भी नियंत्रण है, उनमें से कुछ का, परन्तु फिर भी उनके चक्रों पर पकड़ है, ये आश्चर्य की बात है।

परन्तु मनुष्य तो ऐसे ही हैं, वो बाधाओं की पकड़ में आ जाते हैं, पूर्ण आत्मसाक्षात्कार की तीसरी स्थिति में पहुँच कर भी वे पुन: सतोरी (Satori) अवस्था में आ जाते हैं और इसी प्रकार आते–जाते रहते हैं। परन्तु मैंने देखा है कि अब तक मुझे एक भी ऐसा मनुष्य नहीं मिला जिसमें कोई बाधा न हो और जिसे मैं पूर्ण आत्मसाक्षात्कारी कह सकूं।

मेरे अतिरिक्त, मुझे लगता है, सभी लोग पकड़ रहे हैं। ये अत्यन्त आश्चर्य की बात है।

परन्तु जब आप पकड़ते नहीं हैं – बाधाओं से प्रभावित नहीं होते, तो क्या होता है? वास्तव में यह अवस्था प्राप्त करना काफ़ी कठिन है। परन्तु यदि आप पकड़ते नहीं है, यदि आप सोचते हैं कि आपको पकड़ नहीं आती – तो आपको कैसे करना चाहिए? इसे इस प्रकार देखना है : मान लो आपकी आज्ञा पकड़ रही है तो आपको पता होना चाहिए कि आपकी आज्ञा पकड़ रही है, आपको ये नहीं सोचना चाहिए कि आपकी आज्ञा पकड़ रही है, इसके स्थान पर आपको सोचना चाहिए कि दूसरे व्यक्ति की बाधा से लड़ने के लिए आप यहाँ पर शक्ति एकत्र कर रहे हैं। यदि आप ऐसा कर सकें तो। मान लो आपकी विशुद्धि पकड़ रही है, तो ये सोचने और परेशान होने की अपेक्षा कि आपका विशुद्धि चक्र पकड़ रहा है यदि आप सोचने लगें कि आप दूसरे व्यक्ति की विशुद्धि को सन्तुलित करने के लिए यह शक्ति संचित कर रहे हैं, तब मैं सोचती हूँ, ये बेहतर कार्यान्वित होगा। इसलिए मैं हमेशा कहती हूँ कि दूसरों की ओर हाथ चला कर (फैलाकर) स्वयं देखें। इस विधि से बहुत से लोगों को लाभ हुआ है क्योंकि उनकी आज्ञा पर पकड़ आती है और वे आज्ञा की पकड़ वाले किसी दूसरे को चैतन्य देते हैं तो पाते हैं कि वे ठीक हो गए हैं। ऐसी अनुभूतियाँ बहुत कम लोगों को हो रही हैं, परन्तु ऐसा हो रहा है।

अत: आप इसे आज़मा सकते हैं। ये नहीं सोचें कि आप पकड़ रहे हैं, आपको सोचना चाहिए कि सामने खड़े किसी दूसरे व्यक्ति की आज्ञा की पकड़ को दूर करने के लिए यह शक्ति संचित हुई है। आरम्भ में नि:सन्देह यह प्रक्रिया बहुत धीमी होगी, परन्तु शनै: शनै: आप इस कार्य को कर सकेंगे और केवल वही लोग करेंगे जो इसका अभ्यास करेंगे। यह सामूहिक विचार है, सामूहिक सोच है : मान लो मुझ पर मलेरिया का आक्रमण हुआ है, तो मेरा अपना रक्त, मेरी अपने रक्त कोशाणु इस आक्रमण का मुकाबला करने का प्रयत्न कर रहे हैं। वे इससे युद्ध करने का प्रयत्न कर रहे हैं। यदि मैं हार मान लूं, तो मैं मलेरिया रोगी बन जाऊंगी, परन्तु यदि मैं हार नहीं मानती तो विजयी होती हूँ।

इसी प्रकार चैतन्य देते हुए यदि आप ऐसा सोचते हैं कि यदि आपको पकड़ आती है, तो वास्तव में आपके अन्दर एक शक्ति संचित हो रही है, जिसे आपने देना है, तब आप कुल मिलाकर सभी ऋषि–मुनियों से भी अधिक तेज़ी से बढ़ सकेंगे। ये बात मैं आपको बता सकती हूँ। परन्तु मानव के लिए ऐसा सोचना थोड़ा सा कठिन है, क्योंकि पकड़ आते ही उन्हें चिंता हो जाती है और वे अपनी पकड़ को दूर करने में लग जाते हैं। यदि आप अपनी पकड़ को दूर न करके दूसरे लोगों को चैतन्य देने पर कमर कस लें तो इसका बेहतर परिणाम आएगा। मैं ऐसा करती रही हूँ, एक–दो लोगों पर मैंने ये प्रयोग किया है और ये विधि सफल रही है। सभी लोगों में ये क्षमता नहीं होती। अत: शनै: शनै: उन्नत हों क्योंकि अभी तक आप नवजात शिशु हैं, अभी आपने उन्नत होना है, अधिक उन्नत होना है। आप सीख रहे होंगे,

आपको काफ़ी ज्ञान होगा, परन्तु जहाँ तक आपकी आध्यात्मिकता का सम्बन्ध है इसका अर्थ ये नहीं है कि आप सतोरी अवस्था से ऊपर उठ चुके हैं। आपमें से कुछ लोग उठ चुके हैं और कुछ अभी भी सतोरी अवस्था में हैं। अत: इसके विषय में सावधान रहें। मैं आपसे पुन: मिलना चाहूँगी शायद दो वर्ष पश्चात्, मैं नहीं जानती कब।

कल हम यहाँ पर ध्यान करेंगे और मैं बहुत अधिक नहीं बोलूंगी। कल हम ध्यान करेंगे। यहाँ एक ध्यान केन्द्र है, वहाँ जाकर आपको परस्पर मिलना चाहिए, मिलकर ध्यान करने को सामूहिक ध्यान कहा जाता है। ये सामूहिक गतिविधि है, मैं भी वहाँ हूंगी। आपको आश्चर्य होगा कि मेरी चैतन्य लहरियों को इतना अधिक कहीं और नहीं महससू किया जाता जितना सामूहिकता में किया जा सकता है। इसके विषय में मुझे पता होता है कि फलां–फलां सामूहिकता कहाँ कार्य कर रही है।

तो दिल्ली में पहले से ही तीन सामूहिकताएं हैं, और ये निवासस्थानों से काफ़ी समीप हैं। आखिरकार, हमें ये समझना चाहिए कि, अन्य साधकों की तरह से हमें हिमालय पर नहीं जाना। हमें ये सब कार्य नहीं करने। हमें तो केवल अपने घर के समीपतम ध्यान केन्द्र पर जाना है। इसे हमारे द्वार पर ले आया गया है। सभी कुछ हमारे द्वार पर ले आया गया है – ज्ञान, चैतन्य लहरियाँ, आत्मसाक्षात्कार और सभी कुछ इतना आसान बना दिया गया है। यह सहज बना दिया गया है ..... परन्तु इसका अर्थ ये भी नहीं है कि हम इसे अपना अधिकार मान लें (स्वीकृत रूप से ले लें)। मेरी अत्यन्त अत्यन्त कठोर तपस्या से यह सहज बन पाया है। ये बात मुझे कह देनी चाहिए।

बहुत से युगों में मैं हज़ारों वर्षों तक रही और बहुत से लोगों पर, बहुत सी चीज़ों पर कार्य किया और अन्तत: मैं अधिकतर मनुष्यों के संयोजनों और क्रमपरिवर्तनों को खोज पाई और इस प्रकार इतने विशाल सामूहिक स्तर पर यह कार्य कार्यान्वित हो पाया। बिना मेरी कठोर तपस्या के यह सम्भव न हो पाता।

इस प्रकार यदि यह कार्यान्वित हुआ है, तो अधिकतर लोगों में चल निकलना चाहिए। सिवाय एक प्रकार के लोगों के, जिनके विषय में मैं कहूंगी कि यह हो पाना अत्यन्त कठिन है, ऐसे लोगों में जो राक्षस लोगों से जुड़े हुए हैं। यदि वे जन्मजात राक्षस हैं और कहीं आपका सिर उनके चरणों से छू गया तो बहुत कठिनाई होगी। अत: मैं आपको चेतावनी देती हूँ कि किसी भी व्यक्ति के चरण–स्पर्श करने से पहले आपको बहुत सावधान रहना होगा। परमात्मा आपको धन्य करें।

आप सबको बहुत देर हो चुकी है .... परन्तु इतने कठिन विषय को इतने थोड़े समय में बताना बहुत कठिन कार्य है। परन्तु यदि, मैं आशा करती हूँ, मैं सहजयोग पर कोई पुस्तक लिख पाई, मैं आशा करती हूँ क्योंकि आज तक मैंने कोई पुस्तक नहीं लिखी है। पुस्तक

लिखने का प्रयत्न कर रही हूँ, परन्तु इससे पूर्व कुछ अन्य लोग भी लिख रहे हैं।

मुझे आशा है, कि मैं कुछ लिख पाऊंगी। जो भी हो इसके विषय में ज़्यादा चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। यह आपके आत्मसाक्षात्कार एवं उत्क्रान्ति से अधिक महत्वपूर्ण नहीं है।

पूरा ज्ञान आपमें जागृत हो जाएगा। चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है – अब हर शब्द जो आप पढ़ते हैं वह अर्थ पूर्ण होगा, आप समझ पाएंगे।

पहली चीज़ ये है कि अपना आत्मसाक्षात्कार पा लें और दूसरी आवश्यक चीज़ उत्क्रान्ति है। आपको बहुत अधिक ऊँचा उठना है और इसे बहुत समय देना है। इसे स्वीकृत रूप से न लें। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण चीज़ है जो आपको करनी चाहिए और भी बहुत सी चीज़ें आवश्यक हैं, परन्तु यह महत्वपूर्णतम कार्य है, जो किया जाना चाहिए।

परमात्मा की कृपा से यदि ये कार्यान्वित हो जाए तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी। मैं बहुत प्रसन्न हूँ क्योंकि अपने किसी भी अवतरण में मैं इतने लोगों को आत्मसाक्षात्कार नहीं दे पाई थी। अतः मैं स्वयं से पूर्णतः सन्तुष्ट हूँ। परन्तु जहाँ तक आप लोगों का सम्बन्ध है, आपको सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए। आपको अधिक और अधिक माँगना चाहिए और यह प्रदान किया जाएगा क्योंकि आप ही वो लोग हैं जो मंच पर है। आपको इसी उद्देश्य के लिए बनाया गया है। आप ने ये कार्य करना है। परमात्मा को ये कार्य करना होगा। परमात्मा यदि ये कार्य नहीं करते तो वे अपनी इच्छा को पूर्ण नहीं कर सकते और अपनी सृष्टि को तो वे नष्ट नहीं होने देंगे।

परमात्मा आपको धन्य करें।

परिशिष्ट (Appendix)

श्रीमाताजी द्वारा बनाई गई अतिरिक्त आकृतियाँ

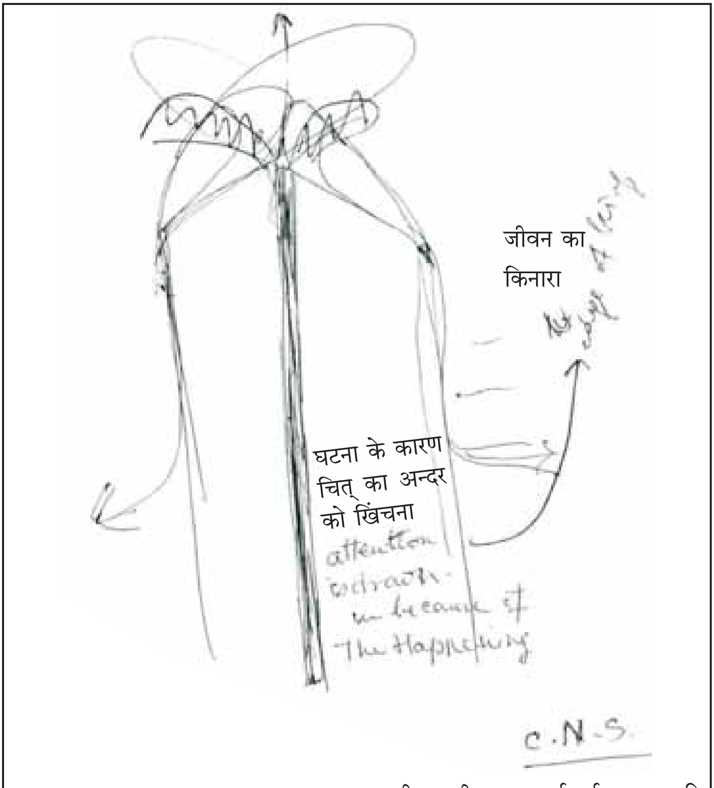

प.पू.श्रीमाताजी द्वारा बनाई गई मूल आकृति

आकृति १४ - आज्ञा का रेखाचित्र

श्रीमाताजी ने बताया कि परमात्मा का साम्राज्य हमारे लिए वर्तमान क्षण में ही खुलता है जब ऊर्ध्वगामी कुण्डलिनी अहं और प्रति अहं के स्तम्भों को पीछे की ओर धकेलती है और आज्ञा चक्र में चित् स्वतन्त्र हो जाता है।

(हर्स्ट ग्रीन, यू.के, १९७५)

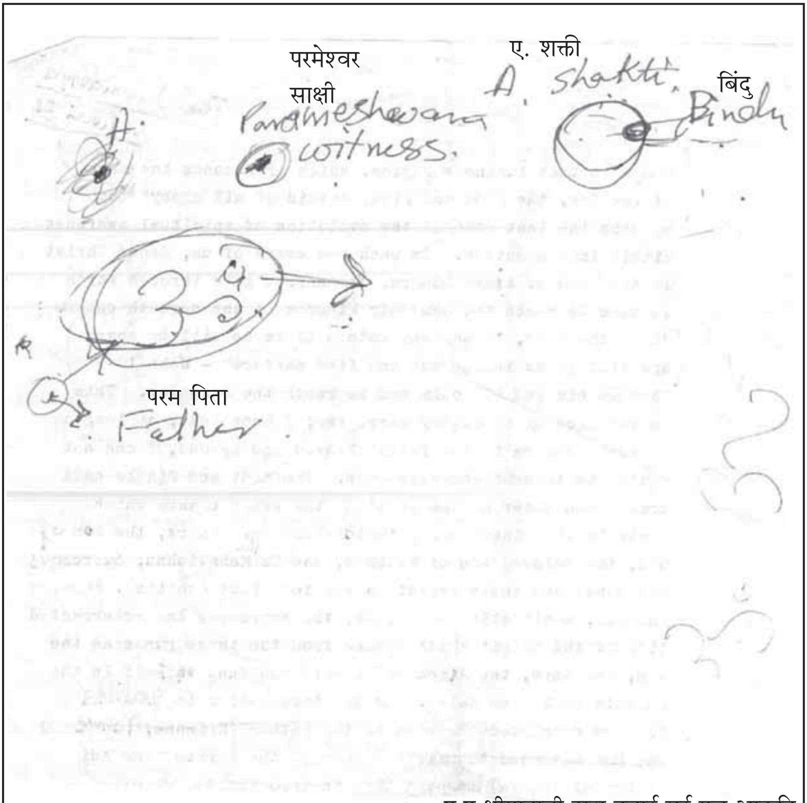

प.पू.श्रीमाताजी द्वारा बनाई गई मूल आकृति

आकृति १६ - ॐ का रेखाचित्र

श्रीमाताजी ने व्याख्या की कि जब परम पिता ने सृजन लीला आरम्भ करने के लिए आदिशक्ति को अलग होने के लिए निमन्त्रित किया तो आदिशक्ति की वलयाकार गति से किस प्रकार ॐ की रचना हुई।

(हर्स्ट ग्रीन, यू.के, १९७५)

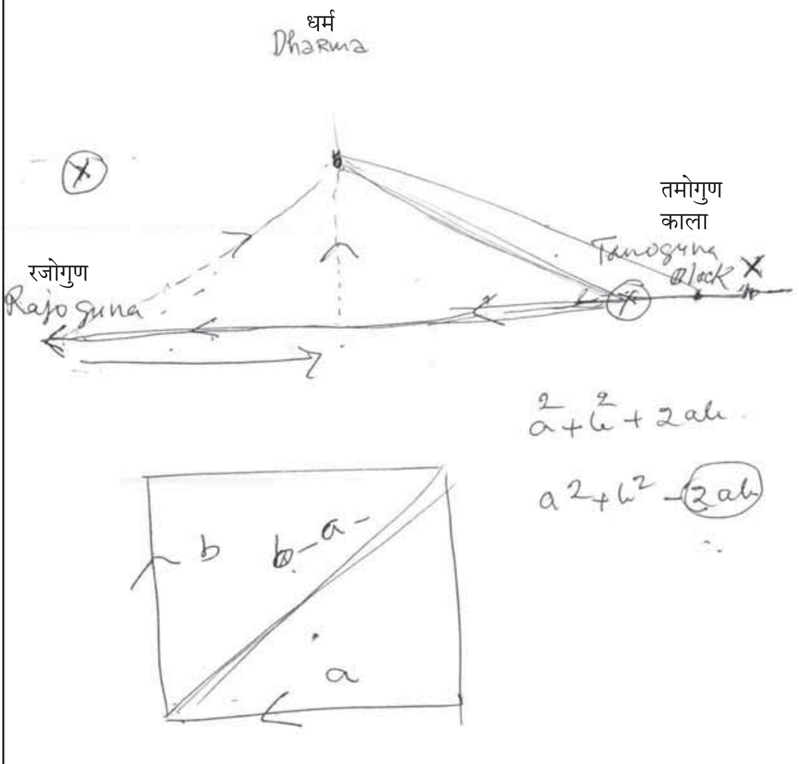

प.पू.श्रीमाताजी द्वारा बनाई गई मूल आकृति

आकृति १७ - चित् के बाईं तथा दाईं ओर के आड़ोलन का रेखाचित्र

रेखा चित्र की व्याख्या करते हुए श्रीमाताजी ने बताया कि जब हमारा चित् मध्यवाहिका को छोड़ कर बहुत अधिक दाईं ओर (रजोगुण) को जाता है, तो उत्क्रान्ति पथ (मध्य मार्ग) पर इसे वापिस खींचने के लिए दुगुनी शक्ति की आवश्यकता होती है।

(हर्स्ट ग्रीन, यू.के, १९७५)

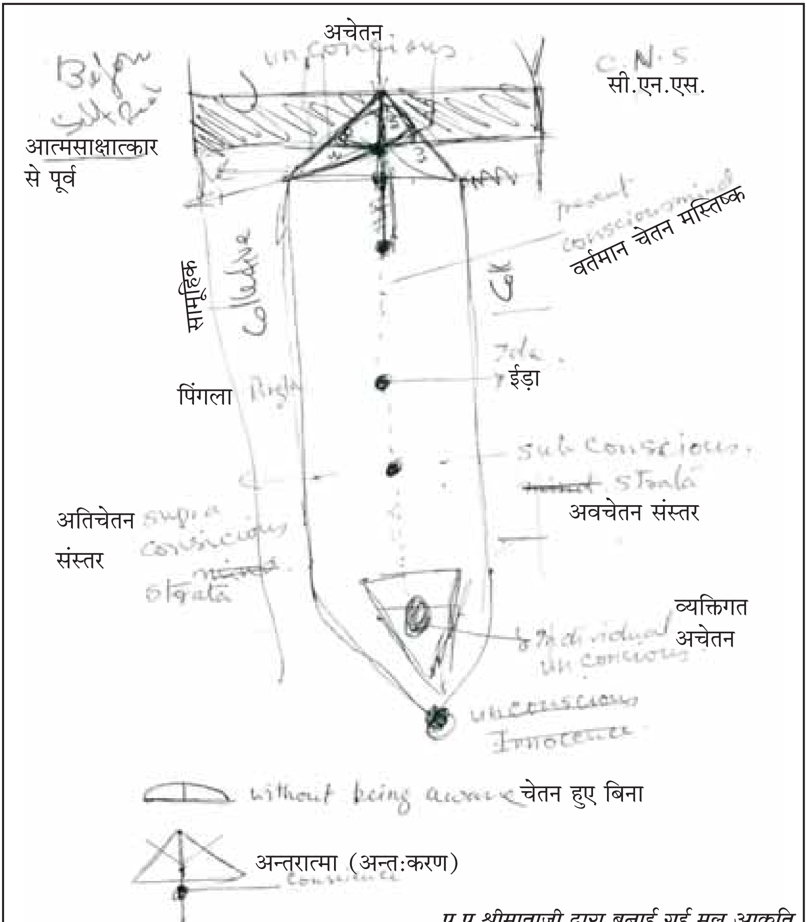

प.पू.श्रीमाताजी द्वारा बनाई गई मूल आकृति

आकृति १८ - सूक्ष्म तन्त्र का रेखाचित्र

इस रेखाचित्र में श्रीमाताजी ने व्याख्या की कि मनुष्य-लघुब्रह्माण्ड-की रूपरेखा विराट-वृहद् ब्रह्माण्ड-के पैटर्न के अनुरूप बनाई गई। यह (वृहद् ब्रह्माण्ड) अतिचेतन और अवचेतन (सुप्तचेतन) प्रदेशों से घिरा हुआ है और इसमें कुण्डलिनी व्यक्तिगत चेतना के युगों के कूट (Code) और रिकॉर्ड वहन किए हुए है।

(हर्स्ट ग्रीन, यू.के, १९७५)

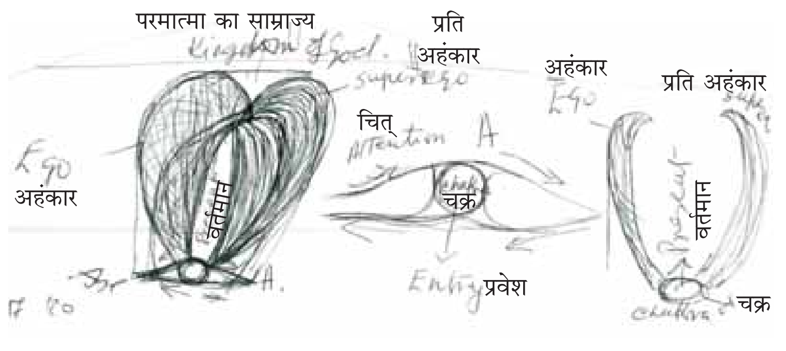

प.पू.श्रीमाताजी द्वारा बनाई गई मूल आकृति

आकृति १९ - अहंकार और प्रति अहंकार के प्रारम्भ (द्वार) को दर्शाता हुआ सूक्ष्म तन्त्र के रेखाचित्र का पीछे का भाग

श्रीमाताजी ने समझाया कि कुण्डलिनी उठने की घटना से चित् किस प्रकार सुषुम्ना की अन्तरतम ब्रह्मनाड़ी में खिंच जाता है ताकि अब हम अपने अस्तित्व के किनारे पर ही न तैरते रहें।

(हर्स्ट ग्रीन, यू.के, १९७५)

सर्वाधिकार सुरक्षित

बिना पूर्व आज्ञा के इस पुस्तक के किसी भी भाग की प्रतिलिपि या किसी भी रूप में प्रसारण वर्जित है। कोई भी व्यक्ति अनधिकृत रूप से यदि इसका प्रकाशन करता है तो उस पर हानिपूर्ति का दावा किया जाएगा।

‘‘मुझे आशा है कि मैं सहजयोग पर कोई पुस्तक लिखूंगी...
पूरा ज्ञान आप पर प्रकट हो जाएगा।
आपको कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा।
अब जो भी शब्द आप पढ़ेंगे, यह अर्थपूर्ण होगा,
और आप इसे समझ पाएंगे।’’

परम पूज्य माताजी श्रीनिर्मला देवी

सहजयोग के बारे में अधिक जानकारी के लिए देखें www.sahajayoga.org